फूल बनकर महक तुझको जमाना जाने

तेरी भीनी-भीनी महक अपना बेगाना जाने

श्रमण संस्कृति का प्रबुद्ध मासिक

सुधर्मा

स्मृति सौरभ पुष्पाङ्क

सुष्ठुधर्मः समाख्यातो, वीरेण परमार्हता।
सर्वत्र तत्प्रचाराय, सुधर्माख्या सुपत्रिका।

सदुपदेशक-परमश्रद्धेय आचार्य सम्राट्, राष्ट्रसन्त पूज्य श्री १००८

स्व. श्री आनन्दऋषिजी महाराज

संस्थापक
शाह केशवजी जवेरचन्द्र जामनगरवाले, जालना

दिशानिर्देश

मुनिश्री कुंदनऋषिजी म.
मुनिश्री आदर्शऋषिजी म.
पं. श्री रमेशमुनिजी शास्त्री
मुनिश्री प्रवीणऋषिजी म.

संपादक
पं. चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी

व्यवस्थापक
पं. योगेन्द्र त्रिपाठी

संपर्क सूत्र : सुधर्मा कार्यालय, आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. मार्ग, अहमदनगर

श्री तिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड

वर्ष : ३५ | जुलाई-अगस्त-सितम्बर | अंक १/२/३

शुल्क विवरण

आधारस्तंभ : १००१ रु. | स्तंभ : ५०१ रु. | आजीवन सदस्य : ३०१ रु.
पंचवार्षिक : १२५ रु. | त्रैवार्षिक : ७१ रु. | वार्षिक : ३१ रु.

इस अंक का मूल्य ५० रुपये

कहाँ, क्या....

काव्याञ्जलि......

समाचार पत्रों के आइने में

लेख



।। श्री आनंदप्रभवे नमः ।।



जिन्होंने सारे भारतवर्ष में पदभ्रमण कर
भगवान महावीर के दिव्य सिद्धान्तों को
जन जन में प्रचारित प्रसारित कर
ज्ञान की मन्दाकिनी प्रवाहित की
ऋषि वरेण्य प्रातः स्मरणीय
जैन धर्म दिवाकर राष्ट्रसंत पूज्य आचार्य सम्राट्

श्री आनन्द ऋषिजी म.

की

९३ वीं जन्म जयंति

पर भाव वन्दन पूर्वक
हार्दिक श्रद्धा-सुमन समर्पित करते हैं।

पुखराजमल एस. लुंकड
अध्यक्ष,
श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेन्स
१२, शहीद भगतसिंह मार्ग, नई दिल्ली



दो शब्द

भारतवर्ष धार्मिक-आध्यात्मिक प्रधान देश है। इस भूमि पर अनेकानेक ऋषि वरेण्यों ने अवतार लेकर जनमानस को अनुप्राणित किया है। उन्हीं महापुरुषों की शृंखला में थे, हमारे आराध्य प्रातःस्मरणीय परम श्रद्धेय राष्ट्रसंत जैन धर्म दिवाकर महामहिम पूज्य गुरुदेव पूज्य आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी महाराज !

आचार्यश्री परमकृपालु, वात्सल्य वारिधि संत-रत्न थे। उनका हृदय, सरलता, मृदुता, कारुण्यता से लबालब सराबोर था। हमारा परिवार कितना सौभाग्यशाली है कि पूज्य गुरुदेव की सेवा का लाभ ग्रहण किया।

पूज्य गुरुदेव के शिक्षा-प्रदाता हमारे पूज्य पिताजी विद्यावारिधि स्व. पं. राजधारी त्रिपाठीजी शास्त्री से जब मैं पूज्य गुरुदेव के बारे में सुनता था तो हृदय लालायित हो उठता था कि कब श्री चरणों का दर्शन कर अपने को बडभागी समझूंगा। सन १९३७ के प्रथम दर्शन में ही मैं प्रभावित हो गया। पूज्यश्री जी ने भी अपना लिया। पितृवत् वात्सल्य प्रदान करते रहे, जो शब्दातीत है। उनकी कृपादृष्टि का ही परिणाम है कि संस्थाओं की सेवा में निमग्न हूँ।

आचार्य प्रसदन्त के शब्दों में -

असितगिरिसभं स्यात्। कुजलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवर शाखा लेखनीपत्रमूर्वी।
लिखतियदिगृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारन्न याति।।

पूज्य गुरुदेव के बारे में संत-सतियों एवं विद्वान मनीषियों ने जो श्रद्धा-पुष्प समर्पित किये हैं उनका प्रकाशन करते हुए हृदय में प्रसन्नता हो रही है कि पूज्यपाद की जन्म जयंति के अवसर पर श्री चरणों में समर्पित हो रहा है।

लेखों के चयन, संपादन में श्रद्धेय श्री आदर्श ऋषिजी महाराज का बहुमूल्य मार्गदर्शन प्राप्त रहा है। एतदर्थ हम उनके अत्यन्त ऋणी है। माननीय श्री कनकमलजी मुनोत को हम किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ। प्रूफ संशोधन कार्य में जो उनका सहयोग प्राप्त हुवा है, वह हमारे लिए अविस्मरणीय है। उनके सहयोग के विना. यह कार्य समय पर पूरा ही न हो पाता।

इसी तरह प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स के अधिपति श्री प्रदीप बाबू एवं कर्मचारियों के भी हम अत्यन्त आभारी हैं कि जिन्हों ने तन्मयता पूर्वक इस कार्य को समयपर परिपूर्ण कराया।

शीघ्रता में जो कुछ भी बन सका है, वह पूज्य चरणों की कृपा दृष्टि का ही परिणाम है। विद्वान संत-सतियों एवं मनीषियों के भी हम आभारी है कि जिन्होंने समय पर लेख भेजकर पूज्य चरणों के प्रति अपनी भावनाएं प्रदर्शित की हैं।

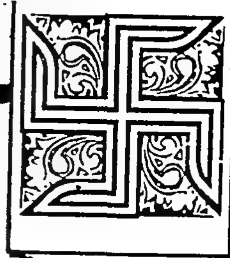
-चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी

श्री आनन्दाष्टक

प्रवर्त्तक श्री रुपचंद्रजी म. 'रजत'

बाल दिवाकर ज्योति लिये
हुलसा उरकंज विकासक भारी
भूमि का भार उतार लिये
धर जन्म महामुदमंगलकारी
नेमीचन्द्र लिये शुभनाम
सुश्रावक देवीतनय मलहारी
रत्न ऋषीश्वर शिष्य आनन्द
त्रिलोकविभूषण पादविहारी
द्वादशवर्ष कुमारदशा
फिर वर्ष त्रयोदश संयम धारा
स्थानकवासी श्रीसंघ सुधाकर
हंस इवागमवाक्य उचारा
लब्धिसुमेरु सुजातक अद्‌भुत
राष्ट्र समाज समष्टि सुधारा
रत्न ऋषीश्वर शिष्य आनन्द
त्रिलोक प्रकाशक रत्न हमारा
भवव्याधिप्रहारक औषधनाम
आनन्द सुमंगल सेतु महा है
शीलमहोदधि तारक यान
सुपारस चन्दन चारु कहा है
पादपकल्प पीयूष सिताम्बर
विष्णु ने मानवरूप गहा है
रत्न ऋषीश्वर शिष्य आनन्द
सुवासित कौस्तुभ शोभ रहा है
चरणाम्बुज अंकुश मत्स्य सुचाप
सुमन्दिर और सुरेख को धारे
दीन दयालु कृपानिधि वत्सल
भारतभूमि की गोद संवारे
पर्णकुटीर प्रासाद को पावन
धाम किये विहरे शुभ द्वारे
रत्नऋषीश्वर शिष्य आनन्द
महोत्सव भाग्य प्रकर्ष सितारे

हर्ष-विषाद प्रमाद-प्रबोध
तथा अनुलोम-विलोम के आये
धीर हिमालय सदृश वीर के
मार्ग चले जनमानस छाये
अमृत और अजेय अकिंचन
ज्ञान-विराग हृदय में समाये
रत्न ऋषीश्वर शिष्य आनन्द
अनिष्ट-विदारक कीर्ति बनाये
युगश्रेष्ठ युगाक्षर योगक्षेमंकर
योगारूढ़ योगेश युगाकर
मुक्तिमहीधर मुक्त महीश्वर
भक्तिरथी भक्तेश कलाधर
जागृत जागृति-मन्त्रबीजाक्षर
जिष्णु जितारि जयेन्द्र जिताध्वर
रत्न ऋषीश्वर शिष्य आनन्द
युगन्धर मानवतारत्नाकर
सविशेष समन्वयसेतु समीक्षक
सूत्रविमर्श समागमसागर
सार्थक सोमसमकितदर्शन
साम्यसमीरण सात्त्विक जागर
सन्तशिरोमणि सुष्ठु सुयोधन
साध्य समादृत साधननागर
रत्न ऋषीश्वर शिष्य आनन्द
सुशील सुभाष सुधारसगागर
ऋद्धि-प्रसिद्धि-सुसिद्धि-प्रधारक
प्रांजल पंचमहाव्रतधारी
पंच-प्रपंच से मुक्त प्रभावक
प्रातःपूज्य महासुखकारी
जीवन-प्राण-प्रकर्ष-प्रमेय
प्ररोह-प्रवर्षण प्रज्ञ प्रभारी
रत्न ऋषीश्वर शिष्य आनन्द
अवाप्त अनामय आर्षविहारी



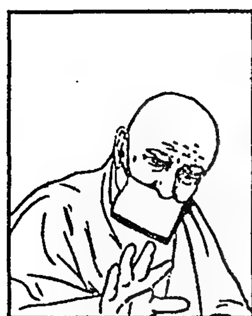
ज्योतिपथ के महासाधक

■ आदर्शऋषि

प्रकाश पथ का पथिक
मुक्तिपथ का महासाधक
सत्यम् शिवम् सुंदरम् का उपासक
अनन्त की यात्रा पर निकल गया।
पीछे छोड़ गया ऐसा प्रकाश,सन्देश, सौरभ,
जो कई पीढ़ियों के लिए पाथेय बनेगा।
जीवन प्रकाशमय, सौरभय कैसे बनता है
इस कथा को जानना अनुपम,
अनिर्वचनीय आनंद से गुजरना है।
एक यात्रा प्रारंभ होती है।
बीसवीं शताद्धि के आरंभ में।
छोटासा एक सुंदर गाँव -
उस गाँव में असीम संभावना का जन्म
होता है।
उस संभावना से अनजान है दुनियाँ।
प्रकृति का नियम है, हर संभावना किसी
कोख में कसमसाती है
लम्बी अंधेरी यात्रा से गुजरती है। यह एक
साधना है, तपस्या है।
जैसे बीज वृक्ष बनने से पूर्व
मिट्टी में गड़ता है, अंधेरे में रहता है।
प्रकाश सभी देखते है, अंधेरे को कौन
देखता है?

संभावनाओं से भरा बालक माँ की ममता
तले,
अनूठे संस्कारों में पलता है।
उसे मिट्टी से, माँ से, सन्तों की वाणी से
लगाव है।

एक दिन अचानक अकल्पित घटना ने,
बालक के जीवन में तूफान खड़ा कर दिया।
पिताजी के अकाल मृत्यू ने बालक को
जीवन और मृत्यु से साक्षात् करा दिया।
संयोग से एक रत्नपारखी गुरु का गाँव में
आगमन हुआ।
माँ का बालक के साथ दर्शन को जाना,
द्रष्टा गुरु द्वारा बालक को परखना,
इक इतिहास का जन्म होता है।
संभावनाओं से भरे सागर को नापनेवाले
थर्मामीटर कितने है?
गुरु कहते है, माते, इस बालक को हमें
सौंप दों,
यह बालक इतिहास लिखेगा,
हजारों के जीवन में प्रकाश भरेगा।
सच्ची माता भिक्षु को कभी वापस नहीं
लौटाती।
माता तो सिर्फ देना जानती है।
बालक जव्हेरी के हाथों में था, पूर्ण
समर्पित।
समर्पित हुए बिना, किसने कहा, क्या
पाया?
निस्सीम समर्पण पाने की 'विधि' है।
हीरा घड़ता गया, पहलू पड़ते गये।
बिना तपे सफलता कहां, बिना साधना
सिद्धी कहाँ।
स्व को साधने के लिए अपार श्रम-जागृति
की जरूरत है।



लोगों की दृष्टि सतह पर होती है।
तह तक जाने के लिए, देखने के लिए, दृष्टि और गहराई चाहिए।
साधक आनन्द ज्ञानसाधना में समर्पित थे।
आचरण और मर्यादा में सजग थे।
गुरु के प्रति अटूट भक्ति उनका रक्षण कवच था।
गुरु ने शिष्य को शिक्षा में सीख दी।
देखो आनन्द, साधक के दो पंख होते हैं, ज्ञान और आचार।
इन दो पंखों के सहारे तुम असीम को नाप सकोगे।
असीम ही तुम्हारा ध्येय बने,
सफलता तुम्हारी चेरी होगी।
संकुचितता में मत फसना, वह त्याज्य है।
इस देश की जनता अभावों में पलती है।
ज्ञान के बिना वे भटक रहे हैं।
अज्ञान और दुःख के सिवा कोई धन उनके पास नहीं है।
तुम्हें संकल्प करना है, उनके लिए जीना, मरणा है।
अपने में ही बंद मत हो जाना, स्वार्थ हेय है।
परमार्थ उपादेय है। परमार्थ में ही आत्मा-परमात्मा तुम पाओगे।
सच्चा ज्ञान, आचरण में, मानवीय करुणा में परिणत होता है।
गुरु के वचन शिष्य के हृदय सीप में मोती बन गए।
गुरु का अकस्मात वियोग हुआ।
सदगुरु का वियोग, असह्य पीड़ा है।
पीड़ा में डूब जाए, वह ज्ञानी नहीं।
ऋषि आनंद उनमें नहीं थे। उन्होंने गुरु से उभरना सीखा था।
गुरु वचनों में प्रतिबद्ध थे।
सजग थे दायित्व के प्रति।

जब कोई कर्मयोगी अपने प्रबल पुरुषार्थ से, समाज के भाग्य का इतिहास लिखता है।
तब जनता बड़े गौरव से उसे देखती है, सुनती है।
उनके बताए हुए मार्गपर चलने में, अपने को धन्य मानती है।
आचार्य श्री इसी तरह जनता के बीच उभरकर आए।
एक युवा साधक की ज्ञानयोग और कर्मयोग में, समान गति समाज के लिए आश्चर्य का विषय थी।
ऋषिवर्य आनन्द जहाँ जाते वहाँ लोगों में नई उमंग नया उत्साह,
जोश भर देते थे। श्रद्धा की ड़ोर बंधे हर कोई उनके पास चला आता। आने के बाद खाली हाथ वहाँ से वापस न जाता।
जो एक बार आया वह उनका होकर रह गया।
इस ज्ञानर्षि को ध्यान था, उसे क्या करना है।
ज्ञान का आलोक जन-जीवन में आए,
जीवन दीप जले,
भटके हुए राह पाए, यहीं उनका अहर्निश ध्यान-योग था।
जनता इस आनन्द को पाकर आनन्दित थी।



उनमें जीवन और धर्म के प्रति विश्वास जगा।
ये विश्वास पाया आनंदऋषि ने, जो भविष्य में सुवर्ण इतिहास
लिखने को कटिबद्ध थे।
जिस साधना के राजमार्ग पर ऋषिवर्य ने कदम धरे थे।
वह महावीर का अनूठा, आत्मसंयम का मार्ग था।
पग-पग पर अग्नि-परिक्षा, आत्म-परीक्षा से साधक को गुजरना होता है।
समझौतावादी इस पथ पर चल सकते है, पर पहुँच कहीं नहीं पाते।
वे बीच रास्ते में ही अटक-भटक जाते है।
यहाँ तो अपने आपसे भी समझौता एक गुनाह है।
प्रामाणिकता ही सच्ची कसौटी है।
ऋषिवर्य आनन्द इस सारी कसौटियों पर खरे उतरे
उन्होंने किसी मोह के क्षण में मन को उलझने नहीं दिया,
इन्द्रियों पर नियंत्रण कर वे विजेता बन गए।
महावीर की वाणी को उन्होंने सार्थक कर दिखाया।,
कि जो इन्द्रिय-मन विजेता होता है, वह जग विजेता होता है।
प्रमाद उनसे कोसो दूर था।
जागरण जीवन का मूल मंत्र बन गया।

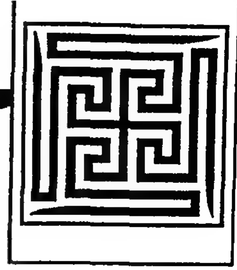
एक पथ पर निरंतर स्वपर को साधते हुए चलना अपने आप में
आश्चर्य है। यह व्यक्ति की महानता,
श्रेष्ठता,
गुणवत्ता का
परिचायक है।
जनता ऐसे ही गुणी पुरुषों को स्वीकार करती है,
वे जनता के श्रद्धेय बन जाते हैं।
सफलता पाना कठीन है। उससे ज्यादा कठीन है
सफलता के शिखर पर हमेशा बना रहना।
जो भीतर से ही बड़े होते है, उनको
सफलता यश की सीमा नहीं होती
जो भितर से छोटे होते हैं, वे बाहर बड़े बनने की कोशिश में व्यंग के पात्र बन जाते हैं।
बड़ा बनाया नहीं जाता। कुछ जन्म-जात बड़े होते है।
कुछ अपने पौरुष-पौरुषार्थ से महान् होते हैं।
और बहुतसे जबरदस्ती बड़े बनने की नाकामयाब कोशिश करते हैं।
आनन्दऋषि पुरुषार्थ के प्रतीक थे।
अपने पुरुषार्थ से उन्होंने जीवन को कई आयाम दिये।
उनके पुरुषार्थ ने जीवन में ऐसी चमक पैदा की, जिसकी चमक से उस युग का
जन-समाज भी अभिभूत, प्रभावित हुआ।

यात्रा अनवरत चल रही थी।
रुकना मृत्यु है, चलना जिन्दगी है।
उपनिषद की भाषा में कहे तो 'चरैवेति-चरैवेति चरणं
वै मधु विन्दति।' चलते रहो, चलते रहो,
चलनेवाला ही मधु को



जीवन-अमृत को
पाता है।
कुछ लोग चलते हैं,
पर वे कहीं पहुँच नहीं पाते क्यों कि
उनके पास कोई लक्ष्य नहीं होता।
दुविधा के चौराहे पर बैठे, वे जिन्दगी और
समय का व्यय करते है।
दुविधाग्रस्त जीवन औरों के लिए
मार्गदर्शक नहीं बन सकता।
स्वयं प्यासा औरों की क्या प्यास
बुझाएगा?
स्वयं भटका हुआ दूसरों को क्या राह
बताएगा?
यात्रा का मार्ग वृत्ताकार नहीं होता।
पलायनवादी सच्चा
'पायावर' मन नहीं सकता।
ऋषिवर्य आनन्द महावीर के बनाए हुए
राजमार्ग के
एक वीर यात्री थे। वे वीर वृत्ति वाले थे।
पिछे लौटना उन्होंने जाना ही नहीं। वे
भीष्म प्रतिज्ञ थे।

उन्होंने पर्यटन शुरू किया। वे अपने को
तौलना चाहते थे।
पूर्ण कसना चाहते थे। देखना चाहते थे,
अपने देश के, अपने देशवासियों को।
जो पास आया उसे बाँटने में सुख है,
ऐसा वे मानते थे।
उनके पास अखुट संपत्ति थी,
ज्ञान, प्रेम, सेवा...।...
ऐसी संपत्ति जो बाँटने से कभी
खत्म नहीं होती।
जहाँ गए बाँटते गये, लोग आते गये,
जुड़ते गये।
एक कारवाँ बनता चला गया।
जनता इस अनोखे कर्मयोगी, ज्ञानयोगी को
आश्चर्य से देख रही थी।।
वाणी में गजब का माधुर्य, स्वभाव विनम्र,
मन मक्खन की तरह मुलायम, सीधापन,
सादगी, सौम्यता, सहजता, सरलता इतने
सारे गुण कि लोगों के मन छू ले, मोहित
कर दे। लोग उनके मुख-मंडल को देखते
ही झूम-झूम जाते। दर्शन कर, एक
अकथनीय अनुभव से भर-भर जाते।
आनन्द नाम को उन्होंने व्यक्तित्व से साकार
कर दिया था।
कारवाँ चलता गया, बढ़ता गया।
एक छोटीसी यात्रा विराट बन गई।
एक छोटासा बीज विशाल वटवृक्ष बन
गया, ऐसा वृक्ष जो सबको समा ले, सबको
जगह दे, जिसकी छाव सब कोई चाहे।
जहाँ हर पथिक को एक अपनापन महसूस
हो, आत्म सुरक्षा मिले।
सच्चा साधक जब साधना के
पथपर चलता है,
तो सिद्धियाँ सहज उसके पास
चली आती है।
यश, कीर्ति ऐसी तितलियाँ हैं, जो इनके
पीछे भागता है, उनको धत्ता बता देती है।
जो इनको ठुकरा देता है, मुह मोड़ लेता
है, उसका वे वरण करती हैं।
लोग तरह-तरह के अभिनय, नाटक करते
है, इन तितलियों के खुश करने के लिए।
कुछ यश शिखर को छूने का जी तोड़
प्रयास करते है, पर वे मोह माया में
उलझ-लुढ़क जाते हैं।

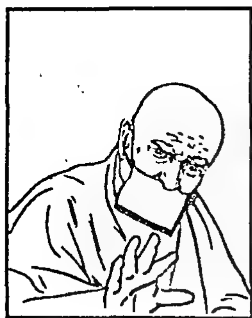


शिखरपर निरन्तर बने रहना बहुत बड़ी सिद्धी है। आत्म-विजेता, मनोविजेता सदा शिखरपर बने रहते है।
साधु--समाज में आपकी एक अलग छबि बन गई।
साधुओं को आश्चर्य होता, इतना सहजपन कहीं संभव है?
इतना माधुर्य कि बार-बार जी करे मिलने को।
इतनी विनम्रता कि मस्तक झुक जाए।

'जहाँ अंतो, तहा बाही-जहाँ बाही तहा अंतो'
जैसे भीतर में वैसे बाहर में, जैसे बाहर में, वैसे अंतर में, दुहरापन उन्हें पसंद ही नहीं था।
दिखावा, छल, कपट, पाखंड, दंभ, ओछापन कहीं नाम-मात्र को नहीं। साधुओं ने अपना नेतृत्व इन्हें सौंप दिया। इतने विश्वास, आस्था से कि जिनकी कोई मिसाल नहीं। विश्वास था कि ये जहाज कहीं भटकायेगा नहीं, डूबाएगा नहीं। समय आने पर वे विषपान कर शंकर बन सकते हैं। और वे बने भी।

वे दीपस्तंभ बने। दीप रास्ता बताता है, बिना किसी उपेक्षा के।
भटकनेवाले अन्धेरे में तो क्या, प्रकाश में भी भटक जाते है।
आचार्य श्री धर्मदीप बनें।
हजारों श्रद्धालुओं ने अपनी जीवन नैया की डोर आचार्य श्री के हाथों में सौंप दी। अपनी जीवन नौका को आनन्द के घाटपर लगा दी, यह बहुत बड़ा विश्वास था।

विश्वास पाना, उसे टिकाये रखना, इससे बड़ा दुष्कर कार्य नहीं।
जिन्होंने भी श्रद्धा, समर्पण, विश्वास दिया उन्होंने बेहिसाब पाया।
यह सब भक्त मन जानता है, जो शब्दों में कथ्य नहीं।
भक्तों को उन्होंने सिखाया, नामस्मरण करो,
सत्संग करो, सेवाभक्ति करो, संसार ही सबकुछ नहीं।
अन्तिम शरण धर्म है, भगवान है।
सम्प्रदाय में कभी उन्होंने किसी को बांधा नहीं।
वे सम्प्रदाय के सख्त खिलाफ थे।
वे जानते थे इस युग में सम्प्रदाय का जहर समाज की नसों में भरना, समाज के साथ गद्दारी है। बचकानापन है, समाज को तोड़ना है।
समाज को तोड़ना, महावीर का गुनाहगार बनना है।
उन्होंने प्रेम के अमृत से सोहार्द से संगठन के स्वरों से समाज की बगिया को सींचा। इसी वजह से हर सम्प्रदाय के बड़े से बड़े आचार्य-धर्मगुरु, सन्त उनके पास चले आते। आनेवाले के मनपर आचार्यश्री के विनम्र प्रेमभरे व्यवहार की गहरी छाप पड़ती।
सही अर्थों में वे युगपुरुष थे, युगआचार्य थे।
आम जनता में जैन धर्म को उन्होंने जनधर्म बना दिया।



आचाराङ्ग सूत्र में एक बहुत ही सुंदर सूत्र है -

''सच्चस्स आणाय उवट्ठिए से मेहावी मारं तरई''

जो साधक सत्य की आज्ञा में उपस्थित रहता है, वह मृत्यू को पार कर जाता है।

कायर मृत्यु से भय खाते है, हाय-हाय कर जीते है, मरते है। जिन्दगी के जादुगर मृत्यु का स्वागत करते है।

साधक के लिए जिन्दगी और मृत्यु संसार सागर के दो किनारे हैं।

उसे तो इन किनारों को पार कर आत्मलोक में पहुँचना है।

आचार्य श्री आत्मस्थ थे, स्वस्थ थे, स्व में स्थित थे।

शरीर भले ही साथ नहीं देता था, पर कभी चेहरे पर शिकन नहीं, दर्द की पीड़ा की रेखा नहीं।

वे शांति के गंभीर सागर, तो सहिष्णुता के सुमेरू थे। शान्ति सहिष्णुता में वे निःसंदेह अद्वितीय थे।

आज हमारे मध्य पार्थिव देह से वे नहीं रहें -

वे क्या गए -

जैन धर्म का प्रतिनिधित्व करनेवाले आचार्य को

हमने खो दिया।

भारतीय ऋषि-महर्षियों की परम्परा की एक कड़ी टूट गई।

सद्गुणों के महान् प्रेमी आचार्य हमारे बीच से चले गये।

इस बीसवीं भौतिक शताद्वि के युग में अध्यात्म के शिखर को छूनेवाले अध्यात्मयोगी को हमने खो दिया, भक्तों का प्रिय भगवान चला गया।

उनकी स्मृति में सुधर्मा का यह स्मृति श्रद्धांजलि ग्रंथ है।

आचार्य श्री जी की प्रेरणा से ही 'सुधर्मा' का प्रकाशन शुरू हुआ। कितनी आश्चर्य की बात है, कि इस प्रचार और विज्ञापन के युग में अपने हाथ में एक पत्रिका के होते हुए भी कोई प्रचार नहीं, स्वयं का विज्ञापन नहीं, स्वयं को स्थापित करने का अट्टाहास नहीं।

इस युग के ये सस्ते हथखंड़े है, जिनमें आचार्य श्री कभी पड़े नहीं। विज्ञापन-प्रचार की तो उन्हें जरूरत होती है, जो अन्दर से खोखले, सिद्धान्तहीन होते है।

जिनके पास कोई सैद्धान्तिक ठोस जमीन नहीं होती, वे सदा प्रचारबाजी में पड़ते हैं। दुसरों के कंधों पर चढ़कर आदमी हमेशा बड़ा नहीं बन सकता।

'सुधर्मा' प्रचार, निन्दा इनसे दूर रहा है। महावीर के सिद्धान्तों का घर घर में प्रचार हो यहीं इसका मुख्य उद्देश्य रहा। आज वहीं सुधर्मा अपने संस्थापक प्रेरणा पुरुष को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है।

इसमें आचार्य श्री के जीवन पहलुओं को छूते हुए विविध आलेख है। उनके जीवन के कुछ आयामों पर विशेष लेख हैं, संक्षिप्त में।

इस स्मृति श्रद्धांजलि ग्रंथ का मुख्य विषय आचार्य श्री पर केन्द्रित होने से पुनरावृत्ति



स्वाभाविक है।
पर वह अखरती नहीं, मधुर लगती है,
प्रत्येक लेखक के मन में एक गहरे भाव, श्रद्धा सुमन होते हैं। वह शब्दों के अधूरे माध्यम से भावाभिव्यक्ति करता है। उसे पढ़ना उसकी श्रद्धा से जुड़ना है। जिसका एक अलग आनन्द है।
और एक महापुरुष के गुणवर्णनों को बार-बार पढ़ना पुण्य का काम है। शायद इस बहाने एकाध गुण, पढ़ते-पढ़ते हमारे में आत्मसात हो जाय।
कोई भी ग्रंथ, पंथ, कोई भी माध्यम,
किसी भी
महापुरुष को पूर्ण अभिव्यक्त नहीं
कर सकता।
न पूर्ण प्रतिनिधि बन सकता है। सीधा एक ही मार्ग (रास्ता) है -
उनके संदेश के अनुसार थोड़ा हम जीए।
यहीं वे महापुरुष चाहते थे। यही समय-समाज की जरूरत है। सच्ची श्रद्धांजलि, इससे सुन्दर पूजा और कुछ हो नहीं सकती।
कुछ लेख है जो काफी मेहनत से लिखे गये हैं। सोचनेवाले,
विचारक को सोचने के लिए बाधित कर देते हैं।

अपेक्षा है हम कुछ
सोचना, विचारना
शुरू करें!

आचार्य श्री का जीवन किसी गुलशन की भांति महकता था।
जिसकी सौरभ, महक अलौकिक अमिट है।
शायर के शब्दों में कहूं तो -
चमनवाले खिजा के नाम से घबड़ा नहीं सकते।
कुछ फूल ऐसे भी खिलते है जो मुरझा नहीं सकते।।
उनके जीवन में खिलें हजारों फूलों में से कुछ ही
इस स्मृति-सौरभ में हम चुन सके हैं।
इस स्मृति-सौरभ को तैयार करने में विहार यात्रा की वजह से
समय, मेहनत हम पूर्ण दे नहीं पाए।
इस स्मृति-सौरभ को महकाने में
कई हाथ लगें।
इस महक से वे अछूते कैसे रहते?
पाठकगण, भक्तमन भी उस महक से
अछूता नहीं रहेगा
ऐसा विश्वास है।



- *अवतारी पुरुष अपनी आत्मा का उद्धार तो करते ही हैं, साथ ही उनके आश्रय में जो भी आएँ, अर्थात् जो भी उनका सहारा ग्रहण करें, उनका भी उद्धार करते हैं।*
- *केवलज्ञान प्राप्त होना यानी मोहनीय कर्म का लय हो जाना, क्योंकि मोहनीय कर्म ही सब कर्मों का राजा है।*



आचार्य सम्राट : कालजयी युग पुरुष थे

■ आचार्य देवेन्द्रमुनि

जीवन एक यात्रा है। इस यात्रा में कई बार इस प्रकार की अप्रिय घटनाएँ आ जाती है जिनकी कभी कल्पना भी नहीं होती। मानव अन्तर्मानस में कमनीय कल्पनाएँ संजोता है पर जब उसके मन के प्रतिकूल कार्य होता है तो सारी कल्पनायें एक क्षण में ढह जाती है। क्रूर काल ने हमारे साथ ऐसा ही निष्ठुर व्यवहार उपहास किया है, जिसकी कल्पना नहीं थी। पर नीयति के आगे हम विवश है। आज हमारा हृदय अपार वेदना से व्यथित है। दिल नहीं चाहता कि ऐसे करुण प्रसंग पर बोला जाय। महामहिम राष्ट्रसन्त आचार्यसम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म. को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना बहुत ही कठिन है। क्योंकि उनका सम्पूर्ण जीवन श्रमण संस्कृति समुत्कर्ष हेतु सदा सर्वदा समर्पित रहा। वे श्रमण संस्कृति के एक जीवन्त और ज्वलन्त प्रतिनिधि थे त्याग और समर्पण के पावन प्रतीक थे। निष्कामता, निश्छलता, निर्लेप, निर्वेग, अप्रमत्तता, अविचलता और निर्भीकता की जीती जागती मूर्ति थी वे चारित्र सम्पदा के धनी थे। उनका पवित्र चारित्र तेजोमय था। उनका सम्पूर्ण जीवन अनूठा और अद्भुत था। उनके उर्वर मस्तिष्क में ज्ञान का अगाध सागर लहलहा रहा था। उनके हृदय में अनुभव का नव्य-भव्य आलोक प्रस्फुटित था। जिनके संकेत में गतानुगतिक समय के प्रवाह को अवरुद्ध कसे की क्षमता थी। उनके मुस्तैदी कदमों में अंगद की तरह दृढता थी। वे शासन प्रभावक महतो महीयान ऋषि रत्न थे। उन्होंने अपने जीवन काल में जो शासन की प्रभावना की उसे ससीम वाणी व्यक्त नहीं कर सकती। उनका कद बहुत लम्बा नहीं था। किन्तु मन इतना विराट था जिसमें सम्पूर्ण विश्व समा जाता था। उनका मन संकीर्ण और शूद्रताओं से परे था। वे सम्प्रदायवाद के घेराबन्दी से मुक्त थे। संघ संगठन के शत/प्रतिशत परखे हुए सूत्रधार थे। वे सच्चे महापुरुष थे। कालजयी युग पुरुष थे। ऐसे आचार्य प्रवर हजारों हजार वर्षो में कभी कभार भाग्योदय से होते हैं, जो-जन-जन को आध्यात्मिक और नैतिक खुराक देते हैं।

उस विराट विश्व मे उदाहरण देनेवाले हजारों लाखों व्यक्ति मिलेंगे किन्तु उदाहरण बनने वाले लोगों का अभाव है। पर आचार्य प्रवर का जीवन स्वयं उदाहरण है। वे जैसा सोचते वैसा ही करते थे। जैसी कथनी थी वैसी करनी थी। आज बकवासी व्यक्तियों का अभाव नहीं है। 'जहा अन्तो तहा वाहि' के युक्ति अनुसार उनका जीवन था। उनकी वाणी और चारित्र्य में एकरूपता थी। जो जीभ पर था वही जीवन में था। महत्त्वाकांक्षा के पंक में भी वे कमल की तरह निर्लिप्त थे। सभी के



प्रति उनके अन्तर्मानस में समभाव था। उन्होंने समाज का कायाकल्प करने का अथक प्रयास किया। उन्होने समाज को आव्हान किया कि वे दुर्गुण मुझे भेंट करें। धन वैभव नहीं। तुम्हारे में रहे हुए व्यसन चाहिए, जसन नहीं। तुम्हारी विपदा चाहिए, सम्पदा नहीं व जन-जन की कथा को समझते थे। उनके चरणों में पहुँचने पर व्यथा उसी तरह से नष्ट हो जाती थी, जिस तरह सूर्य के उदित होने पर अन्धकार। अन्तर्लोक से सहज समुद्भूत विमल वाणी महकते हुए फूलों की तरह होती थी। चाहे परिचित हो या अपरिचित, चाहे धनवान हो या निर्धन, चाहे किसी भी जाति का हो किसी भी प्रकार का भेद नहीं था। उनके दर्शनों के लिए जन-सागर श्रद्धा और प्रेम की उत्ताल तरंगों को लिये हुए उमड़ता था। उनका ज्योतिर्मय व्यक्तित्व सभी के लिए श्रद्धा का केन्द्र था। उनकी वाणी में माधुर्य था। वे जीवन में कभी भी किसी के प्रति कटु और तीक्ष्ण नहीं बने। वे बहुश्रुत थे। आगम और आगमेतर साहित्य का उन्हें गहरा ज्ञान था। उन्होंने ज्ञान को प्रज्ञा के स्तर पर आत्मसात् किया था। फलस्वरूप धर्म के दिव्य और भव्य रूप को जन-मानस के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने धर्म और अध्यात्म की गम्भीर विवेचना समाजनीति, अर्थनीति और मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में की।

आचार्य प्रवर पहले ऋषि सम्प्रदाय के आचार्य बने पर युगने करवट ली। संगठन का नया सूर्य उदित हुआ। जैन शासन के अभ्युदय के लिए आपने उस पद का भी त्याग किया। समाज विकास का नया द्वार खोला। स्वर्णाक्षरों में उत्कीर्णित उनका प्रबल पुरुषार्थ आज भी हमारे सम्मुख प्रकाशस्तम्भ की तरह है। वह ऐसा सुदृढ कवच था जो किसी भी संभ्रम के समय हमारी रक्षा कर सकता था। उनके साफल्यदीप तेजोमय व्यक्तित्व और कृतित्व को भावभीनी श्रद्धांञ्जलि।

■ ■

- *साधु सारे संसार का है। विश्व के अधिक से अधिक जितने भी प्राणियों को बोध दे सके, जितने भी प्राणियों को मुक्ति का मार्ग बता सके, बताना प्रत्येक साधु का फर्ज है।*
- *जो साधु विचरण करते रहते हैं, उनका मानस शुद्ध रहता है। राग-द्वेष उनके हृदय में घर नहीं कर पाते।*
- *साधुओं के लिए चाहे कुटिया हो या आलीशान महल, एक धर्मशाला के समान होता है।*
- *संसारी जीव अपनी स्वार्थ-भावना के कारण ही कष्ट पाते हैं, अपने दोषों और पापों के कारण ही दुःखी रहते हैं।*



अमृत पुरुष आचार्य देव

■ युवाचार्य डॉ. शिवमुनि जी म.

इस अवनितल पर अनेक आत्माओं का आविर्भाव होता है, परन्तु कुछ ऐसी आत्माएं मानव के रूप में अवतरित होती हैं जो अपना वैशिष्ट्य आदर्शों से तथा जन-कल्याण कारणीय कार्यों से मानव संस्कार को चमत्कृत कर देती हैं। उनके समवतरण से जगती तल का कण-कण मुखरित एवं आह्लादित हो उठता है।

हमारे हृदय सम्राट आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषि जी महाराज उन्हीं महापुरुषों में से एक उदीयमान तेजस्वी नक्षत्र थे।

आचार्यः परमः पिता

आप श्रमण संघ के पिता थे। "पातीति रक्षतीति पिता" जैसे पिता का कार्य बच्चों का संरक्षण संवर्द्धन है, तद्वत् आप समय-समय पर संघ को सुयोग्य मार्गदर्शन करके संघ को समुज्ज्वल एवं सुखमय बनाने का सतत प्रयास करते रहे।

स्थानांग सूत्र के छटे ठाणे में आचार्य श्री के जो लक्षण बतलाए गए हैं, वे सभी गुण आपमें विद्यमान थे। आचार्य स्नेह, प्रेम और अनुकंपाकी प्रतिमूर्ति होते हैं। इनके कण-कण में प्रेम की वर्षा होती है। वैर-विरोध की भीषण अग्नि में जल रहे जनमानस को एकता और प्यार का शीतल जल पिलाकर उसके सन्ताप को शान्त कर डालते हैं। आचार्य क्लेश से सद दूर रहते हैं। क्लेश दलदल है, इसमें फंसा व्यक्ति एक दिन अपने जीवन से हाथ धो बैठता है। क्लेश परिवार, समाज और राष्ट्र के अंतः स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है। अतः आचार्य क्लेश का सदा परिहार करते हैं। जहां क्लेश का सर उठ रहा हो, प्रेम पूर्ण व्यवहार से उसे शांत कर देते हैं। आचार्य पद का यह स्वरूप आचार्य प्रवर के जीवन में व्यवहार का रूप ले रहा था।

वि. सं. १९९० में प्रथम अजमेर मुनि सम्मेलन में विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए थे। आप ऋषि सम्प्रदाय के उस समय युवाचार्य पद पर आसीन थे। तत्पश्चात् वि. सं. १९९९ में चतुर्विध श्रीसंघ ने आपश्री जी को आचार्य पद से विभूषित किया।

प्रगति पथ पर बढ़ते कदम

वि. सं. २००६ में राजस्थान के प्रांगण ब्यावर में पांच सम्प्रदायों के साधु-मुनिराजों का एक सम्मेलन हुआ। वहां पांचों सम्प्रदायों ने मिल कर आपको श्री वीर वर्धमान श्रमण संघ का प्रधान आचार्य पद देकर संघ का पूर्ण उत्तरदायित्व आपके कन्धों पर डाल दिया।

आपके कुशल नेतृत्व के कारण जो साहसपूर्ण आदर्श उस समय प्रस्तुत हुआ, उसके फलस्वरूप आपकी प्रख्याति स्थानकवासी समाज में चतुर्दिक व्याप्त हो गई। समाज के शुभचिन्तकों की दृष्टि इस उदीयमान व्यक्तित्व पर केन्द्रित हो गई।



आत्मा में क्रीडा करने लगे।

सच्चं, को अमरायइ, देहे अप्पे ठिइं करेज्ज सया।

तं हिच्चा आणंदो, गच्छइ कमगोयरं ठाणं॥१६॥

(यह) सत्य है कि शरीर में कौन अमर हो सकता है। (इसलिये) आत्मा में (ही) सदा (अपने उपयोग की) स्थिति करना चाहिये। (पूज्यप्रवर श्री) आनन्द(ऋषिजी) उसको छोड़कर किसी अगोचर स्थान पर चले जाते हैं।

पडियं व कप्परुक्खं, दट्ठुं रोयंति तस्सिया जीवा।

कंदइ भत्तगणो तह, पासित्ताऽऽयरिय-पत्थिवं देहं॥१७॥

जैसे गिरे हुए कल्पवृक्ष को देखकर उसके आश्रित जीव (करुण स्वर से) रुदन करते हैं, वैसे ही (शिष्यों और मनुष्यों का) भक्त-समूह आचार्य की पार्थिव देह को देखकर क्रन्दन करता है।

अप्पा गओ जया किं, मोल्लं देहस्स पूइगंधस्स।

तं को धरे अघिण्णो, जालित्ता तं सुहं मण्णइ॥१८॥

जब आत्मा चला गया तब सड़कर दुर्गन्ध से भर जानेवाले देह का क्या मूल्य है? उसे घृणा से रहित होकर कौन रख सकता है? उसको जलाकर मनुष्य शुभ मानता है।

देहं तित्थयराणं, देवा जालेंति किं पुणोऽण्णस्स।

आयरियस्स तणस्सवि, नीहरिउं उज्जमंति जणा॥१९॥

तीर्थङ्करों के देह को (भी) देव जला देते हैं तो फिर अन्य की (तो बात ही) क्या है? (अतः) मनुष्य आचार्यदेव के शरीर का नीहरण करने का उद्यमे करते हैं।

मग्गे मए सुया सा, वत्ता हियअं खु किंचि चिंतेइ।

अम्हाण रक्खगं किर, सिर-छत्तं विव गओ सामी॥२०॥

मैंने यह बात मार्ग में (विहार करते हुए) सुनी। तब हृदय कुछ चिन्तन करता है - 'हमारे सिर-छत्र के समान स्वामी (=आचार्यदेव) चले गये।'

'पुज्जोऽत्थि कत्थ आणंदो? नमणिज्जो सएव अम्हेहिं।

देव-पुरिसो पसण्णमुहो पुच्छंति-इ परोप्परे लोया॥२१॥

लोग परस्पर पूछते हैं - 'हमारे द्वारा सदैव नमस्करणीय प्रसन्न मुखवाले देवपुरुष पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म. कहाँ गये?'

जंपंति केइ एवं, हियए कंदंति दुद्ध रे काल!

किं कंपि णेव छड्डसि, इंदं वा



तित्थनाहं वा॥२२॥

कई हृदय में आक्रन्दन करते हैं और इस प्रकार कहते हैं-'रे दुष्ट काल! इन्द्र हो या तीर्थ के नाथ (भगवान) हो, किसी को भी तू क्यों नहीं छोड़ता है।

जाणे वएइ कालो-'मं घिद्धिं किं करे? ण दुट्ठो मि।

जं जेत्तिओ वि लद्धो, आऊ तं तेत्तियं भुंजइ' ॥२३॥

काल मानों कह रहा है-'मुझे धिक्कार क्यों देते हो? जिसको जितना आयुष्य प्राप्त हुआ उसको (वह) उतना ही भोगता है।

लोएहि सह वयामि-'घण्णो घण्णो मुणीस-आणंदो।

चिरजीव तस्स जसं, देंतं सद्धम्म-संदेसं'॥२४॥

(काल कहता है) लोगों के साथ (मैं भी) कहता हूँ-'आनन्द मुनीश्वर धन्य-धन्य हैं। उनका यश सद्धर्म का संदेश देता हुआ चिरकाल पर्यन्त जीवित रहे।'

(कवि की सद्भावना)

जत्थ वि तस्स अप्पा, साणंदो सो सुहम्मि कीलंतो।

जिणमग्गरुओ पुण्णो, भत्तिभरो होज्ज आमुत्तिं॥२५॥

(स्वर्ग में) जहाँ भी उनका आत्मा हो, (वहाँ) वह सुख में क्रीडा करता हुआ, मुक्ति-पर्यन्त जिनमार्ग में रत (गुणों में और पुण्य में) होता हुआ भक्ति से भरा हुआ रहे। ■ ■

- *जो सज्जन होता है वह अन्य प्राणियों के दोषों की ओर ध्यान न देकर केवल गुणों को देखता है।*
- *जो उत्तम कोटि के प्राणी होते हैं, वे समय आने पर अपने धर्म की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों तक की बलि देने के लिए तैयार हो जाते हैं, परन्तु सत्य मार्ग का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं होते।*
- *किसी को भी जन्म से श्रेष्ठता प्राप्त नहीं होती, श्रेष्ठता तो उत्तम गुणों के कारण उपलब्ध होती है।*
- *संसार सद्गुणों की सौरभ से आकर्षित होता है, जाति और कुल की पूछताछ नहीं करता।*
- *मृत्यु को कौतुक समझने वाले दृढ़व्रती पुरुष प्राणों पर खेलकर भी अपने धर्म से नहीं डिगते। ऐसी महान् आत्माएँ मरकर भी अमर हो जाती हैं।*
- *गृहस्थाश्रम में कुछ इकट्ठा नहीं होता, उलटे खर्च होता है।*



अलौकिक व्यक्तित्व के धनी स्व. पूज्य आचार्य श्री

■ प्रवर्त्तक श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

दिनांक २८ मार्च को सायंकाल प्रतिक्रमण आदि से निवृत्त होकर अपने नियमित जप के लिए बैठने वाला ही था कि एक भाई ने आकर जब मुझे यह बताया कि हम सब के आराध्य महामहिम श्रद्धेय पूज्य आचार्य देव श्री आनंदऋषि जी म. दिवंगत हो गए तो मन स्तब्ध सा रह गया। लगा जैसे हमारा संपूर्ण श्रमण संघ उस दिव्य पुरुष के यूं अचानक स्वर्गारोही हो जाने से अनाथ सा हो गया है।

मुझे अच्छी तरह से स्मृति है, सर्वप्रथम प्रतिपल वंदनीय महामहिम पूज्य आचार्य श्री की पावन चरण धूली को सिर आँखों पर चढ़ा कर अपने आपको सौभाग्य संपन्न महसूस करने के मंगल क्षण भीलवाड़ा की धरती पर मिले। उस समय मैं नवदीक्षित ही था। मेरा प्रथम केश लुंचन स्वयं उन्होंने अजमेर मुनि सम्मेलन के अवसर पर किया। भिलवाड़ा से जयपुर तक लगभग सात-आठ माह पर्यंत मैं उनके पावन सानिध्य में रहा। अद्भुत अनुग्रह था उनका मुझ पर। दशवैकालिक, आचारांग आदि का अध्ययन मुझे उन्होंने ही करवाया।

इसके पश्चात् एक लम्बे अन्तराल के बाद मैं उस समय पूज्य पाद आचार्य भगवान् के दर्शन कर पाया जब वे भीलवाड़ा होकर साण्डेराव सम्मेलन की ओर अपने कदम बढ़ा रहे थे। पूना मुनि सम्मेलन के अवसर पर स्वयं आचार्य श्री ने मुझे विशेष सन्देश भिजवाया था। पूना चातुर्मास के लिए भी उन्होंने प्रतिनिधि मण्डल के साथ संकेत प्रदान किया था। मेरे जीवन निर्माता गुरुदेव श्रद्धेय मेवाड़ केसरी जी म. सा. की अस्वस्थता से यह संभव नहीं हो पाया और आज मैं सोचता हूँ तो अपने आपको भीतर ही भीतर असीम पीड़ा के पारावार में डूबा सा पाता हूँ कि उनके पुनः पावन दर्शन नहीं कर पाया।

हमारे गौरव गरिमा पूर्ण श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर पूज्य आचार्य श्री आनंदऋषि जी म. सा. के बारे में मैं कितना क्या लिखूं और कहूँ. वे असाधारण, अप्रतिम अलौकिक एवं अत्यन्त जागरुक चैतन्यपूर्ण व्यक्तित्व के धनी थे। वे इतनी अधिक दिव्यता एवं इतनी अनूठी भव्यता और सारल्य की प्रतिमूर्ती थे, उनके श्री चरणों में पहुँचते ही सारी उलझने सुलझाव ग्रहण करने लगती थी। सर्व स्वार्थों से उपर उठा व्यक्तित्व जैसे वात्सल्य एवं जन-जन की अखण्ड आस्था का आगार बन जाता है, वैसे ममत्व एवं



समत्व का धारक था उनका व्यक्तित्व।

'जिन्दगी की अन्तिम संध्या तक वे पूर्णतः सजग रहकर संघ में प्राण फूँकते रहे। जेसे कोई शंखनाद अपनी प्रतीती देता है, वैसा ही निनाद उन्होंने श्रमण संघ की उजागरता के लिए किया। संघ को उन्होंने अपने अन्यतम व्यक्तित्व का आभरण उतार कर पहना दिया। वे संघ में चैतन्य के संस्थापक थे। उन्होंने संघ में संघीय भावना प्रसारित की। 'मैं अपने लिए' के स्थान पर 'मैं सबके लिए'' मैं एकांकी की जगह हम सबकी भावना कूट-कूट कर भरी। श्रमण संघ के संबंध में उनसे जो पत्राचार होता था उन पत्रों से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वृद्धावस्थाजनित दौर्बल्य एवं अस्वस्थता के बावजूद श्रमण संघ के सशक्त एवं अखण्ड उज्ज्वल भविष्य के लिए कितनी तड़फ एवं अनूठी कल्पनाएँ उनके मस्तिष्क में थीं।

वैशिष्ट्य के वे केंद्र स्थल थे। जो भी उनके सम्पर्क-सानिध्य में आया उनके प्रति अन्तरात्मा से समर्पित हो उठा। वे श्रद्धा के ऐसे केंद्र बन गये जिनके सामीप्य के लिए जन-जन में एक तृष्णा का उदय हो उठा। वे एक ऐसी प्यास बन गये जो कभी भी बुझती न थी। अन्ततः अनन्त प्यास, काल के क्रम को लांघ कर सुदूर चली जाने वाली प्यास, एक उत्कट जिज्ञासा, एक उत्कट अभिलाषा। कोई भी प्रतिघात, जिसे धुधला न बना सके, कोई भी व्याधात जिसे खण्डित न कर सके, कोई भी आघात जिसे विमुख न कर सके।

वे सामान्य व्यक्ति नहीं, असामान्य स्थिति के वहेता थे। वे ऋजुता और मृदुता के अद्भुत संगम थे। उनमें माधुर्य था, उनमें गांभीर्य था, उनमें दमक थी, यूँ कहूँ कि वे उत्फुल्लता के धारक थे।

चिचोंड़ी महाराष्ट्र उनका जन्म स्थान था। पिताजी श्री देवीचन्दजी गुगलिया को उनके पिता होने का गौरव प्राप्त था। माता श्रीमती हुलसाबाई को उनकी माता होने का सुख मिला था। बहुत बचपन में मात्र १३ वर्ष की आयु में उन्होंने पूज्य गुरुदेव श्री रत्नऋषिजी म.सा. के सानिध्य में जिन दीक्षा ग्रहण की। न केवल जैन दर्शन के, संपूर्ण दर्शनों का उन्हें गम्भीर ज्ञान था। सर्व प्रथम ऋषि सम्प्रदाय के आचार्य, बाद में वि. सं. २००६ ब्यावर में वर्धमान स्था. जैन श्रमण संघ के प्रथम निर्माण के समय प्रधानाचार्य, फिर प्रधानमंत्री, उपाध्याय एवं अन्त तक श्रमण संघ के आचार्य पद गरिमा पूर्ण ढ़ंग से निर्वहन किया।

इस प्रकार श्रद्धेय पू. आचार्य श्री जः का व्यक्तित्व विविध विशेषताओं से ओत-प्रोत रहा है वे एकता के समर्थ क्रांतिकारी पुरुष थे। श्रमण संघ आज तक जिस गौरव गरिमा पूर्ण ढ़ंग से चलता रहा इसमें उनकी उल्लेखनीय महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। सदैव उन्होंने जोड़ने का काम किया - तोड़ने का नहीं। उनके स्वर्गवास के साथ ही चारों ओर से यह स्वर उभरने लगा है कि अब हमारे श्रमण संघ का क्या होगा।



आचार्य श्री थे तो हम सब निश्चिंत थे। विशेष उनका सानिध्य, संरक्षण एवं सूझबूझ श्रमण संघ के लिए कवच थी। पर काल के आगे हम सब विवश हैं, पर उपस्थित जो भी सर्वोच्च शास्ता है, उन्हें तथा संघ के प्रत्येक सदस्यों को इस नाजुक बेला में बहुत जागरूक रह कर विवेक पूर्वक संघ हित में वह महत्त्वपूर्ण करके दिखाना है कि हमारे संघ की अखण्डता कायम रह सके। अन्त में पूर्ण आस्था के साथ मैं आचार्य देव के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ।

■ ■

अद्भुत आकर्षक व्यक्तित्व आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म.

■ उपाध्याय श्री विशाल मुनि जी महाराज

आज सारा देश आचार्य देव के देवलोकगमन से विह्वल बना हुआ है। बच्चे से लेकर वृद्ध तक लाखों-लाखों दिलों में यही चिन्ता परिव्याप्त है अब किनके दर्शनों के लिए योजनायें बनाएंगे? अब महाराष्ट्र की धरती की ओर कौन भागता नजर आयेगा?

आचार्य-देव पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज ने तेरह वर्ष की बुराइयों से अछूती अवस्था में ही जैन मुनि के पावन चारित्र को ग्रहण किया। बाल्यावस्था की पवित्रता सारी जिन्दगी उनके जीवन में सुवासित बनी रही। बाल ब्रह्मचारी साधना से अपने को ही नहीं, करोड़ों-करोड़ों आत्माओं के जीवन को पवित्र बनाने के निमित्त बने रहे। उन्होंने ७९ वर्षों तक संयम-जीवन की आराधना की। वर्षों तक ऋषि-सम्प्रदाय के आचार्य, पांच सम्प्रदायों के आचार्य, श्रमण-संघ के मन्त्री तथा उपाध्याय आदि विशिष्ट पदों पर कार्यरत रहे तथा (२७) वर्षों तक आचार्य-सम्राट् के महान पद पर विराजमान रहे। आचार्य देव की आत्मसाधना उत्कृष्ट थी, वे तप-जप स्वाध्याय ध्यान आदि सभी साधु-साधना पद्धतियों में कुन्दन की तरह निर चुके थे। उनकी रग-रग में साधना की चमक परिव्याप्त हो चुकी थी। वे ऐसे पवित्र साधना पुंज बन चुके थे कि उनका मन, उनकी वाणी, उनका तन अक्षय सिद्धियों का स्रोत बन चुका था।

आचार्य देव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर अन्तिम अवस्था तक लाखों-लाखों व्यक्तियों के आकर्षण केन्द्र बने रहे। ऐसा किसी किसी युग-पुरुष का ही व्यक्तित्व होता है। जब श्रावक देवीचन्द जी के इस सुपुत्र ने १३ वर्ष की नन्ही सी



उम्र में ही संयम की आराधना का निर्णय लिया, लाखों व्यक्ति इस बाल मुनि को देखने उमड़े और आश्चर्य व्यक्त किया। जिस-जिस गांव और नगर में अपने महान गुरुदेव श्री रत्न ऋषि जी महाराज के साथ इस लघु दीक्षा वाले साधक ने विचरण किया उसे देखने के लिए जनमेदिनी उमड़ती रही। यह आचार्य देव के बचपन का एक अद्भुत आकर्षण था। अभी वह आश्चर्य एवं उनकी साधना पद्धतियों की विचित्रता लोगों के मन को आश्चर्यान्वित कर ही रही थी, तभी अनेक गण्यमान्य सन्त-रत्नों स्थविरों के उपरान्त इस उदीयमान सन्त आनन्द ऋषि महाराज को गौरवान्वित ऋषि सम्प्रदाय का आचार्य बना दिया गया।

इस घटना के साथ ही आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज प्रत्येक सम्प्रदाय में चर्चित हो गये और लाखों जनता के लिए और अधिक आकर्षण के केन्द्र बिन्दु बने रहे। जैसे ही संगठन की दिशा में ९ ऋषि सम्प्रदायों का एकीकरण का प्रयत्न हुआ उनमें से पांच सम्प्रदाय विलीनीकरण की आदर्श स्थिति में पहुंच गए। उनका एक संघ बना, पांचों सम्प्रदायों के अधिकारियों ने अपने-अपने पद छोड़ दिए और एक स्वर में इस महान आत्मा को आचार्य स्वीकार कर लिया। इसी घटना ने आचार्य देव की महानता को तो उजागर किया ही साथ में सम्पूर्ण देश के जैन समाज को संगठन की ओर अग्रेसर होने की प्रेरणा दी। ऐसी अनेक प्रेरणाओं, प्रयत्नों अन्य साध्य कर्मों का सुपरिणाम अजमेर सम्मेलन के रूप में उपलब्ध हुआ जिसमें प्रायः समस्त स्थानकवासी समाज एक संगठन के अन्तर्गत एकत्रित हुआ।

अखिल भारतीय वर्धमान स्थानकवासी श्रमण-संघ के महत्त्वपूर्ण पदों में-मन्त्री, संयोजक, उपाध्याय आदि अनेक पदों में आचार्य देव श्री आनन्द ऋषि जी महाराज ने अद्भुत सफलता के साथ पदों की गरिमा को बढ़ाया। वे सारे देश के साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के हृदय-सम्राट् बन गए। उन्होंने अद्भुत जन-प्रेम एवं विश्वास अर्जित किया। वे जन जन के लिए लोकप्रिय बन गए। अपार जन मेदिनी अलग अलग भावों के साथ आचार्य देव के इर्द-गिर्द मण्डराती रही। आनन्द देव की 'योग्यता, पवित्रता, काय-क्षमता, साधना, सहजता, प्रशासन की सफलता, मार्गदर्शन की दिव्यता' आदि अनेक गुणों का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के देवलोक गमन के बाद अनेक धुरन्धर महान सर्वबल सम्पन्न अनेक महास्थविर महानतम साधक आत्माओं प्रभावशाली सन्त-रत्नों के बीच श्री आनन्द ऋषि जी महाराज को ही श्रमण-संघ के द्वितीय पट्टधर के रूप में चुना गया और उन्हें आचार्य सम्राट् के पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

आचार्य भगवन्त श्री आनन्द ऋषि जी महाराज के गुणों का वर्णन करना सरल

कार्य नहीं है, वे अपने जीवन की प्रत्येक विधान में चरम अवस्था प्राप्त कर चुके थे। सफल शासक थे, एक आदर्श पुरुष थे। अपार लोक-प्रियता के बावजूद सदैव साधनोन्मुख रहे। आध्यात्मसाधना सूत्र, सरस्वती आराधना एवं आत्मविकार विनाश पराक्रम में उत्तरोत्तर अग्रसर होते रहे। इन अत्यन्त व्यस्त प्रपञ्च प्रमुख प्रशासकीय पदों में कार्यरत रहते हुए आत्मसाधना, समभाव-साधना आत्म-विकास की नित्य आराधना में उत्तरोत्तर सफलता और सिद्धि प्राप्त करना प्रत्येक प्रशासक आत्माओं के वश की, सामर्थ्य की बात नहीं है। यह तो कोई-कोई मुमुक्षु एवं अल्प संसारी आत्मा द्वारा ही सहजता पूर्वक सध पाता है। इतना मान पाने के बाद मन में मान को नहीं आने देना, अपार गौरव प्राप्त होने के उपरान्त भी गर्व नहीं आने देना, ज्ञान का सागर होकर भी ज्ञान की पिपासा बनाये रखना, देश व समाज का कर्णधार होकर भी अपने आपको समाज का सेवक ही समझना, अपार शक्ति-सामर्थ्य एवं सत्ता प्राप्त होते हुए भी हर दूसरे की भावनाओं का आदर करना, अपना स्वार्थ दूसरों के हित के लिए छोड़ देना, पर प्रसन्नता में हो सुखानुभूति अनुभव करना और प्रत्येक प्रतिकूलता में भी संघ हित और संघोन्नति के लिए जहर पोते हुए अमृत वर्षा करते रहना विरले युगान्तरकारी स्वाभाविक महापुरुषों का अपना व्रत रहता है। ऐसे लोग करोड़ों-करोड़ों आत्माओं में से महापुण्य के फलस्वरूप समाज को उपलब्ध होते हैं।



आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज हमारे समाज की ऐसी ही अद्वितीय उपलब्धि थे। अपनी आत्म-साधना को वहां तक पहुंचाये बिना उनके जीवन को तथ्य रूप में समझने का दावा करना, या उनकी आलोचना करना, हमारे जीवन की तुच्छता का ही परिचय होगा, क्योंकि जिस विराट् दृष्टि से वे सोचते थे तथा निर्णय लेते थे उसका स्वरूप हम अपने बौने स्थूल चक्षुओं से कभी नहीं नाप सकते हैं। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि उन्होंने हर क्षण संघोन्नति का प्रयत्न किया, पुरुषार्थ किया, आत्मा-साधना के साथ साथ संघ-साधना और सर्वोदयी उत्थान उनका आजीवन लक्ष्य बना रहा।

आचार्य देव ने पूना सम्मेलन का सफल आयोजन कराकर अपने युग-पुरुषत्व एवं युग नायकत्व का स्पष्ट परिचय दिया। इस सम्मेलन के माध्यम से उन्होंने कन्या कुमारी से कश्मीर तक को एक सूत्र में पिरो दिया, आज उत्तर भारत विहारी सन्त दक्षिण भारत के किनारों तक एवं दक्षिण विहारी सन्त उत्तर भारत की श्रृंखलाओं तक विचरण कर रहे है, यह भावात्मक एकता एक सूत्रता की स्थापना का श्रेय आचार्य देव श्री आनन्द ऋषि जी म. को ही प्राप्त था। आज राजस्थान, पंजाब, दक्षिण भारत और मध्य भारत सब एकत्र से हो गये हैं। यह साधु मुनिराजों के विचरण से ही सम्भव हुआ है। इसका



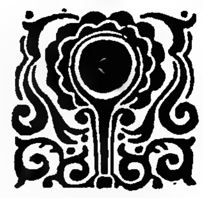
सूत्रपात किया है आचार्य देव श्री आनन्द ऋषि जी महाराज ने।

कुछ वर्षों पहले तक लाखों की जनमेदिनी हर वर्ष आनन्द-दरबार में उनका प्रवचन सन्देश श्रवण के लिए ज्ञान की पिपासा एवं ललक लिए उमड़ती रहीं, आनन्द दरबार बारहों महीने भरा रहता था। कालक्रमानुसार जब आचार्य-प्रवर की शक्ति-क्षीणता बढ़ी, वे प्रवचनआदि देने में असमर्थ हुए, वृद्धत्व का प्रभाव बढ़ता गया केवल मंगल-पाठ तक ही उन की वाणी सीमित हो गयी, परन्तु जनता का आवागमन पहले से और अधिक बढ़ गया। प्रवचन-सन्देश आदि के श्रवणार्थ हजारों आते थे तो मांगलिक के लिए लाखों की भीड़ उमड़ने लगी। आगे चल कर आचार्य देव मांगलिक के लिए भी शारीरिक रूप से असमर्थ हुए मांगलिक बन्द होने के बाद जनता का आवागमन और अधिक बढ़ गया। केवल आचार्य देव की आंखों की झलक पाने के लिये जनता हजारों मीलों का सफर करके अहमद नगर पहुंचने लगी। जब उनकी आंखें भी वृद्धत्व के प्रभाव से स्पष्ट रूप से नहीं खुल पाती थीं, तब लोगों की भीड़ पूर्वपिक्षा कई गुणा बढ़ गयी केवल उनके पावन तन का दर्शन कर अपने आपको कुतकुत्य करने के लिए।

यह प्रभाव आचार्य देव की साधना आत्माराधना का था। उन्होंने साधना से अपने मन वाणी तन को ही इतना पवित्र बना लिया था कि उनके शरीर की एक झलक से ही हजारों रुपये खर्च करके हजारों मील चल कर आने वाले दर्शनार्थी को अवर्णनीय शान्ति तृप्ति अपार आत्म-शांति की उपलब्धि निश्चित ही हो जाया करती थी। आचार्य देव ने अपने जीवन से जो अमृत-वर्षा की वह अद्भुत एवं आश्चर्यजनक ही है। जिन्होने एक बार दर्शन किया वे बार-बार दर्शनों के लिए लालायित बने रहे। यह आचार्य देव के अन्तः-व्यक्तित्व का अद्भुत चमत्कार ही था।

अब हम सब का कर्तव्य है कि हम आचार्य देव की जीवन-चर्या को, जीवन-पद्धति को अपने जीवन का आदर्श बनायें और सदैव अपने हित के साथ-साथ समाज-संघ संगठन तथा धर्म के हित साधन को प्रमुखता प्रदान करें जिस से हमारे जीवन में समर्पण सहज हो सके। क्योंकि बिना समर्पण के समाज एवं जीवन का निर्माण असम्भव है। आचार्यदेव का वरद हस्त जैसे अब तक प्रत्यक्ष बना हुआ था अब भले ही अप्रत्यक्ष रूप में हो हम सब के ऊपर सदैव छत्रवत् बना रहे यही हमारी मंगल-भावना है, इन्हीं प्रार्थनाओं के साथ अपने हृदयंगत श्रद्धा के सुमन उस परम पवित्र दिवंगत आचार्यप्रवर के चरणों में हर क्षण, हर पल समर्पित करते हैं और उनके पथ को अपना आदर्श बनाये रखने का संकल्प लेते हैं।





आनन्द का आनन्दमय व्यक्तित्व

■ मुनि श्री नेमिचंद्रजी म.

आत्मा का एक प्रमुख गुण है - आनन्द। उसे दूसरे शब्दों में आगमों में निरूपित किया है - अव्याबाध (आत्मिक) सुख। हम उसका उल्लेख आत्मानन्द के नाम से ही करेंगे। जहाँ आनन्द होता है, वहाँ जीवन में अनाकुलता, शान्ति, मस्ती, निश्चिंतता और समता आदि गुण अवश्य ही होते हैं। सच्चा आनंद सहज आत्मिक सुख का, अव्याबाध एवं अक्षय सुख का पर्यायवाची है। और वह तभी उपलब्ध हो सकता है, जब सर्वभूतात्मभूत का सिद्धान्त जीवन में स्फुरित होता हो, विश्वमैत्री का मधुर अन्तर्नाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, हर पहलू पर गूंजता हो, समता के मधुर संगीत से व्यक्ती का जीवन अभ्यस्त हो। इतना ही नहीं, लाभ और अलाभ में बाह्य सुख सुविधा और बाह्य दुःख दुविधा में, निन्दा और प्रशंसा में, सम्मान और अपमान में, दीर्घकालिक जीवन हो या मृत्यु ही सिर पर आ गई हो, शर्दी हो या भयंकर गर्मी हो, जनता की - भावुक भक्तों की भीड़ हो अथवा थोड़े से भोले भाले ग्रामीण अनपढ़ लोग हों, इन और ऐसे प्रत्येक द्वन्द्वों में जिनका तन-मन-वचन हर्ष शोक से, प्रसन्नता और चिन्ता से, तथा प्रियता-अप्रियता के भावों से, या शास्त्रीय भाषा में कहें तो राग (मोह) और द्वेष से युक्त नहीं होता; वही व्यक्ति आनन्द के महासागर में गोते लगा सकता है। स्थानांगसूत्र में उसे ही 'अलमत्थु' (अलमस्तु) कहा है। वर्तमान युग की भाषा में कहें तो हर हाल में मस्त या अलमस्त फकीर कह सकते हैं। उर्दू भाषा में फकीर की व्याख्या की गई है, 'जो फिक्र (चिन्ता) का फाका (पान) कर लेता है, वही फकीर है। 'आचारांग सूत्र' में उक्त 'धूत' शब्द का फलितार्थ भी यही है - 'जो काम, कामना-वासना, क्रोधादि कषाय, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, ईर्षा, स्पृहा, लालसा आदि विकारों का धुनन कर देता है, उन्हें प्रकम्पित और पराजित कर देता है, कर्मों को नष्ट करने के लिए सदा प्रयत्नशील और अप्रमत्त रहता है। वह आत्मौपम्य, समता, सरलता, मृदुता, क्षमा, पवित्रता, लघुता आदि आत्मगुणों को अपनाने में ही आनन्द का कलकल छलछल करता हुआ परस्रोत- सतत प्रवाहित होनेवाला निर्झर प्रतीत होता है। 'परमानन्द पंचविंशतिका' का एक श्लोक उस महनीय आत्मा के आनन्दमय जीवन की साक्षी इन शब्दों में देता है -

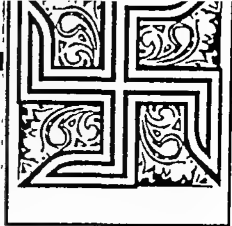
'आनन्दरूपं परमात्म-तत्त्वम्,
समस्त संकल्प विकल्प मुक्तम् ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यम्,
जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ॥'

वे स्व-भाव (आत्मा के निज गुणों) में लीन=तन्मय साधक समस्त संकल्प-विकल्पों से मुक्त हो कर आनन्दरूप परमात्मतत्त्व में नित्य निवास करते हैं। योगी स्वयमेव इस तत्त्व को जान लेता है। प्रस्तुत श्लोक में परमात्मा के आनन्दमय रूप का जो चित्रांकन



किया है, उसे एक साधनाशील आत्मा भी संकल्प-विकल्पों के द्वंद्वों से ऊपर उठ कर एवं समभाव, विश्वमैत्री भाव एवं आत्म-भाव में लीन होकर प्राप्त कर सकता है।

हमारे हृदयसम्राट् महामहिम राष्ट्रसन्त श्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री आनन्दऋषिजी महाराज का जैसा नाम था, तदनुरूप ही उनका बहिरंग और अन्तरंग व्यक्तित्व आनन्दमय था। उनके जीवन का हर कोना आनन्दरूप परमात्मतत्त्व में लीन था। विशाल भाल, चिन्तनशीलता का साक्षी मस्तिष्क, तेजोमय वात्सल्यवृष्टिपरायण तेजस्वी पारदर्शी नेत्र, सौम्य शान्त एवं गम्भीर चेहरा, गौरवर्ण, सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के दुःखदर्द को गम्भीरतापूर्वक श्रवण करनेवाले सजग कान, वचनगुप्ति की परिचायिका एवं भाषासमिति की जागृति की प्रेरणादायिनी मुख पर श्वेत मुखवस्त्रिका, सादे सीधे श्वेतधवल वस्त्रों के परिधान से सुशोभित एवं पवित्रता और उज्ज्वलता का सूचक उनका मानोन्मान परिमाण से युक्त शरीर, पद-पद पर वाणी-संयम में जागृत उनका दैदिप्यमान मुखमण्डल एवं धीर-गम्भीर मन्थर गति से, स्थिरतापूर्वक गति एवं चर्या करने वाले उनके चरणयुगल एवं करयुगल यही उनका आनन्दमय बाह्य व्यक्तित्व था। किन्तु अन्तरंग व्यक्तित्व तो इससे भी बढ़कर आनन्दमय था। मानसिक रूप से शान्त और स्वस्थ रहना उनके जीवन का अंग बन गया था। श्रमणसंघ के आचार्य पद पर आसीन होने से पूर्व भी, और पश्चात् भी उनके सामने कई बार कठोर परिस्थितियाँ उपस्थित हुई, कई बार ऐसे कटुता प्रसंग भी उनकी अग्निपरीक्षा करने हेतु आए, अपने भूतपूर्व सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों के साध्वाचार सम्बन्धी उलझे हुए प्रश्न भी उनके समक्ष आए और श्रमण संघीय पदाधिकारियों के विकट प्रश्न भी रंगमंच पर आए, मगर आपने जिस कुशलता, धैर्य, शान्ति और जागृति के साथ उन सबका समाधान किया, वह अपने आप में अद्भुत था। वे विकट प्रश्नों, समस्याओं और परिस्थितियों के समय भी घबराएँ नहीं, विक्षुब्ध नहीं हुए और न ही पक्षपातपूर्वक समाधान दिया। आपके आनन्दमय जीवन की यही विशेषता थी कि आप किसी भी समस्या या परिस्थिती के आने पर तत्काल निर्णय नहीं देते थे। बल्कि कई बार तो किसी व्यक्ति ने आवेशवश या स्व-सम्प्रदाय मोहवश आपके प्रति अंटसंट लिख दिया या पत्र में आक्षेपात्मक बातें लिख दीं या प्रत्यक्ष में कह दीं, तब भी आप न तो शीघ्रता में आ कर उसका उत्तर देते थे, न ही मन में किसी प्रकार का क्षोम, द्वेष या बदले की भावना लाते थे। क्रोध और आवेश के अनेक निमित्त मिलने पर भी आप शान्त और अव्याकुल तथा अनाविष्ट रहते थें। कई बार तो वे यह सोच लेते थे कि सामनेवाले व्यक्ति ने साम्प्रदायिक विद्वेषवश कुछ कहा या, लिखा है, अथवा आवेशग्रस्त होकर किसी के गुणों के प्रति उपेक्षा करके केवल दोषारोपण किया है, तो उन प्रश्नों को अनावश्यक और विरोधवर्द्धक, कषायोत्तेजक या विघटनकारक समझकर उत्तर नहीं देते थे। जिनका उत्तर देना आवश्यक समझते थे,



उनका उत्तर भी बहुत नपे-तुले सौम्य और निष्पक्ष शद्बों में देते थे। आपको किसी भी कटु या निन्दात्मक बात का आवेशवश एवं आपे से बाहर होकर उत्तर देते कभी नहीं देखा। प्रत्येक परिस्थिति में समभाव लीन रहना ही उनके आनन्दमय जीवन का अंग था। उन्होंने अपने साधुजीवन में भारतवर्ष के एक छोर से दुसरे छोर तक सुदूर दक्षिण भारत से उत्तर भारत तक का तथा पश्चिम और मध्य भारत का भ्रमण किया, उनमें कई बार अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों से भी वास्ता पड़ा, कई बार उन्हें बीमारी, थकान, शारीरिक पीड़ा, भूख और प्यास के कष्टों का भी सामना करना पड़ा, परन्तु आपने उस समय आत्मभावों लीन होकर क्षमता और समता के साथ उन्हें सहन किया। आप अपने आत्मानन्द में मग्न रहे। जीवन के सन्ध्याकाल में जब आपका शरीर अशक्त और शिथिल हो गया था, वाचा भी अत्यन्त क्षीण हो गई थी; फिर भी आप प्रायः मौन, शान्त और सतर्क रहते थे। कोई भी व्यक्ति आपके दर्शनार्थ आता या आपसे अपनी समस्या के विषय में कुछ समाधान पाने हेतु आता, उसकी बात आप प्रेमपूर्वक मन्दमुस्कान के साथ सुनते थे, संतोषजनक समाधान एवं मंगलपाठ्युक्त उत्तर भी देते थे, जो आपकी आनन्दमयी मंगलभावना का परिचायक था।

आपका आनन्दमय जीवन स्वार्थमय, संकीर्णतामय या अनुदायतामय नहीं था। श्रमणसंघ के आचार्य होते हुए भी आप में अन्य धर्मों, सम्प्रदायों, पन्थों, जाति, भाषा, प्रान्त एवं राष्ट्र के व्यक्तियों के प्रति संकीर्णता की भावना नहीं थी। आपके मनमस्तिष्क में अपने-पराये, तेरे-मेरे, स्वसम्प्रदायीय परसम्प्रदायीय, स्वजातीय-परजातीय, स्वप्रान्तीय-परप्रान्तीय आदि के समताविघातक संकीर्ण तत्त्व नहीं थे। सबके प्रति आत्मीयता, गुणग्राहकता, मिलनसारी, सद्गुणों एवं सद्विचारों को सबसे ग्रहण करने की उत्सुकता, मानवजाति में शिक्षण-संस्कार की कमी की पूर्ति के लिए तत्परता तथा पद में छोटा हो या बड़ा, सामान्य व्यक्ति हो या विशिष्ट सबके प्रति उनमें आत्मबन्धुता की भावना थी। कहना होगा कि धनिक और निर्धन, शिक्षित और अशिक्षित, पतित और पवित्र, सभ्य और असभ्य, ग्रामीण और नागरिक, हरिजन-परिजन या गिरिजन एवं अपने-पराये आदि भेद-भावों से ऊपर उठकर आनन्दमय जीवन के लिए अनिवार्य समता के सिद्धान्त को आपने व्यवहार में चरितार्थ कर लिया था।

उनके आनन्दमय प्रेममय एवं समतामय जीवन का सबसे ज्वलन्त प्रमाण यही है कि उनके स्वर्गवास के पश्चात् अन्तिम संस्कार से पूर्व उनके पवित्र दर्शनों के लिए स्थानीय और बाहर के हिन्दू, जैन, मुसलमान विविध प्रान्तों के तथा राजनैतिक, समाजसेवी एवं विद्वान् जनसमुद्र भी लाखों की संख्यों में उमड़ पड़ा था। सबने अपनी श्रद्धांजलि उन दिवंगत महान् आत्मा को अर्पित की। उनके आनन्दमय व्यक्तित्व से सभी प्रभावित थे। हम भी उन महनीय आनन्दमय व्यक्तित्व के धनी महापुरुष के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।





स्वर्णिम इतिहास

■ मन्त्री श्री. कुन्दनऋषिजी म.

उपाध्याय पूज्य श्री आनंदऋषिजी म. का वर्षावास १९६० को वाम्बोरी में था, दीपावली के दिन चल रहे थे, पोष्टमेन श्रावक संघ के अध्यक्ष के नाम का एक रजिस्टर लेटर लेकर आया था। आचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी म. ने एक कार्यवाहक समिति का गठन किया उसमें पांच सन्तों का समावेश करते हुए सम्पूर्ण अधिकार उपाध्यायश्रीजी को दिए थे। काफी उलझनपूर्ण प्रश्न थे, उनकी संपूर्ण फायले भी भेज दी गयी थीं।

उपाध्यायश्रीजी ने अपने दीर्घ अनुभव् द्वारा उन सभी का सर्वमान्य समाधान खोजा, उससे चतुर्विध संघ में एक उत्साह की लहर फैल गई। संघ संगठन के बिखराव की स्थिति समाप्त हुई। उसी वर्ष तिलोक शताब्दि दीक्षा वर्ष घोड़नदी में मनाया गया, और २६ जनवरी को पूना में श्री ज्ञानप्रभाजी म. को दीक्षा दी। चिंचवड स्थानक के उद्घाटन पर उपस्थित रहते हुए सन ६१ का वर्षावास आश्वी में किया, केशरमलजी बोरा की भक्ति उदारता ने वर्षावास को अलग रूप दिया था।

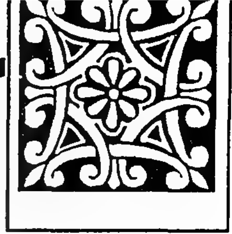
वर्षावास के पश्चात् कोपरगांव की ओर प्रस्थान हुआ था, वहाँ आचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी म. के स्वर्गवास के समाचार मिले, समाज में दुःख की छाया फैल गई थी। घाटकोपर में वर्षावास घोषित हुआ था। विदुषी श्री सुमतिकुंवरजी महासतीजी भी साथ में थी। मिरी गाँव में दि. ९।५।१९६२ को मुझे (कुन्दनऋषिजी) दीक्षा देकर बम्बई की ओर प्रस्थान किये।

यद्यपि श्रमणसंघ का कार्य उपाध्याय श्रीजी सभी की सलाह से ठीक चला रहे थे, किन्तु आचार्य का स्थान रिक्त था, अतः बम्बई के कॉन्फरेन्स के पदाधिकारियों ने रिक्त स्थान की पूर्ति का बेड़ा उठाया और परीक्षा बोर्ड के रजिष्ट्रार पं. बद्रीनारायण शुक्ल को उस कार्य योग्य समझकर भेजने का निर्णय लिया। पंडितजी बुद्धिमान, मधुरभाषी, कार्यदक्ष थे। अतः स्थान स्थान पर श्रमण संघ के पदाधिकारियों से मिलकर उनके बंद लिफाफे लेकर पहुँचे, सभी की उत्कंठा उसी में जुड़ी हुई थी, घाटकोपर पहुँचकर मूर्धन्यश्रावक एवं सन्तसतियों के सामने बंद लिफाफे खोले गए। सभी ने उपाध्यायश्रीजी को ही इस पद के योग्य मानकर उनपर विश्वास व्यक्त किया था।

चातुर्मास के पश्चात् श्रीसुयशा, साधना, श्रीसुदर्शनाजी आदि को दीक्षा देकर उपाध्यायश्रीजी माटुंगा पहुँचे, वहाँ कान्फरेन्स की मिटिंग में आचार्यपद की घोषणा हुई। चारों ओर प्रसन्नता छा गयी। साथ ही अजमेर संमेलन की घोषणा की गई। आचार्य सम्राट पू. श्री आनन्दऋषिजी म. के सामने एक बहुत बड़ी समस्या थी,

उनके प्रमुख शिष्य श्री मोतीऋषिजी म. अर्धांगवायु की बिमारी से लड़ रहे थे, दूसरी ओर संघ-संगठन के लिए अजमेर की ओर विहार, काफी सोचने के बाद उन्होंने संघ को महत्त्व दिया, शिष्य मोह को गौण किया और १४ जनवरी को घाटकोपर से प्रस्थान कर दिया। साथ में तपस्वी श्री लाभचंद्रजी म. भी थे। नासिक में तपस्वी श्री मगनमुनिजी म. मिले, मालेगाँव में श्री कल्याणऋषिजी म., इन्दौर में मंत्री श्री सौभाग्यमुनिजी म. मिल गये। शाजापूर में वर्षावास हुआ।

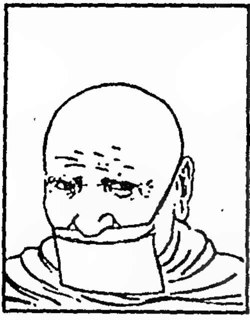
आचार्यपद मिलने के पश्चात् पहला चातुर्मास था। दर्शनार्थियों का काफी जमघट रहा। स्थविरा श्री रतनकुंवरजी म. का वर्षावास साथ में था। वर्षावास के पश्चात् उज्जैन, नागदा, खाचरौद, रतलाम, जावरा, मन्दसौर आदि में जगह जगह मालवा के सन्तों का मिलाप होता रहा, उन सभी का संमेलन के लिए साथ लेते हुए आगे बढ़ रहे थे। जगह जगह जनता में श्रद्धा और भक्ति बढ़ रही थी। निम्बाहेड़ा, चित्तौड, गुलाबपुरा, ब्यावर होते हुए अजमेर पधारे। राजस्थान के भी मूर्धन्य सन्त मिलते गए और एक विशाल सन्त समुदाय के साथ अजमेर पधारे, जयपुर की ओर से भी उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म., उपाध्याय श्री कवि अमरमुनिजी, पंजाब के मंत्री श्री शुक्लचंद्रजी म., श्रमण फुलचंदजी म., भंडारी पद्मचंदजी म. आदि भी पधारे। संमेलन काफी सफल रहा।



आचार्यपद की चादर चतुर्विध संघने समर्पित की। राजस्थान के मुख्य मंत्री मोहनलाल सुखाडिया तथा हजारों की जनता उपस्थित थी, उसी समय मन में धार लिया था कि भू. पू. आचार्य श्री आत्मारामजी म. की पुण्यभूमि, जन्म एवं कर्मभूमि पंजाब एवं लुधियाना रही है, अतः वहाँ पहुँचना चाहिए। उधर के चतुर्विध संघ की विनंति भी थी। अतः संमेलन के बाद जयपुर की ओर विहार किया यद्यपि गर्मी बहुत अधिक थी अपनी शारीरिक परिस्थिति को गौणकर चल पड़े। यद्यपि देहली तक जाने की भावना थी, फिर भी जयपुर वालों की हार्दिक भावना को टाल नहीं सके और वर्षावास जयपुर घोषित हुआ। वहाँ युरिन में तकलीफ अधिक होने लगी, टेस्ट किया गया। वहाँ श्री विजयऋषिजी एवं वल्लभऋषिजी की दीक्षा संपन्न हुई।

आप्रेशन भी हुआ एवं संयुक्त वर्षावास। उपाध्याय कवि श्री अमरमुनिजी म., प्रवर्तक श्री शुक्लचंद्रजी म., भंडारी पद्मचंदजी म. आदि एवं विदुषी श्री सुमतिकुंरजी म., विदुषी श्री केशरदेवीजी साथ थे। वर्षावास में प्राकृत चेअर युनिव्हरसिटी में लगाने का प्रयास हुआ। उसी तरह पाठशाला का भी प्रयत्न किया। वहाँ से टोंक सवाई माधोपुर पधारे। वहीं पर कवि अशोकमुनिजी म. का भी मिलाप हुआ।

वर्षावास देहल्ली चोदणी चौक घोषित



हुआ। करीब दो तीन दिन प्रयत्न कर आपसी मनमुटाव समाप्त किया गया। भरतपुर होते हुए आग्रा पधारें, वहाँ स्थविर श्री पृथ्वीचंदजी म., श्री कविजी म. आदि का मधुर मिलाप हुआ। वहाँ से देहल्ली पधारें। श्रमण फुलचंद्रजी म., पं. प्रवर श्री कन्हैयालालजी म., श्री पुष्पभिक्खुजी म., स्थविर भागचंद्रजी म. आदि का मिलाप रहा। वर्षावास धूमधाम से संपन्न हुआ।

आचार्य तुलसी एवं आचार्य देशभूषणजी भी देहल्ली में थे। तीनों आचार्यों की बैठक हुई, कई समाज संगठन की बातें हुई, उनकी दीक्षा पर पधारे साथ बैठकर क्षमापना पर्व भी मनाया गया। इस ऐतिहासिक वर्षावास के पश्चात् कुछ दिन उपनगरों में ठहरकर पंजाब की ओर प्रस्थान हुआ, श्रमण श्री फूलचंद्रजी म. आदि साथ थे।

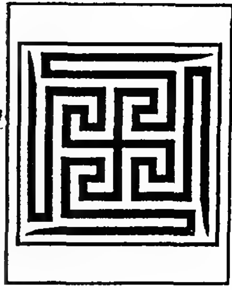
फरवरी २८ को अम्बाला शहर में विशाल स्वागत हुआ, करीब सौ साधु साध्वियों की उपस्थिति थी। पंजाब के गव्हर्नर, मंत्री एवं हजारों की जनमेदिनी थी। संपूर्ण शहर नववधू की तरह सजाया गया था। वहाँ पहुँचते ही पंजाब के सन्तों में जो कुछ बातों को लेकर दुरावा था उसे मिटाया। अनेक छोटे बड़े क्षेत्रों को स्पर्शते हुए लुधियाना में वर्षावास किया। पं. प्रवर श्री हेमचन्द्रजी म. श्रमणजी आदि सन्त तथा स्थविरा श्री लज्जावतीजी म., श्री सीताजी, कौशल्याजी आदि साध्वियों का वर्षावास साथ में था।

वर्षावास के पश्चात् जगह जगह स्पर्शते हुए चण्डीगढ़ पधारे, वहाँ से नवा शहर होकर आचार्यश्रीजी की जन्मभूमि राहो पधारे वहाँ उनके स्मरणार्थ दवाखाना आदि मानवसेवा कल्याण दालन की निर्मिति हो ऐसी भावना हुई और ठोस कदम उठाए।

जालंधर, होशियारपूर होते हुए पठाणकोट पधारे। वहाँ पर पंजाब राज्य का संपूर्ण मंत्रीमंडल उपस्थित था। जम्मू वर्षावास के लिए पधारे पं. प्रवर श्री ज्ञानमुनिजी म. एवं महासतीजी श्री गुणमालाजी, श्री रमाजी साथ थे।

वर्षावास के पश्चात् अमृतसर जडियालागुरु सुलतानपुर होते पधारे। वहाँ स्थविर मुनि श्री रघुवरदयालजी म. का मिलाप हुआ। जालन्धर में प्रवर्तक श्री शुक्लचंदजी म. का स्वास्थ्य अस्वस्थ होने से उधर जाना पड़ा। वहाँ से विहार के बाद थोड़े ही दिनों में प्रवर्तक श्रीजी म. पुनः लुधियाना होते हुए अनेक क्षेत्रों को स्पर्शते हुए फरीदकोट पधारे, वहाँ सिद्धान्त शाला के लिए उपदेश दिया। उसी समय काफी बड़ी धनराशि भी एकत्रित हुई।

होली के दिन मालेरकोटला वालों का अत्यधिक आग्रह के कारण देहल्ली का मार्ग छोड़कर पुनः मालेरकोटला की ओर जाना पड़ा। वर्षावास में महासतीजी श्री सुन्दरदेवीजी म., श्री आज्ञावतीजी, श्री राजकुमारीजी आदि तीन संघाडे साथ थे, वर्षावास काफी सफल रहा।



प्रवर्तक पद की नियुक्ति को लेकर थोड़ी अशान्ति चल रही थी अतः वर्षावास के बाद गुरुकुल पंचकुला में कार्यक्रम को लेकर सभी संत सतियाँ एकत्र हुई थी, अतः वहाँ बैठकर अशान्ति को समाप्त किया। वहाँ से अम्बाला होकर मनक जाखल होते हुए रतिया पधारे। वहाँ वयोवृद्ध सन्तों से मिलन हुआ। हिसार हांसी रोहतक आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए देहली में पधारे। पंजाब केसरी श्री प्रेमचंदजी म. का मिलाप हुआ। सब्जीमंडी में वर्षावास किया। वहाँ प्राकृत विद्यापीठ की स्थापना की। अर्थराशि एकत्र हुई। हर दृष्टि से वर्षावास सफल रहा। परमविदुषी श्री सुमतिकुंवरजी म. साथ थे। उसी तरह सुवर्णाजी म., श्री रमाजी आदि भी।

वर्षावास में चांदनी चौक में आचार्यश्रीजी के मुखार्विंद से चार दीक्षाएँ भी हुई। वर्षावास के पश्चात् उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म. भी पधारे। विश्व धर्म संमेलन भी हुआ था। उत्तरप्रदेश की ओर विहार हुआ।

मेरठ में पं. प्रवर श्री शान्तिस्वरूपजी म. का मिलाप हुआ, बडौत में वर्षावास किया। वहाँ धार्मिक शिक्षण की दृष्टि से एक ट्रस्ट का भी निर्माण किया गया। उत्तरप्रदेश को स्पर्शते हुए पुनः देहली पधारे वहाँ महासतीजी श्री पद्मादेवीजी म. के संघाडे में दो दीक्षाएँ देकर उपनगरों को स्पर्शते हुए अल्वर की ओर विहार किया।

पल्लीवाल क्षेत्रों को स्पर्शते हुए सवाई माधोपूर पधारे। वहाँ से कोटा पहुँचे। दिवाकर शिक्षण संस्था की स्थापना की। वहाँ राजस्थान से मरुधर केसरीजी म. के आग्रह के कारण मध्य प्रदेश का मार्ग छोड़कर मारवाड की ओर मुड़ना पड़ा। किसनगड़, अजमेर, सेन्दडा में राजस्थान के संतों का मिलाप हुआ, वर्षावास सफल रहा।

चाऊडिया में पुनः मरुधर केसरीजी म., मधुकरजी आदि मिले। सांडेराव प्रान्तीय संमेलन करने का निर्णय हुआ। आचार्यश्रीजी भीलवाडा पहुँचे वहाँ मेवाड़ प्रान्त में सिद्धान्त शाला की नींव रक्खी गई। वहाँ से पुनः सांडेराव पधारे। काफी सन्तसतियों की उपस्थिति में संमेलन हुआ। वहाँ श्री प्रवीणमुनि की दीक्षा भी हुई। सादड़ी होते हुए आचार्यश्रीजी मेवाड़ पहुँचे। वहाँ से प्रतापगढ़ में महासतीजी श्री सिरेकुंवरजी आदि को दर्शन देने पधारे।

वहाँ से मन्दसौर होकर रतलाम पहुँचे। वहाँ श्री कस्तूरचंदजी म. आदि के दर्शन हुए। शाजापुर में श्री कीर्तिसुधाजी म. की दीक्षा कर शुंजालपूर में वर्षावास किया। श्री वल्लभकुंवरजी म., श्री इन्द्रकुंवरजी म. साथ में थे। शुजालपुर से भोपाल पधारे। वहाँ श्री पुष्पाकुंवरजी म. एवं सुनिलप्रभाजी म. दोनों की दीक्षाएँ हुई।

नागपुर वर्षावास हुआ, कई वर्षों के बाद महाराष्ट्र में पदार्पण होने से जनता का काफी आगमन था, महाराष्ट्र श्रावक संघ का अधिवेशन हुआ। चातुर्मास के पश्चात् विदर्भ के क्षेत्रों को स्पर्शते हुए



भुसावल पधारे। वहाँ श्री आदर्शऋषिजी, श्री प्रवीणऋषिजी, श्री लाभऋषिजी म., श्री भास्करमुनिजी म. ४ दीक्षाएँ हुईं। वहाँ छात्रावास के लिए एक स्थान भी लिया गया।

श्री पं. प्रवर श्री प्रतापमुनिजी म., श्री कान्तिऋषिजी म. आदि का मिलाप हुआ। जलगांव, चालिसगांव आदि क्षेत्रों से मनमाड़ पधारे। वहाँ श्री सुशीलकुंवरजी म. को दीक्षा दी। वसन्त पिंपलगांव में दो दीक्षाएँ एक सौभाग्यमुनिजी म. की सेवा में दूसरी महासतीजी श्री बिरदीकुंवरजी म. की सेवा में। नासिक में ४ दीक्षाएँ कर बम्बई पधारे वहाँ आचार्यश्रीजी के सान्निध्य में वालकेश्वर स्थानक का उदघाटन हुआ। कांदावाडी वर्षावास किया। २५ वीं निर्वाण शताब्दि मनाकर पूना की ओर प्रस्थान हुआ।

अमृतमहोत्सव तथा श्री सन्मतिकुंवरजी म. को दीक्षा दी गई। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री एवं हजारों की जनमेदिनी की उपस्थिति रही। चाकण में श्री मंगलऋषिजी म. को दीक्षा दी। घोडनदी वर्षावास हुआ। वर्षावास के पश्चात् आचार्यश्रीजी को हार्ट की तकलीफ हुई अतः कुछ दिन वहाँ ठहरना पड़ा। श्री कुमुदऋषिजी, श्री किरणकुंवरजी एवं श्री नूतनप्रभाजी को भी वही दीक्षा दी।

आत्मार्थी श्री मोहनऋषिजी म., मंत्री श्री विनयऋषिजी म., विदुषी उज्ज्वलकुंवरजी म. को दर्शन देने की दृष्टि से अहमदनगर पधारे। वहाँ श्री कनकऋषिजी म., श्री भावप्रीतिजी की दीक्षा हुई। पूना वर्षावास किया। आनन्द फाऊंडेशन की पूर्व में जो घोषणा हुई थी उसके वैधानिक कार्य का प्रारंभ पूना में हुआ। श्री विजयस्मिता, श्री जयस्मिताजी की दीक्षा भी हुई। चातुर्मास में विदुषी श्री प्रीतिसुधाजी साथ थे।

चातुर्मास के पश्चात् अनेक छोटे क्षेत्रों को स्पर्शते हुए पाथर्डी पधारे। श्री विजयप्रभाजी की दीक्षा कर अहमदनगर वर्षावास किया। चातुर्मास काल में श्री तिलोक जैन धार्मिक पाठशाला का प्रारंभ किया। वर्षावास में विदुषी श्री प्रमोदसुधाजी म., श्री अजीतकुंवरजी म. सेवा में थे। वर्षावास के पश्चात् भिंगार में श्री पद्माजी की दीक्षा कर पाथर्डी में श्री सूर्यप्रभाजी, श्री चंद्रप्रभाजी को दीक्षा देकर आचार्यश्रीजी बेलापुर पधारे। वहाँ श्री सुनन्दाजी की दीक्षा हुई।

वहाँ से घोडेगांव में श्री अक्षयऋषिजी म., श्री पद्मऋषिजी म., श्री पुष्पचूलाजी की दीक्षा कर आचार्यश्रीजी औरंगाबाद होते हुए जालना वर्षावास को पधारे। विदुषी श्री अमृतकुंवरजी, श्री प्रमोदसुधाजी म. भी सेवा में थे।

सिकन्दराबाद श्री संघ की विनंति को लक्ष्य में रखते हुए आंध्र की ओर प्रस्थान हुआ। कामारेड्डी में श्री दर्शनऋषिजी म. की दीक्षा हुई। परीक्षा बोर्ड के स्थानांतर कर अहमदनगर लाने का निर्णय लिया गया।

हैद्राबाद में उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म. का संमिलन हुआ एवं केशरदेवीजी म.

की सेवा में दीक्षा कर सिकन्द्राबाद में वर्षावास किया। उस समय युवाचार्य पद के लिए श्री मधुकरजी म. के नाम की घोषणा हुई। वर्षावास के पश्चात् कान्ति सुधाजी म. को दीक्षा देकर रायचूर पधारे। कर्नाटक के कुछ क्षेत्रोंको स्पर्शते हुए पूना से वडगांव पधारे। वहाँ सात दीक्षाएं कर नाासिक वर्षावास किया। विदुषी श्री प्रीतिसुधाजी भी साथ थे। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री भी आए थे।

वर्षावास में श्री प्रशान्तऋषिजी, श्री प्रज्ञाजी श्री प्रेरणाजी आदि तीन दीक्षाएँ हुई। वहीं से ८१ के वर्षावास-हेतु अहमदनगर पधारे। परीक्षा बोर्ड के स्वाध्याय भवन का शिलान्यास भी हुआ। वर्षावास के पश्चात् पूना में 'श्री महेन्द्रऋषिजी म. आदि की ७ दीक्षामें हुई वर्षावास के पश्चात् पुनः चन्द्रेशमुनिजी आदि ७ दीक्षाएँ हुई और नासिक पधारे। संयुक्त वर्षावास में महासती श्री मानकुंवरजी की सेवा में एक दीक्षा हुई। युवाचार्यश्री भी नासिक पधारे थे। चातुर्मास के पश्चात युवाचार्यजी के अकस्मात स्वर्गवास से सभी जगह शोक छा गया। कुछ दिन ठहरकर आचार्यश्रीजी वसन्तपिंपलगाव में संयम प्रीतिजी को दीक्षा देकर श्रीरामपुर पधारे, वहाँ दो दीक्षाएँ हुई तद्नंतर अहमदनगर पधारे। वहाँ श्री सज्जनऋषिजी, श्री दीपकऋषिजी को दीक्षा देकर ८४ का वर्षावास अहमदनगर में किया। आयम्बिल खाता शुरू कर दिया और पश्चात् सात दीक्षाएँ दी।



सन ८५ का वर्षावास अहमदनगर ही हुआ। महाराष्ट्र में सम्मेलन हो ऐसी गुरुदेव की इच्छा थी अतः ८६ का वर्षावास पूना आदिनाथ सोसायटी में करने का निर्णय हुआ, पूना पधारे। डॉ. शिवमुनिजी का भी पदार्पण हुआ। चातुर्मास में सम्मेलन की रूपरेखा तैयार हुई। जगह जगह पर डेप्युटेशन भेजकर सन्तों को आमंत्रित किया गया। मई मास में सम्मेलन था। काफी बडी संख्या में पदाधिकारी, सन्त पधारे, काफी संख्या में साध्वियाँ उपस्थित थीं सम्मेलन सफलतापूर्णक संपन्न हुआ।

उपाचार्य एवं युवाचार्य का चयन हुआ। सम्मेलन के पश्चात् अहमदनगर में उपाध्यायश्रीजी, उपाचार्यश्रीजी आदि का संयुक्त वर्षावास हुआ। मार्गशीर्ष शुक्र ९ को आचार्यश्रीजी का दीक्षा अमृतमहोत्सव हुआ। उसमें श्री विशालऋषिजी, सुरेन्द्रमुनिजी, श्री विनीतदर्शनाज़ी आदि ९ दिक्षाएँ भी हुई। काफी बड़ी संख्या में सन्त सतियों का आगमन हुआ।

८८ का वर्षावास अहमदनगर किया गया। अक्षयतृतीया पर प्रशमश्रीजी की दीक्षा की। वैशाख सुदी ६ को पुष्पाजी की सेवा में दीक्षा हुई। ८९ का वर्षावास अम्बिकानगर में हुआ, वर्षावास में श्री. श्री प्रमोदसुधाजी, श्री पुष्पाजी म. साथ थे। स्वास्थ्य अस्वस्थ होने से दो माह के बाद परीक्षाबोर्ड में पदार्पण हुआ।

९० में श्री प्रमोदसुधाजी महासतीजी के नेश्राय में साधना की दीक्षा हुई और

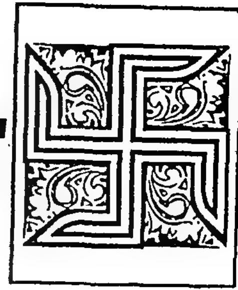


अहमदनगर में वर्षावास हुआ। सन ९१ को प्रवर्तक श्री रूपचंदजी मं., गुजराथ केसरी श्री गिरीशमुनिजी म., श्री भावचंद्रजी, श्री प्रकाशमुनिजी म. आदि भी दर्शनार्थ पधारे। सौहार्दपूर्ण व्यवहार रहा। वर्षावास अहमदनगर ही हुआ। अक्षयतृतीया पर एक दीक्षा हुई।

सन १९९२ में तपस्वी श्री मिश्रीलालजी म. की नेश्राय में चतुर्विध संघ यात्रा पहुंची। काफी बड़ी संख्या में सतीमण्डल का आगमन हुआ था। पू. गुरुदेव का स्वास्थ्य देखते हुए सभी सन्त सतियाँ सेवा में थीं २८ मार्च का वह मनहूस दिन आया, अकस्मात् काल ने अक्रमण किया। देढ़ घंटे के संथारा के पश्चात् समाधिपूर्ण महायात्रा प्रारंभ...।



- *संतों के द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर ही मानव अपने शुद्ध आत्म-रूप का साक्षात्कार कर सकता है।*
- *संतों की सबसे बड़ी विशेषता तो यह होती है कि वे आत्म-कल्याण और विश्वकल्याण में कोई अन्तर नहीं समझते।*
- *श्रेष्ठता वहाँ है, जहाँ सद्‌गुण हैं। जाति का कोई महत्त्व नहीं है।*
- *अच्छे संस्कार बाल्यावस्था से ही अगर बालक के मन में रम जायँ तो जीवन-पर्यन्त बने रहते हैं।*
- *जीवन के पहले भाग ब्रह्मचर्याश्रम में ज्ञान को इकट्ठा करना होता है आर उसमें अनुभवों को जोड़ते हुए उसकी निरन्तर अभिवृद्धि करनी पड़ती है।*
- *ज्ञान तभी प्राप्त होता है जबकि ज्ञानार्थी अपने समस्त सुखों को उस पर न्यौछावर कर दे।*
- *ऐसा ज्ञान जो कि असत्य की नींव पर खड़ा होता है, जीवन को उन्नत नहीं बना सकता। इसलिए ज्ञानार्थी को निर्दोष भाव से ज्ञानाराधन करना चाहिए।*
- *वानप्रस्थाश्रम में मनुष्य विचार करता है कि यह मनुष्यत्व इस भयंकर भवरूपी सागर में डूबी हुई आत्मा के उद्धारार्थ मिला है।*
- *वानप्रस्थाश्रम में मानव अपने हृदय का मंथन करता हुआ आत्मोन्नति के मार्ग की ओर प्रयाण करता है।*
- *धर्म-कार्य के लिए समय की प्रतीक्षा करना बड़ी नासमझी है।*



णमो आयरियाणं

■ उप प्र. मुनि प्रेमसुखजी म.

आचार्य भगवन को मेरा शत-शत प्रणाम।

उन्नतीस मार्च प्रातः सात बजे व्यक्ति विशेष से समाचार मिला कि श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर आचार्य भगवन् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म. देवलोक हो गये। सुनकर कुछ ऐसा लगा कि मानो मेरा कुछ खो गया। दिल को बड़ा दुःख हुआ, नेत्र सजल हो आई, क्योंकि मेरे लिए आचार्य श्री जी साक्षात् भगवान स्वरूप थे।

एक बार इन्द्रभूति गौतम गणधर ने ज्ञात पुत्र भगवान महावीर से पूछा - भन्ते! जब संसार में तीर्थंकर भगवान, केवली एवं सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नहीं रहेंगे तो भव्य प्राणी किसके दर्शन करके अपना कल्याण करेंगे?

प्रत्युत्तर में प्रभु महावीर ने कहा - हे आयुष्मन्! जब संसार में तीर्थंकर नहीं रहेंगे तो भव्य प्राणी बालब्रह्मचारी आचार्यों के पावन-पुनीत चरण-कमलों की रज लेकर एवं उनकी वाणी सुनकर अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे। मैंने व्यक्तिगत रूप से जयपुर लाल भवन में एक चातुर्मास उनके पावन सान्निध्य में किया है। जिसकी स्मृतियां मुझे समय-समय पर याद आती रहती हैं। आज इन वियोग के दुःखदायी क्षणों में मैंने यही सोचा -

✓ अय् मेरे आचार्य प्रवर, यदि भूल से आज तेरा दीदार हो जाता, मैं तव चरणों से लिपट जाता और गले का हार हो जाता। मत पूछो, मेरी अभिलाषा मगर इतना समझता हूँ कि - तेरी एक ठोकर से ही मेरी आत्मा का कल्याण हो जाता।। किन्तु ऐसा हो नहीं पाया और यही कहकर इस दुःखी मन को समझाया कि अय मुनि प्रेमसुख! तू सदाकाल वह धुन गाए जा, उसीसे तेरा कल्याण हो जाएगा। धुन कौन-सी?

जय आनन्द आनन्द गाए जा।
चरणों में शीश नमाए जा।।

■ ■

- *सेवा, भक्ति, ईश-स्मरण और परोपकार के लिए भी अपना समय और द्रव्य निकालो। समाज, देश और राष्ट्र के लिए भी कुछ करो।*
- *जीवन के अन्तिम भाग में मानव चेत जाय तो जीवन सफल बनाया जा सकता है।*
- *सद्गुणों का संचय केवल पुस्तकें पढ़ने से नहीं होता। वह होता है सत्संग से।*
- *संतों के पास आने की भावना भी पुण्योदय से होती है।*



आनन्द के सागर-आनन्दाचार्य

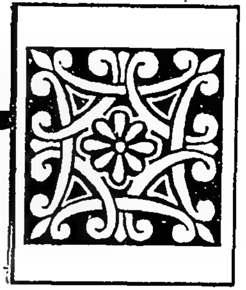
■ श्रमणसंघीय सलाहकार, बहुश्रुत श्री ज्ञानमुनिजी म.

लाखों नहीं, अपितु आज करोड़ों आँखे रो रही हैं। कारण अनजाना नहीं है, महामहिम आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज की कल्मषहारिणी पावन छाया से आज हम सब वंचित हो गये हैं। हमारे हृदयसम्राट आचार्य प्रवर इस पार्थिव शरीर को छोड़कर स्वर्गधाम में विराजे हैं। आचार्य भगवान् के वियोग की बात सुन कर कौन ऐसा मानस होगा जो इस दुखदायी घटना से तड़पा न होगा। जिस महापुरुष की चरण छाया में बैठ कर मानव ने मानवता का मंगलमय पाठ पढ़ा हो, जहाँ जीवन का सन्ताप भयभीत होकर भाग जाता हो, आधिएँ व्याधिएँ शान्त हो जाती हो और व्यक्ति का अन्तर्जगत सुख शान्ति की पावन-सरिता में गोते लगाने लगता हो तो ऐसे लोकोपकारी पर उपकारी महामहिम गुरुदेव की छाया छूट जाने पर व्यक्ति का वज्र-प्रहार-तुल्य वेदना का अनुभव करना स्वाभाविक ही है। अस्वाभाविक नहीं है।

अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण आजकल हम मण्डीगोविन्दगढ़ (पंजाब) में स्थिरवास कर रहे हैं। प्रातः ६ बजे अचानक किसी ने आकर कहा, टी. वी. पर खबर आई है कि वंदनीय आचार्य-सम्राट् अपनी जीवनलीला समेट कर इस मर्त्यलोक से चले गये हैं, स्वर्गलोक में जा विराजे हैं। सुनते ही देर थी कि मानस अन्तर्पीडा से सिहर उठा। ऐसा लगा, जैसे आत्मा शरीर से जुदा हो गई। दिल भर आया। रविवार का साप्ताहिक सत्संग होना था, परंतु उसी सत्संग ने शोक सभा का रूप धारण कर लिया। जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के पाट पर विराजमान आचार्यदेव पूज्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज के पावन चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित किए गए। मन की वेदना को भाषा के वस्त्र पहना कर श्रद्धालु जनता के सन्मुख अभिव्यक्त किया गया। उस समय सबके दिल भरे हुए थे। आचार्य भगवान् के जयकारों से भवन को गुँजा रहे थे।

आचार्य भगवान के चरणों के स्पर्श का वैसे तो जीवन में अनेकों बार अवसर मिला था। बीकानेर सम्मेलन में हम सब उपस्थित थे, परंतु आचार्य भगवान् जब पंजाब पधारे थे तब इनकी सेवा में लगातार एक वर्ष तक रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। आचार्य प्रवर ने जम्मूतवी (काश्मीर) में जब चातुर्मास किया था, तब मुझे भी इनकी सेवा का अवसर मिला था। फलतः मैंने लगातार ३६५ दिनों तक आचार्य भगवान् के निकट से दर्शन किये हैं।

"ऋषिवर आनंद" नाम से आचार्य भगवान के जीवनवृत्त लिखने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त रहा है। यह ग्रन्थ बड़े साईज



में लगभग ३०० सौ पृष्ठों का है। आचार्य भगवान की गुण-सम्पदा तथा आचारसम्पदा का उसमें विस्तार से उल्लेख किया गया है।

गुणपूजा के सम्पोषक-

हमारे आराध्य आचार्य देव पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज सदा सर्वदा गुण सम्पोषक एवं समर्थक रहे हैं। उनके दरबार में गुणी व्यक्ति को सदा सम्मान मिला है। जातिकुल, वर्ण, प्रान्त, भाषा या किसी बाह्य भेष का इनके यहां कोई महत्त्व नहीं था। भगवान महावीर की इस वाणी को आचार्य भगवान प्रायः फरमाया करते थे -

न वि मुण्डिएण समणो,
न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं,
कुसचीरेण न तावसो।।

-उत्तरा. अ. ३५ गा. ३१

भाव स्पष्ट है सिर मुण्डा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता। ओम् का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता और ना कुशा के बने वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी हो सकता है।

समपाए समणो होइ,
बंभचेरेण बंमणो,
नाणेण मुणी होइ, तवेण होइ तावसो।।

-उत्तरा. अ. २५ गा. ३२

भाव यह है कि समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप की आराधना से व्यक्ति तपस्वी होता है।

कम्मणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
बईस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।।

-उत्तरा. अ. २५ गा. ३३

अर्थात मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है। भाव यह है कि वर्णभेद जन्म से ही नहीं होता। जो जैसा उच्च या नीच कर्म करता है उसके, अनुसार ही वह उच्च या नीच माना जाता है।

गुणों के पुजारी वन्दनीय आचार्य-भगवान के-

चरणों में हमारे शत शत प्रणाम।



- *संत-दर्शन तो महादुर्लभ है ही। संसार में सभी कुछ मिलना सुलभ है किन्तु संत-समागम होना अति दुर्लभ है।*
- *शुभ कार्य जिस समय से प्रारम्भ किया जाय वही उत्तम समय होता है। उचित समय की प्रतीक्षा प्रमादी व्यक्ति करते हैं, किन्तु प्रतीक्षा में ही पुरुषार्थ करने का अवसर बीत जाता है और अन्त में पश्चाताप ही हाथ आता है।*



मन की मन में रह गई

■ श्री उपेन्द्र मुनिजी 'शास्त्री'

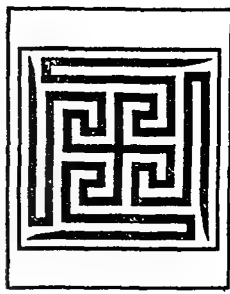
जिस समय सन १९९० का चातुर्मास परिपूर्ण हुआ और २६ नवम्बर को देहरादून से विहार करने का प्रसंग आया तो गुरुदेव श्री प्रेमसुखजी म. ने कहा - देवानुप्रियो! विहार किस दिशा में करोगे? ऐसा पूछा जाने पर सभी ने अपनी-अपनी समझ के अनुसार तथा जिसको जिस दिशा में जाने की अभिरुचि थी बताया - किन्तु उस समय व्यक्तिगत रूप से किसी भी सन्त का विचार मेरे मन को आकर्षित नहीं कर पाया, परिणाम स्वरूप किसी की सहमति में मेरी गर्दन भी नहीं हिली।

मैंने भी गुरुदेव जी म. के समक्ष अपने आन्तरिक उद्‌गार रखने का मन बनाया। मैंने कहा - गुरुदेव! मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि हम यहाँ से विहार के बाद विचरते-विचरते वर्तमान युग के भगवान श्रमण संस्कृति के स्वामी, जन-जन की अगाध आस्था के केन्द्र आचार्य भगवन् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म. के पावन चरण-सरोजों में पहुँचे और एक चातुर्मास वहीं करके दर्शन लाभ एवं श्रुत लाभ की उपलब्धि करें।

उपरोक्त विचार को सुनते ही गुरुदेव गद्‌गद् हो गए, फूले नहीं समाए और कहने लगे - उपेन्द्रमुनि! तेरा विचार सर्वोत्तम है, जो भगवान के दर्शन लाभ लेने की बात तूने कहीं। मैं स्वयं भी आचार्य श्री के सान्निध्य को पाना चाहता हूँ, किन्तु शारीरिक दृष्टि से इतनी दूर जाने में असमर्थ हूँ। हां, तुम लोग आचार्य भगवन् के दर्शनों का भरपूर लाभ उठाओ।

अपशकुन

आचार्य श्री के दर्शनों का लक्ष्य लेकर चले ही थे कि क्लेमिटाऊन से पहले रतलाम का निवासी एक जैन बन्धु मिल गया, जिसने श्री मोहनमुनि के जला दिये जाने की सूचना दी। मन को दुःख हुआ। फिर आगे दिन-प्रतिदिन विहार किया और मेरठ के पास पहुँचे - दोराला कस्बे में। तो उन दिनों रामजन्म भूमि का चक्र जोरों पर था। अतः एकदम हिंसा भड़की और चारों ओर कर्फ्यु लग गया। कर्फ्यु के मध्य में ही मेरठ जैन समाज के प्रधान श्री दर्शनलाल 'एडवोकेट' दर्शनार्थ आए और विशेष योजना के तहत हम सभी सन्त जैननगर पहुँच गये। काफी समय मेरठ में लग गया। फिर भी इतस्ततः छुट-मुट उपद्रव होते ही रहे। तदनन्तर दिल्ली निवासियों का जोर पड़ा, एवं चातुर्मास भी दिल्ली लक्ष्मीनगर तय हो गया। तत्कालीन आचार्य का भी पत्र आया। किन्तु अन्तराय प्रबल थी, जिसके कारण हम आपश्री के दर्शनों का लाभ न ले सके। किसी ने ठीक ही कहा है कि -



कर्मो के आगे इस दुनिया में चलता न कोई उपाय

कागज हो तो हर कोई बाटे,
कर्म न बाटे जाय
चाहे लाख करो तदवीर,
ऋषिजन तुम्हें दिखाते हैं।
काहे को धीरज खोए रे मूर्ख,
इत उत क्यों भटकाए
मन का सोचा कभी न होता,
कर्म ही नाच नचाए।
फिर क्यों तू बहाये नीर,
ऋषि जन तुम्हें दिखाते हैं।
देखो कर्मों की यह तस्वीर
ऋषि जन तुम्हें दिखाते हैं।
चाहे कह लो इसे तकदीर,
ऋषि जन तुम्हें दिखाते हैं।

भौतिक साधन तो बाटे जा सकते हैं। किन्तु कर्मों को नहीं बाटा जा सकता। यह सब हमारे ही अशुभ कर्मों का उदय था जो हम अपने आराध्य देव की चरण शरण को प्राप्त नहीं कर सके।

मेरे मन में एक उत्कट भावना थी कि पूज्य आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषि म. के दर्शन करूँ। मुझे हार्दिक दुःख है जो कि भावना होते हुए भी मैं अपने भगवान के दर्श नहीं पा सका।

अब तो यही मनोभिलाषा है कि आचार्य भगवन देवलोक से ही अपनी कृपादृष्टि बनाए रखें। जिससे हमारा श्रमण संघ एकता और दृढता की दृष्टि से बलवान बने।

मेरे आराध्य भगवान श्री आनन्दऋषिजी म. की सदाकाल जय हो।

■ ■

- *मनुष्य जैसी संगति करता है, उसमें वैसे ही गुण आते हैं।*
- *केवल श्रवण-मात्र से ही आत्मा को लाभ नहीं होता। लाभ होता है उपदेशों को आचरण में लाने से।*
- *शास्त्र-श्रवण और सदुपदेशों को जीवन में उतारकर उत्तरोत्तर आत्मा को निर्मल और उन्नत बनाते जाना है तभी हमारा मानव जीवन सार्थक बन सकेगा।*
- *आत्मा को स्वभाव दशा से विभाव दशा में ले जाने वाले तथा जन्म-मरण की कठोर श्रृंखलाओं में जकड़ने वाले चार कषाय हैं-क्रोध, मान, माया एवं लोभ।*
- *क्रोध आत्मा के प्रीति गुण का नाश करता है, मान विनय गुण का, माया मैत्री का और लोभ उसकी समस्त विशेषताओं को नष्ट कर देता है।*
- *अष्टकर्म आत्मा के शत्रु हैं और वे ही इसे चारों गतियों में चक्कर खिलाया करते हैं।*



आनन्द के क्षण

■ श्री अरुणमुनिजी म.

स्व. आचार्य आनन्दऋषिजी म. के विशाल वटवृक्ष के नीचे हजारों श्रमण व श्रमणी जिस तरह अपनी साधना को जीवन्त रूप देते रहे, आगे बढ़ते रहे वह उनके अचानक महाप्रयाण करने से खालीपन का बोध कराती है। संत की जीवन पद्धति को यशस्वी और तेजस्वी बनाये रखने में स्व. आत्मा का बहुत योगदान रहा है। वे आदर्श एवं मूल्यों के प्रतिनिधि बनकर जिस तरह सालों तक श्रमण-शासन चलाते रहे. उससे उनकी पद्धति सराहनीय बन गयी।

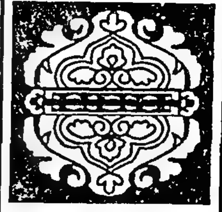
श्रमण संघ में सभी धाराओं का एक साथ विलीनीकरण हुआ। आचार्यश्री आत्मारामजी महाराज प्रथम संस्थापक नायक बने। संघ को एक सूत्र में पिरोया उसे समन्वय, एकता और सर्वमान्य आचार शैली पर खडा किया। किन्तु उससे भी अधिक कठिन दायित्व द्वितीय पट्टधर पू. श्री. आनन्दऋषिजी महाराज को पिछले २८ सालों में निर्वहन करना पड़ा।

श्रमण संघ की स्थापना में जिन छः आचार्य, सम्प्रदाय, एवं महापुरुषों का योगदान था, उनमें पूज्यश्री का एकता का समर्पण अपूर्व रहा। वे हर संभव एकता के लिए प्रयत्नशील रहे।

महाराष्ट्र के चिचोंडी ग्राम में जन्मे एक साधारण बालक के रूप में आपकी प्रतिभा, त्याग, बलिदान, सेवा-समर्पण, ज्ञान एवं भक्ति से ओतप्रोत होती गई। माँ का योगदान आपके निर्मल एवं तेजस्वी व्यक्तित्व को संत-धारा से परिचित कराने में सहयोगी एवं सहभागी बालपन से ही हुआ। अति लघुवय में प्रतिक्रमण सीखकर अपनी ज्ञान-साधना एवं विलक्षणता का परिचय दिया। आपकी दीक्षा की वय तेरह वर्ष रही। पूज्य रत्नऋषिजी महाराज ने आपको दीप्तिमान बनाया। प्रखर तेज से ऋषि सम्प्रदाय ने आपको आचार्य पद का अधिकारी माना, लेकिन श्रमण संघ के लिए उसे छोडने में भी देर नहीं की। आचार्य से श्रमण संघ के प्रधानमंत्री बने।

ज्ञान का बढ़ता आलोक जहाँ अन्तर ज्योति के रूप में प्रतिबिम्बित हो रहा था, आपको उपाध्याय पद पर आरूढ कर श्रमण संघ ने भावी आचार्य की सभी अनिवार्यताएँ - सम्भावनाएँ व्यक्त कर दीं।

संवत २०३० में अजमेर साधु सम्मेलन उक्त समूचे घटना क्रम का साक्षी है। जिसमें एक आचार्य के बाद प्रधानमंत्री और फिर दूसरे आचार्य का चादर महोत्सव हुआ। आचार्य पद धारण कर आपने अपने क्षेत्र-विहार को समूचे भारत में विस्तृत किया। पंजाब की महायात्रा एक इतिहास बनी, जिसमें श्रद्धालुजनों की उमड़ती भीड़ आपको महान संत की अलौकिक प्रतिभा



का अधिकारी मानकर एक के बाद एक चातुर्मास के लिए प्रेरित करती गयीं।

आचार्य के रूप में आपकी प्रशासनिक दक्षता एवं श्रेष्ठता का मूल्यांकन चाहे जिस रूप में भी किया जाये, वह किसी भी तरह कम नहीं है। इतने सारे सम्प्रदायों को एक धारा में लेकर चलना, जिसमें कितने ही प्रश्न खडे हुए होंगे कोई सामान्य काम नहीं था। इसके बावजूद जिस तरह शासन चला, वह उनकी श्रेष्ठ क्षमता की पहिचान दे गया।

दीर्घायु होने की सभी इच्छाएँ शताब्दी वर्ष का आयोजन कर रही थी और जिस तरह सदी की शुरुआत उनके जन्म जीवन से हुई थी, अवसान उसकी अंतिमता के पूर्व होना असहज लगा। ज्ञात से अज्ञात, संत से आचार्य, शासन से देव अवस्था कुछ ऐसे ही क्रम उनके जीवन के बनते गये।

महान पुष्प की सुरभि उनके जाने का अहसास करा रही है। वाटिका सूनी है माली हतप्रभ है। जिन-शासन का राज दंड उस हाथ की तलाश में आगे बढ़कर देव-इन्द्र की गरिमा का आह्वान कर रहा है। वे आएँ, आचार्य की गौरव गरिमा की धारा को दिशा दें। उसे विराट् से विश्वसनीय बनाएँ, अपने प्रभा मंडल को सत्य, शिव, सुन्दर बनायें। इसी भावना के साथ आचार्य श्री जी की क्षमता को नमन।



एक अजात शत्रु आचार्य

■ मुनि श्री सुखलालजी म.

सन् १९६५ का वह दिन कितना महत्त्वपूर्ण था, जब दिल्ली, दरियागंज वीर भवन में जैन धर्म के दिग्गज आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म., आचार्य श्री देशभूषणजी तथा आचार्य श्री तुलसीजी जैन एकता के संदर्भ में विचार विमर्श के लिए एकत्र हुए थे। सचमुच यह प्रेरणा ही अभिनन्दनीय है। अन्यथा बहुत सारे लोग तो ऐसे हैं, जिनके नाम से ही छींक आने लगती है। यह खुशी की बात थी कि उस दिन एकता के लिए एक सहमति बनी। पर कठिनाई यह रही कि उस सहमति को कार्यरूप नहीं मिल सका। आचार्य श्री देशभूषणजी तो काफी पहले दिवंगत हो गये। अभी-अभी आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म. का भी स्वर्गवास हो गया। आचार्य श्री तुलसी बहुत कुछ करना चाहते हैं, पर प्रश्न है सहयोग के इस हाथ को थामने वाला कौन हैं?

आचार्यश्री आनन्दऋषि जी म. स्थानकवासी सम्प्रदाय के अजातशत्रु आचार्य थे। उन्होंने इस सम्प्रदाय को जोड़े रखने में महत्त्वपूर्ण कार्य-भूमिका निभाई। उनकी अनाग्रह-दृष्टि ही इस एकता की मुख्य



कारण थी।

मुझे उन्हें नजदीक से देखने का सबसे पहले अवसर तब मिला, जब मैं आचार्य श्री तुलसी के चरणों में दिल्ली चातुर्मास बिता रहा था। आचार्य श्री तुलसी दीक्षा समारोह के लिए नगरपालिका के मैदान में पधारे। पास में ही चांदनी चौक के प्रसिद्ध स्थानक में आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म. चातुर्मासिक प्रवास कर रहे थे। अत्यन्त आदर के साथ उन्हें दीक्षा समारोह में प्रवचन के लिए आमंत्रित किया गया। उन्होंने भी अत्यन्त सौहार्द के साथ उसे स्वीकार कर लिया। उस दिन का दृश्य कितना भव्य था? मैंने सहज सादगी में एक निश्च्छल व्यक्तिमत्व को देखा। न कोई ठाट-बाट, न कोई दिखावा। सीधे-सादे लिबास में सजगता का प्रतिबिम्ब।

सद्भावना के इसी क्रम में एक दिन आचार्यश्री तुलसी उनके स्थान में ठेठ ऊपर तक पधार गये। लौटते समय आचार्यश्री आनन्दऋषि जी उनके साथ सीढ़ियाँ उतर रहे थे। सहजता के उन क्षणों में उन्हें यह भी अहसास नहीं हुआ कि कौन मेरे साथ है और कौन नहीं? सचमुच, उनका व्यक्तित्व उनके आधारस्थल से बहुत ऊँचा था।

फिर तो मुझे आचार्य श्री तुलसी के आदेश से महाराष्ट्र तथा आंध्र प्रदेश में जालना एवं सिकन्दराबाद में आचार्यश्री आनन्दऋषिजी के साथ एक ही गांव में चातुर्मासिक प्रवास का मौका मिला। उससे पहले सेठ सुमेरमलजी सुराणा के सौजन्य से औरंगाबाद में उनसे मिलने का मौका मिला। बड़ी सौहार्दपूर्ण बातचीत हुई। जब हम वहाँ से लौटने लगे तो उन्होंने कहा कि, 'मुनिजी, फिर दर्शन कब होंगे? मैं इस शब्दावली से आश्चर्यचकित रह गया। मैंने कहा, मैं आपकी बात समझ गया। मैं नहीं जानता और कोई भाषा समिति की इस सूक्ष्मता को समझ रहा है या नहीं, पर मैं इसके अर्थगौरव को अवश्य समझता हूँ। रास्ते भर में मैं सोचता रहा, क्या मैं ऐसा कहने का साहस जुटा सकता हूँ?

फिर जालना में तो अनेक बार उनके सम्पर्क में आने का मौका मिला। विशेष अवसरों पर तो उनकी ओर से मैं याद ही किया जाता था। मैं इतना निरहंकार तो नहीं था, पर उनकी सहजता ने अपने दरवाजे इस तरह खोल दिये कि मैं बिना किसी सूचना के भी बेहिचक गणेशभवन पहुँच जाता। कभी कभी तो मैंने देखा वे ऊँचे पाट पर से नीचे उतर जाते। वे एक बड़े सम्प्रदाय के आचार्य सम्राट् थे, मैं तो एक सामान्य साधु था, पर उनका आचार्यत्व इतना संवेदनशील था कि दूसरों को अभिभूत कर देता।

जैन एकता, तेरा पंथ-संगठन, मर्यादा आदि अनेक विषयों पर उनसे खुलकर बातें हुई। उन्होंने न केवल सहिष्णुता से मुझे सुना अपितु अपनी बेबाक् बातें भी कहीं।

जालना में प्रेक्षाध्यान का एक शिबिर लगा था। मुझे तब आश्चर्य हुआ जब



उन्होंने श्री कुन्दनऋषि जी तथा साध्वीश्री प्रमोद सुधा जी आदि साधु-साध्वियों को शिविर में भाग लेने के लिए भेजा। उनका हमारा प्रवास स्थल काफी दूर था। गर्मी का मौसम था। बाहर आने-जाने वाले लोगों का तांता बराबर लगा हुआ था। मुझे संभव नहीं लग रहा था कि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो सकेगा, मेरी धारणा से ऊपर उठकर संत साध्वी मंडल न केवल शिविर में उपस्थित ही हुऑं अपितु अत्यन्त तन्मयता से प्रयोगों में भी शामिल हुए। आचार्य श्री ने मुझसे तथा नगीनभाई से बहुत सारी जानकारी प्राप्त की।

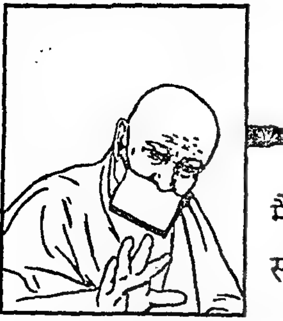
मैंने अनुभव किया,उनके आसपास के वातावरण में भी एक सहजता संवेदन-शीलता थी। जब कभी आमने-सामने होने का मौका मिलता तो बिलकुल सहजता का अनुभव होता। सांवत्सरिक क्षमा-याचना के अवसर पर तो पूरा संघ हमारे स्थान पर आया। हम भी गणेश भवन गये। कुंदनऋषिजी, प्रवीणऋषिजी, साध्वीश्री प्रमोदसुधाजी आदि सभी साधु-साध्वियों में भी प्रमोद भावना के दर्शन हुए। साध्वीश्री प्रमोदसुधाजी तो रक्षा बंधन के दिन सुबह ही सुबह हमारे प्रवास स्थान पर पहुँच गई। बोली - आज रक्षा बंधन का दिवस है, एक बहन भाई के हाथों पर राखी बाँधने के लिए आई है। कोई धागा नहीं था, राखी नहीं थी। पर वे शब्द ऐसे थे जो आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं।

प्रारंभ में जब स्थानक में जाने का प्रसंग बना तो कुछ औपचारिकता निभाने के प्रयत्न हुए, पर हमने जल्दी ही इस सत्य को समझ लिया कि, साम्प्रदायिक सीमाओं का पालन करके ही हम सम्पर्क को ज्यादा सार्थक बना सकते हैं। मुझे खुशी है हमने आपस में एक अच्छी समझ पैदा कर ली।

मैंने तो अपनी गीतों की एक पुस्तक पर आचार्य श्री से दो शब्द लिखकर हमारे मधुरिम-सम्पर्क को स्थायी स्मृति देने का आग्रह किया। मैंने यह भी कहा - इस पुस्तक में कुछ गीत तेरापंथ के विषय में भी हैं। मैं नहीं जानता आपको इस पर लिखने में कुछ असुविधा तो नहीं होगी। उन्हों ने भाव भरे शब्दों में कहा - सुख मुनि, आप क्या कहते हैं? तेरा पंथ और स्थानकवासी तो एक मूँग की दो दाल हैं। क्या हम इतने पराये हैं कि आपस में संवाद नहीं बना सकें?

मुझे याद पड़ता है, उधर से आचार्य श्री तुलसी के पास भी एक पुस्तक समीक्षार्थ आई थी। आचार्यजी ने उदारता पूर्वक उस पर अपनी समीक्षा की थी। मुझे लगता है ऐसे प्रयत्न साम्प्रदायिक दूरियों को भेदने में काफी अच्छी भूमिका निभाते हैं।

एक बार उधर से चंपालालजी संकलेचा आचार्य श्री तुलसी के दर्शनार्थ आए थे। आचार्य श्री ने अपनी सांकेतिक भाषा में उनसे कहा आप लोग आनन्द और अच्छा लाभ उठा रहे हैं, यह खुशी की बात है। यह स्पष्ट रूप से हमारे



मैत्रीपूर्ण संवाद का सम्बन्ध था।

हैदराबाद में भी आचार्य श्री आनन्दऋषिजी की सन्निधि के अनेकानेक अवसर आये। उनसे मिलकर मैं हरबार तृप्ति का अनुभव करता। न केवल जैन अपितु अनेक अजैन साधु-संत उनसे मिलने आते थे। मैं देखता था, एक मौलवी साहब कई बार उन्हें उर्दू का कोई ग्रंथ पढ़ाने आते थे। वृद्ध अवस्था में भी उनमें नया ज्ञान हासिल करने की ललक थी।

यद्यपि, शेष कुछ वर्षों में उनकी सक्रियता काफी सीमित हो गई, पर उनकी उपस्थिति ही जैन समाज को प्रतीत होती थी। उनके चले जाने से एक स्थान खाली हो गया है। आशा है कि इतिहास इसे पुनः भर सकेगा। आचार्य श्री तुलसी उनके बारे में अनेक बार कहा करते थे कि वे एक उत्तुंग तथा उदारमना आचार्य थे। दुनिया में सम्प्रदायों से नहीं बचा जा सकता। आवश्यकता यही है कि साम्प्रदायिकता प्रमुख न बने।



स्वर खो गया, स्मृतियाँ शेष हैं!

■ ऋषि प्रशान्तजी म.

संध्या का समय था। मंद-मंद हवा एक लय में बही जा रही थी। झरने कलकल की मधुर ध्वनि करते हुए, ताल और सुरों का लय साधे प्रवाहित हो रहे थे। ऐसा लगता था जैसे कई वीणाएँ एक साथ झंकृत हो उठी हों। पक्षी प्यार और ममता भरी मीठी-मीठी आवाज करते हुए पुनः अपने-अपने घरौंदे की ओर लौट रहे थे। प्रकृति ने कहीं भी अपना संतुलन खोया नहीं था। सब कुछ सूरमय था, सुखद था।

पर्वतों के तले एक उपवन में भगवान बुद्ध और उनका शिष्य समुदाय रुका हुआ था। भगवान बुद्ध और उनका प्रमुख शिष्य आनंद एक शिला पर बैठे संघ-समूह की व्यवस्था के विषय में विचार-विमर्श कर रहे थे। उसी वक्त "धम्मं शरणं गच्छामि बुद्धं शरणं-गच्छामि" के शिथिल स्वर उनके कानों पर पड़े। स्वर-लहरियाँ शिथिल थी, पर मीठी थीं। दोनों ने मुड़कर देखा तो राजकुमार सारीपुत्र उनकी ओर ही धीरे-धीरे आ रहे थे। वे कुछ मास पूर्वही दीक्षित हुए थे और दीक्षित होते ही अति कठोर एवं उग्र तपस्या करने लग गये थे। काया बिल्कुल कृश हो गई थी, चलते हुए ऐसे लग रहे थे कि अभी गिर पडेंगे। उनका ध्यान रखने के लिए एक शिष्य उनके पीछे-पीछे आ रहा था। भगवान ने देखा तो सोच में पड़ गये। क्या किया जाये? इतना उग्र तप! यह अति उचित नहीं है। संघ समूह की दृष्टि से भी यह ठीक नहीं है। जब सारीपुत्र भगवान के समीप पहुँचे तो भगवान ने उन्हें पास में



बैठने के लिए कहा और समझाया, "देखो सारीपुत्र! तुम संगीत के अच्छे जानकार हो, रागदारी का तुमने अध्ययन किया है, तुम वीणा वादन में भी बहुत कुशल हो। यह तुम अच्छी तरह से जानते हो कि वीणा के तार अगर ढीले पड़े हों तो उसके स्वर बेसूर हो जाते हैं, उसी प्रकार अगर वीणा के तार अनुपात से ज्यादा कस दिये जाएँ, ज्यादा खींचे जाएँ तो भी वह कर्णप्रिय नहीं लगती, तथा ज्यादा खींचने में तार टूटने का भय भी बना रहता है। ऐसे समय में सबकुछ बेसूरा हो जाता है। तुम्हारी उग्र तपस्या देखकर मैं स्वयं सोच रहा हूँ कि संगीत का मर्मज्ञ सीमा का उल्लंघन कैसे कर रहा है? उसके हाथों ऐसी अति क्यों हो रही है? क्योंकि संगीतमय जीवन कभी भी हटाग्रही नहीं होता। तो देखो सारीपुत्र! तुम स्वयं सुज्ञ हो, किसी भी बात की अति न करना। अति सदा बेसूरी होती है। देखो, प्रकृति भी कितनी सुखद लग रही है, क्योंकि वर्तमान में उसका हर कर्म एक लय में, एक ताल और एक सूर में हो रहा है। असंतुलित प्रकृति क्या-क्या गजब ढा देती है। इस बात से हम सब परिचित ही हैं।"

भगवान बुद्ध और सारीपुत्र का यह मार्मिक प्रसंग जब-जब स्मृति लोक में उभर आता है तो गुरुवर का संगीतमय संतुलित जीवन अनायास ही इस घटना की कड़ी से जुड़ जाता है। कई प्रश्नों के जबाब अपने आप मिल जाते हैं।

क्यों था गुरुदेव का जीवन इतना सहज, सरल, संतुलित और अनाग्रही? कैसे वे हर समस्या को हंसते-हंसते, शांति से सुलझा देते थे? इतनी धीरता, इतनी गंभीरता उन्होंने कहाँ से पाई थी? आदमी खींचता हुआ कैसे उनके पास चला आता था? हर पल उनकी मुद्रा प्रसन्न, खिली खिली क्यों नजर आती थी? इन सारे प्रश्नों का एक ही जबाब मिलता कि गुरुदेव के रोम-रोम में संगीत बसा हुआ था। सप्त स्वर उनकी आत्मा से, उनकी काया से निरन्तर प्रवाहित होते रहते थे। अचल स्वरों के स्थान पर अचल स्वर, कोमल स्वरों के स्थान पर कोमल स्वर, तीव्र स्वरों के स्थान पर तीव्र स्वर, आरोह-अवरोह में कही छोटी-सी भी गलती नहीं। रागदारी के समान उनका जीवन भी तालबद्ध, लयबद्ध और सूरबद्ध था, कहीं भी मर्यादा का, सीमा का उल्लंघन नहीं था। उनकी सूर साधना इतनी जबरदस्त थी कि वे कब परम चैतन्य तत्त्व में लीन हो जाते थे, कब वे समाधि में चले जाते थे, पता ही नहीं चलता था।

प्राचीनकाल से अध्यात्मरस में डूब जाने के लिए चित्तवृत्तियों को शांत करने के लिए संगीत सशक्त साधन रहा हुआ है। ऋषि-महर्षि जब मंत्रपाठ, स्तोत्रपाठ, करते थे तो स्वरों का समा सा बंध जाता था। जब वे वेद की ऋचायें पढ़ते थे तो एक ताल और एक लय में ही पढ़ते थे। ऐसे मधुर और शुद्ध स्वरों में स्तोत्र गाते थे कि सारा वातावरण सहज ही अध्यात्ममय, भक्तिमय हो जाता था। गुरुदेव भी यह



जानते थे कि जीवन और जगत से परे जो परम चैतन्य तत्त्व है, उसके साथ लगाव होने पर जो अनुभूतियाँ होती हैं, उसकी अभिव्यक्ति सूरों के द्वारा गीतों के माध्यम से ही दी जा सकती है। संगीत के माध्यम से ही उस परम तत्त्व की अनुभूति हो सकती है। उन्हें पता था स्वर तरंगों का प्रभाव दूरगामी और गहरा होता है। जैसे बाहर ब्रह्मांड में वैसे ही व्यक्ति के अंत ब्रह्मांड की सूक्ष्म नाड़ियों को शुद्ध कर स्वर लहरियाँ उसमें गति कर सकती हैं। स्वर लहरियों की गति सर्वत्र होती हैं। मूलाधार से लेकर सहस्त्रार चक्र तक सूर लहरियों की सहज गति होती है। स्वरों की साधना से कुंडलिनी जागृत हो सकती है। आज्ञा चक्र को खोला जा सकता है। आज विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि संगीत का प्रभाव व्यक्ति पर कितना गहरा होता है।

कई बीमारियों का इलाज संगीत के माध्यम से हो रहा है। मानसिक विकृतियाँ विविध प्रकार की संगीत योजना करके मिटाई जा रही हैं। व्यक्ति को कितना ही टेन्शन क्यूँ न हो, एक सुरीला मधुर गीत सुन ले तो वह शांति का अनुभव करने लगता है। गुरुदेव ने भी अपनी संगीत साधना से कई भक्तों को अनिर्वचनीय शांति का अनुभव कराया है, अध्यात्म अमृत पिलाया है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारतीय संस्कृति संगीत प्रधान संस्कृति रही है। इस देश में संगीत का स्थान अनन्य है। हजारों वर्षों से इस देश में तीन धाराएँ प्रवाहित होती आ रही हैं, एक ज्ञानयोग की, दूसरी कर्मयोग की, तीसरी भक्तियोग की। प्रमुखता यहाँ पर भक्तियोग की ही रही है, और भक्तियोग को साध्य करने का सहज-सरल साधन है संगीत। गुरुदेव के जीवन में भी भक्तियोग की अपूर्व साधना रही। भजन-कीर्तनों के माध्यम से शुद्ध चैतन्य तत्त्व के साथ सहज तार जुड़ जाती हैं और इसमें एक अनिर्वचनीय सुख एवं अनोखी शांति मानव मन को मिलती है। भक्ति मार्ग से ही शुभ-संस्कारों का, दया का, करुणा का और अहिंसा का बीज सरलता से बोया जाता है। भक्तिमार्ग की आत्मा ही संगीत है। सूरदास, तुलसीदास, मीरा, संत तुकाराम, मोरोपंत, सभी ने भक्तिमार्ग को अपनाया और जन-जन के मन में अध्यात्म भावना का संचार कर दिया। हम देख सकते हैं इन सभी के जीवन में संगीत का अनन्य स्थान रहा है। ठीक इसी तरह गुरुदेव के जीवन में भी संगीत का अद्वितीय स्थान था। कह सकते हैं, वे संगीत में आकंठ डूबे हुए थे। धर्म प्रचार प्रसार में उनके द्वारा गाये गये अध्यात्म से ओत प्रोत भजनों का बहुत बड़ा योगदान रहा हुआ है।

बचपन में चिचोंडी ग्राम में गांव के लोग उन्हें भजन कीर्तनों के वक्त आग्रह करके गाने के लिए बुलाते थे। आवाज में बहुत ही वजन था, साथ में शहद जैसी मधुरता और अत्यधिक सुरीलापन था। लोग सुनते तो अपनी सुध-बुध खो बैठते

थे। ऐसा लगता, उनके गीत सुनते ही रहें-सुनते ही रहें। पर उम्र छोटी थी, गाते गाते थकान आ जाती थी, तो लोग झूठी झूठी धमकी देकर डराते थे कि और गाओ नहीं तो हम तुम्हें कमरे में बंद कर देंगे और उन्हें एक दो भजन और सुनाने ही पड़ते थे। बाद में तेरह वर्ष की उम्र में वे दीक्षित हुए और अपनी आवाज से जनता का मन मोह लिया। भजन गीतों के माध्यम से जन-जन के मन में अध्यात्म का दीप जला दिया। जब वे गाते तो सारा माहौल ही संगीतमय हो जाता था।

गुरुदेव जब गाते थे, भजन सिखाते थे, या सिखाये हुए भजनों की पुनरावृत्ति लेते थे, किसी का भी गीत सुनते थे तो सूरों की सरिता में पूर्णतया डूब जाते थे, तल्लीन हो जाते थे, एक रस, एक रूप हो जाते थे। उनकी प्रकृति ही संगीतमय थी। निरन्तर उनके भीतर सूरों का सागर उमड़ता-उफनता रहता था।

एक रात की बात है। रात के करीब नौ बजे होंगे गुरुदेव सिखाये हुए भजनों की पुनरावृत्ति ले रहे थे। मैं, अक्षयऋषिजी और महेन्द्रऋषिजी भजन सुना रहे थे। भजन काफी पुराना था, गाते गाते मुझे हँसी आ गई। गीत बिगड़ गया, सूर बेसूर हो गया। सूरों के देवता को यह कब सहन होने वाला था? उन्होंने मेरी ओर इस तरह देखा और कहा आज पुनरावृत्ति बन्द, गाना बन्द करने के लिए कहकर इस तरह डांटा कि मैं पैर से लेकर सर तक काँप उठा। फिर कभी मैं भजनों की आवृत्ति के समय हँसा नहीं। वैसे उन्हें हलका फुलका मजाक चल जाता था। वे विनोद प्रिय थे, पर गाते वक्त



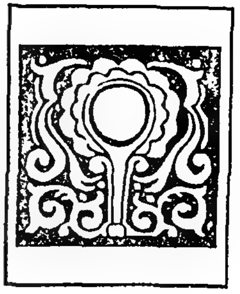
भजन सिखाते, वक्त पुनरावृत्ति के समय हँसी-मजाक उन्हें पसन्द नहीं थी। वे इसे संगीत का अपमान समझते थे। वे स्वयं ताल-सूरबद्ध और लय बद्ध गाते थे। अलग अलग ढंग से सुन्दर सुरीले आलाप लेते थे। एक भी स्वर इधर उधर हो जाय तो उन्हें नही चलता था। उन्होंने कई साधु-साध्वियों को भजन सिखाये। संस्कृत के श्लोक सूरबद्ध कैसे गाये जा सकते हैं। उनमें कैसे मिठास भरी जा सकती है? यह वे बड़ी सहजता के साथ सिखा देते थे। कई पुराने संस्कृत के गीत उन्होंने साधु-साध्वियों को सिखायें हैं।

कई आगमों की गाथाओं को, जिन्हें जल्दी कोई तर्ज बैठ नहीं पाती थी उन्हें नई नई मीठी चाल बिठाकर शिष्यसमुदाय को सिखाते थे और सामूहिक रूप से उन गाथाओं को गंवाते थे। किसी एक की भी गलती हो जाती तो पुनः सूरबद्ध सुव्यवस्थित गंवा लेते थे। भले ही एक गीत सिखने में सूरबद्ध श्लोक या आगम की गाथा सिखने में कितने ही दिन क्यों न लग जाय, जैसी उसकी राग है, वैसी ही राग जब तक बैठ न जाये वह सुव्यवस्थित गाया न जाये, तक तक वे आगे नहीं बढ़ते थे। उनकी तमन्ना रहती थी कि कहीं भी बेसुरापन आने न पाये। कभी कोई गीत गाने के लिए आलस करता तो वे "गाता गळा, वाहता मळा" यह मराठी की उक्ति सुनाकर गाने के लिए प्रोत्साहन



करते, प्रेरणा दिया करते थे। किसी का भी गीत या भजन सुनते वक्त वे बिलकुल एकाग्रचित्त तल्लीन हो जाते थे, कोई भी समय हो, अगर कोई गाने की इच्छा प्रकट करता तो गुरुदेव उसे कभी भी मना नहीं करते थे। जैसे वे सूरों की दुनिया में खो जाने के लिए तत्पर ही बैठे हों। कभी भी भजनों का गीतों का कार्यक्रम हो वे उसमें सहजता से शामिल हो जाते थे।

सन ८२-८३ की बात है - मनमाड के पास अनकाई नामक एक छोटा सा ग्राम है। ग्राम के समीप ही पहाड़ी पर किसी देवी का मन्दिर है, तथा आसपास दर्शनीय गुफाएं हैं। कुछ दिन तक हमारा वास्तव्य वहाँ था। एक दिन शामको हम सब गुरुदेव को डोली में बिठाकर पहाड़ी पर ले गये। शाम के प्रतिक्रमण के बाद भजनों का कार्यक्रम शुरू हुआ, सभी ने कुछ न कुछ सुनाया, सारा वातावरण ही गीतमय बन गया था। चारों ओर स्वर लहरियों ने अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया था। ऐसे समय में सुरों की निरन्तर आराधना करनेवाले, स्वरों के राजा गुरुदेव कैसे चुप रह सकते थे। सभी का गाना होते ही उन्होंने बड़ी उमंग के साथ खुली और साफ आवाज में भजन गाना शुरू कर दिया। उस वक्त उनकी उम्र ८२ वर्ष की थी। उस अवस्था में भी वह दमदार आवाज, वह मिठास और सुरीलापन, हम सब तो सुनते ही रह गये, देखते ही रह गये। किसीने यह कल्पना तक नहीं की थी कि आज गुरुदेव गायेंगे पर अकस्मात उन्होंने सूर छेड दिये थे और सभी को सुखद आश्चर्य का धक्का दे दिया था। उनके पास भजनों का, गीतों का, नग्मों का, गजलों का, भंडार ही भरा हुआ था। गीत भी ऐसे गहरे अध्यात्म भाव से वैराग्य भाव से भरे हुए थे कि सुननेवाला एक बार तो भीतर तक हिल जाता था। भाव विभोर होकर शुभ-अध्यवसायों में खो जाता था। जब जहाँ उन्हें लगा कि यह गीत अच्छा है, इसकी तर्ज अच्छी है, तुरन्त वे हमें लिखकर लेने के लिए कहते थे। कोपरगांव में एक मुस्लिम स्कूल में गुरुदेव को प्रवचनार्थ बुलाया गया था। प्रवचन के प्रारंभ में स्कूल के दो बच्चों ने एक नग्म गायी-जिसके बोल थे "जिन्दगी का भरोसा नहीं मोमिनो, जितना मुमकीन हो जिक्रे खुदा कीजिए" नग्म क्या थी, पुरा जैन दर्शन का निचोड़ ही था। गुरुदेव ने वह नग्म लिखकर लेने के लिए कह दिया। एक ही बार उन्होंने वह नज्म सुनी थी, पर तुरन्त उनके दिल दिमागों में वह बैठ गई। जिनके रोम-रोम से ही स्वर-लहरियाँ प्रस्फुटित होती रहती हों उनके लिए यह सहज स्वाभाविक था। उसके बाद वह नग्म मुझे और महेन्द्रऋषिजी को सिखाई। गाते वक्त स्वरों में थोड़ा भी फर्क आ जाता तो कहते उन बच्चों ने ऐसा गाया था क्या? और फिर हमारी गलती सुधारकर स्वयं गाकर बताते थे। आप भी सोच सकते हों कि संगीत के प्रति गुरुदेव को कितनी रुचि थी। उनके भंडार में कई जाने-माने प्रख्यात कवियों के कई भाषाओं



के गीत संग्रहीत थे। एक-एक गीत मानो कोहिनूर हीरा था। बुद्धिसागरजी, आनन्द-घनजी के अध्यात्म से ओतप्रोत भजन गुरुदेव को अत्यधिक प्रिय थे। जैसे बुद्धिसागर जी का यह गीत "आतम आत्मकुटुम्बने देखो" आलाप ले-लेकर गाते थे, तो श्रोता अध्यात्म-रस से सराबोर हो झूम झूम जाते थे। पंजाबी कवि न्यामतजी का यह भजन "तुम आवो ना, जरा आ के धरम सुन जावो ना" बड़ी कठिन राग पर गुरुदेव इसे सहजता से गा लेते थे और तन्मय हो जाते थे। वे मस्त फकीरी वह मुझको शाहों की भी परवाह न हो यह गीत इस उमंग, जोश के साथ गाते थे कि लगता था वास्तव में गुरुदेव शहेंशाह हैं। सूरदासजी का यह भजन "अचम्बो इन लोगन को आवं' , झाड गोपाल अमित रस अमृत, माया विष फल खावे", जब वे इस भजन की तान छेड़ते थे तो अनुभूति हो जाती थी कि माया में फँसे हुए लोग सही में कितने अज्ञानी है। "रे तेरी अच्छी बनेगी-सन्तन के संग लाग" "हंसन की गति हंस ही जाने को॒॒ जाने काग"। कबीरदासजी का यह भजन उन्हें बहुत प्रिय था। देखिए चुनाव भी कैसा था। एक-एक भजन के भाव कितने गहरे, कितने मर्म भरे और अध्यात्म भरे थे। संत तुकार-ामजी के कई अभंग वे इतने सुंदर ढंग से और सहजता से गाते थे कि लगता था साक्षात् संत तुकाराम ही अवतरित होकर गा रहे हैं। बुद्धिसागरजी, आनन्द घनजी, कबीरदास, सूरदास, मीरा, संत तुकाराम, संत मोरोपंत की रचनाओं में, भजनों में वे डूब जाते थे। सुनने वालों की सुनने की प्यास कभी तृप्त नहीं होती। वातावरण में एक जादू सा छा जाता था। निरस व्यक्ति भी रससिक्त हो जाता था। इसका प्रमुख कारण था कि गुरुदेव पूर्णतया संगीतमय थे।

संगीत जिसके जीवन में रस-बस गया वह व्यक्ति अधिक संवेदनशील और जागरूक होता है। उस व्यक्ति का जीवन संतुलित और अनाग्रही होता है। क्योंकि संगीत का, रागदारी का मूलतत्त्व ही है संतुलन। संतुलन टूटा कि सब कुछ बेसुरा हो जाता है। आग्रह खींचा-तानी वहाँ हो नहीं सकती। नहीं तो सब कुछ कर्कश हो जायेगा, कर्णप्रियता खत्म हो जायेगी। गुरुदेव का जीवन संतुलित अनाग्रही इसीलिए था क्योंकि वे संगीत के मर्मज्ञ थे। वे जानते थे कि किसी अनुपात को ज्यादा खींचा जाय या परिणाम से अधिक ढीला छोड़ा जाये तो रसभंग हो जाता है, सुरीला- पन खत्म हो जाता है। इसी बात को उन्होंने अपने जीवन में अपनाया था। उन्होंने किसी बात के लिए कभी हठाग्रह नहीं किया, न कभी खींचा तानी की। सभी बातें अनुपात में और प्रमाणोपेत रहती थीं। इसी कारण वे पुरुषोत्तम थे। ऋषिवर थे।

वे सदा सप्त स्वरों में खोये रहते थे। गुनगुनाते रहते थे, और सहज समाधि में चले जाते थे। 'सहज समाधि भली रे संतों' यह उनका जीवन मंत्र था और 'सहज-समाधि' संगीत की साधना से सहज ही साध्य हो जाती है। उनकी छोटी सी छोटी



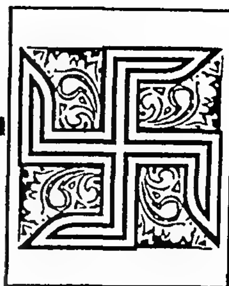
कृति में भी ताल बद्धता थी, वे आँख भी उठाते और झुकाते थे,तो उसमें भी एक निश्चित गति होती थी, एक लय होती थी। वे धीमे से अपना हाथ उठाकर किसी को आशीष देते या कुछ इशारा करते तो लगता किसी ने मधुर शिवरंजनी राग छेड़ दिया हो। उठते बैठते वक्त, चलते वक्त ऐसा ही महसूस होता था कि कोई मीठा-मीठा गीत प्रवाहित हो रहा हो। पर अचानक, अकस्मात, अप्रत्याशित रूप से क्रूर काल की बिजुरी सूर देवतापर उस संगीत पुंज पर ऐसी गिरी कि सारे स्वर बिखर गए, चूर-चूर हो गए। उस सुमधुर वीणा के तार टूट गए और वह बेजान हो गई, मृत हो गई। स्वर ही खो गया, फिर गीत कहाँ? सब कुछ नीरव निर्जीव हो गया। जिस वीणा का संदेश था, कैसी भी परिस्थिति में अपना संतुलन न खोना, न किसी बात को ज्यादा खींचना, न किसी को ज्यादा ढीला छोड़ना। सब कुछ अनुपात में हो, मर्यादा में हो। सीमा उल्लंघन न हो। नहीं तो सब कर्कश हो जाएगा, बेसूरा हो जाएगा। वह वीणा अब नहीं रही।

आज भी हम तड़पते हैं, तरसते हैं कि वह स्वर देवता फिर एक बार भूमि पर उतर आए और अपनी मधुर, कर्णप्रिय, सशक्त स्वर-लहरियों से हमें रससिक्त कर दें। पर अब तो केवल अहसास है, और शेष हैं सारी स्मृतियाँ।

अंत समय तक गुरुदेव संगीत में डूबे रहे। सहज समाधी में रहे। हंसते-हंसते उन्होंने मृत्यु को अपनाया। मृत्यु को महोत्सव बनाया। वे युगपुरुष थे, योगी थे, महर्षि थे। उनका अस्तित्व कभी अस्त हो नहीं सकता। वह आज भी है और सदा रहेगा। उनकी मधुर स्वर-लहरियाँ आज भी चारों ओर अपनी मधुरिमां बिखेर रही हैं। उनकी मृत्यु कैसी? वे तो अमर हैं।



- *जैसे वृक्षों पर फूल और फल बिना किसी प्रेरणा के अपने समय पर लग जाते हैं, उसी प्रकार कर्म भी अपने फल प्रदान के समय का उल्लंघन नहीं करते।*
- *अपना हित चाहने वाला प्राणी चारों कषायों का वमन करता है, अर्थात् इन्हें त्याग देता है।*
- *जब तक कषाय मन्द नहीं होते तब तक सुख एवं शांति प्राप्त करने के समस्त बाह्य प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं।*
- *क्रोधी व्यक्ति अपने मुंह को खुला रखता है पर आँखों को बंद कर लेता है।*
- *क्रोध एक तूफान के समान आता है और सर्व प्रथम विवेक की ज्योति को बुझा देता है।*



जनप्रिय आचार्य का जन-जागरण

■ श्री महेन्द्रऋषिजी म.

स्वार्थ परार्थ च साधयति इति साधुः इस प्राचीन उक्ति को मूर्त रूप प्रदान करनेवाला एवं "निज परके हित साधन में जो निश दिन तत्पर रहते है" इस काव्य पंक्ति का साक्षात् उदाहरण पू. गुरुदेव का जीवन रहा। पू. गुरुदेव की चेतना कभी भी विजनवास में जनता से विमुख होकर मात्र आत्मकल्याण में प्रवृत्ति की नहीं रही। उन्होंने सर्वदा निज आत्मकल्याण के साथ जनकल्याण जनमंगल की भावना को सिंचित पुष्पित पल्लवित किया।

संयमी जीवन के प्रारंभ काल में गुरुवर्य श्री रत्नऋषिजी म. के स्नेहपूर्ण किन्तु कठोर अनुशासन में बालमुनि आनन्द सदा अध्ययन- रत रहा करते। अध्ययन काल में वे जनसम्पर्क से स्वतः एव सर्वथा दूर रहते और गुरवर्य का भी निरन्तर इस ओर लक्ष रहता। आचार्य भगवान सुनाया करते थे। एक बार व्याख्यान के पश्चात् कोई दर्शनार्थी नवदीक्षित श्री आनन्दऋषिजी के पास खड़ा होकर कुछ बात कहने लगा, उसी समय भीतरी बाजू में विराजित गुरूवर्य की नजर उनपर पड़ी और तुरन्त कह दिया-आनंद! अजून पंचायत री बारी थारा तक नहीं आयी। जा अभ्यास कर! इस प्रकार के अनुशासन के कारण पू. गुरुदेव अन्य सभी बातों से परे केवल अभ्यास में ज्ञान-ध्यान स्वाध्याय की साधना में संलग्न थे।

दीक्षा के पश्चात् १५ वर्ष बाद ही अकस्मात गुरुवर्य के देवलोक हो जाने से वैयक्तिक एवं सामाजिक गुरुतर भार भी युवामुनि आनन्दऋषिजी के कंधोंपर आ पडा। तथापि अपना लक्ष्य ज्ञानार्जन की ओर ही विशेष रूप से देते रहे। साधुमर्यादानुरूप ग्रामानुग्राम विहार यात्रा भी चलती। निंरन्तर विचरण के कारण जनता से सम्पर्क अधिक अधिकतर होता गया। उस समय (करीब ६०-६५ वर्ष पूर्व) गुरुदेव का विचरण क्षेत्र अधिकतर खानदेश, विदर्भ रहा जिसे पू. आचार्य भगवंत की कर्मभूमि कहा जा सकता है। उन दिनों में गुरुदेव के चातुर्मासादि कार्योंमें युवकों का सहभाग अधिक होता। पू. गुरुदेव बुजुर्गों को नाराज न करते हुए उत्साही युवकों से कार्य कराने के पक्षधर थे।

प्रारंभ से ही पू. गुरुदेव के निर्मल-सात्त्विक जीवन की ओर जनता आकर्षित हो जाती। ज्ञानप्राचुर्य एवं क्रियानिष्ठता के बावजूद आड़म्बर एवं अहंकार रहित जीवनशैली से जनसामान्य स्वतः प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। पू. गुरुदेव के निरागस, स्वाभाविक, मधुर, मनमोहक हास्य एवं सहज संवाद के कारण जो एक बार भी सम्पर्क में आता उसे पुनः पुनः दर्शन की अभिलाषा जागृत हो जाती। उसके हृदय में पू. गुरुदेव का स्थान अमिट



हो जाता। संवाद के अन्तर्गत भी सांसारिक चर्चाओं को कोई अवकाश नहीं, केवल संक्षेप में हालचाल पूछ लिये और तुरन्त ही कोई धर्मचर्चा-प्रश्नोत्तर-शंका-समाधान का प्रारंभ होता अथवा अपना नित्यनियम शुरू कर देते।

पू. गुरुदेव का सम्पर्क सभी प्रकार की जनता से था, किन्तु उनमें भी मध्यमवर्गीय जनता में गुरुदेव का आकर्षण अत्यधिक था। इसका कारण यही था कि गुरुदेव ने कभी भी धन से नहीं अपितु भावना से भक्तों की पहचान की। लक्ष्मी का नहीं किन्तु भक्ति का आदर उन्होंने किया। जो भी छोटा-बड़ा गुरुचरणों में आता उससे आस्थापूर्वक बात करना, उसकी शंका को, व्यथा को शांतिपूर्वक श्रवण करना और चन्द शब्दों में उसका समाधान कर देना यह गुरुदेव का स्वभावगत वैशिष्ट्य था।

अनेक विशेषताओं में भी पू. गुरुदेव का एक गुण ऐसा था, जो बहुत ही कम लोगों में पाया जाता है, वह था 'सागर वर गंभीरा!' किसी भी व्यक्ति की कोई भी बात हो वैयक्तिक-पारिवारिक अथवा सामाजिक। हर प्रकार की बात को सुन कर पी जाते थे। कभी भी एक की बात दूसरे तक पहुंच नहीं पाती। कोई लाख कोशिश करे। अतः हर व्यक्ति गुरुचरणों में अपना हृदय निश्चिंत भाव से उद्‌घाटित कर अपना भार हलका कर लेता। अनेक श्रावक श्राविकाएँ एवं आपवादिक परिस्थिति में संत-सती अपने व्रत के अतिचारों की आलोचना पू. गुरुदेव के पास करते, किन्तु कभी भी सन्तवृन्द या श्रावक वर्ग के समक्ष उसकी चर्चा नहीं और नहीं कभी आलोचना करनेवाले के प्रति तिरस्कार की भावना। अपितु प्रायश्चित्त द्वारा उसकी शुद्धि कर उसे प्रगतिपथ पर अग्रसर कर देते।

पू. गुरुदेव की जनसम्पर्क कला का एक आयाम था 'सुदूरपदयात्रा' इस पदयात्रा की अनेक विशेषताएँ हैं।

१) ४-५ बार महाराष्ट्र से राजस्थान और राजस्थान से महाराष्ट्र। सर्व प्रथम ब्यावर सम्मेलन के लिए, उसके बाद भीनासर-सादडी-अजमेर सम्मेलन के निमित्त से अनेक बार राजस्थान की ओर विहार हुआ। और पुनः पुनः मध्यवर्ती क्षेत्रों की स्पर्शता के कारण जनसामान्य के साथ परिचय वृद्धिंगत होता रहा। इसके फलस्वरूप उन क्षेत्रों के भाविक जनों के किसी भी सम्प्रदाय के हों पू. गुरुदेव श्रद्धाकेन्द्र बन गये।

२) भक्तिप्रधान महाराष्ट्र की धरा पर अपने दीर्घ संयमी जीवन काल में प्रायः अनेक छोटे-बड़े गाँवों में विचरण किया। विचरण भी नाम मात्र या सुबह आये शाम चले ऐसा नहीं, अपितु ८-१५ दिन तक निवास करते। प्रवचन आदि के माध्यम से जनजागरण का अविरत कार्य करते रहते। जिससे जैन-अजैन सभी जनता सुरस सुबोध प्रवचनों के लिए खींची चली आती।

३) आचार्य पद चादर महोत्सव के पश्चात् उत्तर भारत में विचरण किया। जिसमें देहली, पंजाब, जम्मू, हरियाणा



और बडौत क्षेत्र में चातुर्मास किये। पंजाब-हरियाणा और दिल्ली क्षेत्र में चातुर्मास के अनन्तर विहारयात्रा के दौरान पू. गुरुदेव ने प्रायः छोटे से छोटे क्षेत्र में भी स्पर्शना की। जिसे दर्शनार्थी भक्तगण हमेशा समय-समय पर स्मरण करते रहते।

इस सुदूर पदयात्रा की उपलब्धि को सम्हाले रखना यह सुदुष्कर कार्य था। जैसे व्यवहार में धनप्राप्ति से भी धन की रक्षा करना कठिन होता है, और उसमें वृद्धि करना कठिनतर होता है। उसी तरह जनसम्पर्क - परिचय करना अधिक कठिन नहीं किन्तु उसे टिकाये रखना दुष्कर है। तथापि पू. गुरुदेव ने अपनी अपूर्व अद्वितीय स्मरणशक्ति के बल पर इसे बनाये रखा। कई वर्षोंपूर्व की घटना को वे इस तरह बताते जैसे वह सामने घटित हो रही हो। आचार्य पद प्राप्ति के पश्चात् भी अपने संवाद में सहजता-सरलता पूर्ववत् रही। पद प्रतिष्ठा के व्यामोह अथवा अहं उन्हें कभी भी असहज नहीं बना पाये।

इस प्रकार महाराष्ट्र, मालवा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, जम्मू, उत्तरप्रदेश, आंध्र, कर्नाटक, आदि में प्रत्यक्ष विचरण और मद्रास आदि क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष सम्पर्क के माध्यम द्वारा विस्तृत जनसम्पर्क पू. गुरुदेव का था। प्रति दिन भिन्न भिन्न स्थानों से भक्तगणों का तांता गुरुचरणों में लगा रहता। इन सबके बावजूद पू. गुरुदेव का साधना-स्वाध्याय अध्यापन आदि नित्यक्रम अविरत रूप से चलता रहता। जलकमलवत् उनका कार्य एवं अस्तित्व था, जो सबसे परे रहकर भी कमल जैसे सरोवर को वैसे ही सम्पूर्ण वातावरण को शोभायमान करता था।

पू. गुरुदेव की सुदीर्घ संयम यात्रा की दैनिक प्रार्थना का क्रम अविरत चलता रहा। विहार के लिए विलम्ब हो रहा हो, गर्मी के दिन हों फिर भी प्रार्थना के पश्चात् ही कदम आगे बढ़ते। प्रार्थना भी इतने सुमधुर और शांत धीर गंभीर स्वर में होती कि जनता उस भाव में तल्लीन बन जाती। प्रार्थना तो लयबद्ध होती ही थी किन्तु मंगलपाठ जो समस्त जैनों के लिए परिचित है वह भी अत्यंत लयबद्ध ढंग से सुनाते थे। सुप्रसिद्ध गायक चंद्रशेखर गाडगील भी सुनने के बाद मंत्रमुग्ध होकर बोले - "कितना लय है! इनके इस पाठ में!" इन कारणों से जनता यदि आकर्षित होती थी तो यह कोई अधिक आश्चर्य की बात नहीं थी।

जन सम्पर्क और जनप्रियता की अनूठी शक्ति का उपयोग पू. गुरुदेव ने कभी भी निजी स्वार्थसिद्धि अथवा प्रसिद्धि के लिए नहीं किया। इस शक्ति को उन्होंने लोकोपयोगी विधायक कार्यों में प्रयुक्त किया। स्थानिक स्तर पर उन्होंने गाँव-गाँव में बालकों के सुसंस्कारों के लिए धार्मिक पाठशाला की स्थापना की प्रेरणा दी जो कि स्थायी फंड के व्याज में चलने से स्वावलंबी रहें। व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर उन्होंने श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना के लिए संप्रेरित किया।



इसके माध्यम से सामायिक से लेकर जैन सिद्धान्त आचार्य तक की परीक्षाओं का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। परीक्षाओं के माध्यम से अध्ययन में शास्त्रज्ञान में रुचि बढ़े इसे लक्ष्य बनाया गया। उसी के अन्तर्गत साधु-साध्वी शिक्षण व्यवस्था, जैन पण्डितों की समुचित व्यवस्था आदि के लिए जनसामान्य की अर्थशक्ति एवं बौद्धिक शक्ति का विनियोग किया गया।

इस तरह अनेक पैलुओं से युक्त पू. गुरुदेव ने जन सम्पर्क का कभी भी अपनी पदलिप्सा अथवा सम्प्रदाय वृद्धि के लिए दुरुपयोग न करते हुए इसे विधायक कार्य में प्रवृत्त कर एक अनूठा बेमिसाल उदाहरण पेश किया।

अगर चंद शब्दों में पू. गुरुदेव के जनसम्पर्क को अभिव्यक्ति देना चाहे तो यही कह सकते हैं --

"वे सभी के होकर भी किसी के न थे।
और, किसी के भी न होकर सभी के थे।
सभी उनके थे और वे सभी के थे।"



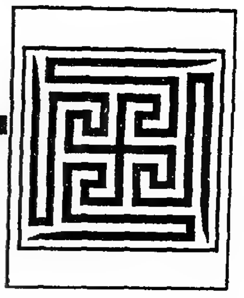
सबके हृदयसम्राट् : आचार्य भगवन्

■ श्री पारसमुनिजी म.

जिनशासन अनेक महान पुरुषोंद्वारा युगों-युगों से गौरववंत बना है। बन रहा है और बनता रहेगा। अनेक महापुरुषों ने नींव का पत्थर बनकर अपने जीवन का अमरत्व योगदान दिया है, इसी कारण जिनशासन की कीर्ति और प्रतिष्ठा की सुरम्य सौरभ सदा-सदा के लिए सम्पूर्ण विश्व तथा मानव के हृदय पर अमिट छाप छोड़े जा रही है।

बस ऐसे ही स्थानकवासी 'जैन' समाज में चक्रवर्त्रि सम्राट् महान ज्योर्तिर्धर, धर्म दिवाकर, ज्ञानउजागर, गुणसागर, महामहिम, राष्ट्रसंत आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनंदऋषिजी म.सा.सूर्यसम चमके तथा जिनशासन को भी अपनी सत्आराधना द्वारा चमका गये।। इसी से उनकी तेजस्वी यश प्रकाश की किरणें हर मानव के हृदय कमल को विकसित कर रही है।

कुछ दिन पूर्व ही पाचोरा का चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् मेरे चरण उस महान संत के पावन दर्शन के लिए अहमदनगर की पावन धरा की ओर तीव्र गति से चल पडे। और वह सुनहरा अवसर भी आ गया। जीवन में प्रथमबार कहूँ या अंतिम बार लेकिन पूज्य आचार्य सम्राट् के पावन दर्शन करके धन्य-धन्य बना। अन्तर्मन में एक ही तमन्ना थी कि आचार्य भगवान के दर्शन हो जाये और वह पूर्ण हुआ। दर्शन करते समय मुझे लगा कि जैसे सूर्य अपनी प्रकाश किरणों के माध्यम से जनसमूह को आनंदित करता है वैसे ही यह महान पुण्य-निधि



आत्मा अपनी पुण्य वाणी से सर्व जनसमूह के हृदय को आनंद ही आनंद लुटा रहे हैं।

यही है सर्व विश्व वंदनीय भगवान महावीर स्वामी की श्रमण संस्कृति का परम लक्षांक संत। सभी को आनंद ही प्रदान करनेवाले होते हैं। उनके जीवन में न तो सम्प्रदायवाद, न रागानुराग का भेद-भाव ही होता है। सभी जीवों के प्रति उनके हृदय में अपनेपन का भाव समाहित रहता है। इसी का नाम है वीतराग का शासन। इन्हें ही कहते है-महावीर प्रभु के सच्चे संत।

पूज्य आचार्य भगवन्त ने लघु वय में ही अपने जीवन को स्व पर की आराधना हेतु संसार से अलविदा करके जिनशासन में सदा के लिए समर्पित कर दिया तथा रत्न जैन रतन गुरुवर को पाकर धन्य बन गये। साथ ही विनय, नम्रता और सरलता की कला कुशलता से गुरु भगवंत को अपने बना लिए।

जब मैं अहमदनगर में आचार्य सम्राट् के सन्निकट था, उस समय वहाँ श्रीकुंदन-ऋषिजी, श्री. प्रवीणऋषिजी, श्री आदर्शऋषिजी, श्री महेन्द्रऋषिजी आदि संत वर्ग आचार्य भगवंत की सेवा में दत्तचित्त थे। अपने प्राणाधार की सेवा भक्ति भला कौन नहीं करेगा? आचार्य भगवंत की सेवा शुश्रूषा अंत समय तक अग्लान भाव से उत्साहपूर्वक करके शिष्य परिवार धन्य बनकर विनय धर्म का आदर्श उपस्थित किया है।

रात्रि के समय धर्मचर्चा में सन्तों के मुख से मैंने सुना है कि आचार्य भगवन्त की सहनशीलता भी अलौकिक थी। आचार्य भगवंत के जीवन की एक दो घटनाएँ विद्वद्वर्य श्री महेन्द्रऋषिजी म. के. मुख से सुनकर मेरा अन्तर्मन झूम उठता था। और भी इन महापुरुष के दृश्य-अदृष्य अपार गुण होंगे जो अपनी आँखें देख न सकी तथा अनुभव में भी नहीं आए। फिर भी वे थे गुणों के महासागर।

आज आचार्य सम्राट् के महाप्रयाण से महाराष्ट्र तो सूना-सूना पड़ा है, महाराष्ट्र ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश में सन्नाटा छा गया है। आचार्य सम्राट् जैसे असीम प्रतिभा के धनी महापुरुष होंगे या नहीं यह कल्पना वर्तमान में व्यर्थ है।

इस महान युग पुरुष ने अनेक आत्माओं को स्वयं जिनशासन की वफादारी से जो आगम स्वरूप, ज्ञान-दर्शन, चारित्र के अनुकूल चलकर साधना की है और अनेकों को साधना रत कर उनके तारणहार बने तथा आचार्य भगवंत के निजगुणों की आदर्शता को सुनकर अनेक आत्माएँ सत्पथ पर अग्रसर होती रहेंगी। आज इस महान युगपुरुष का पार्थिव देह अपने सामने नहीं है परंतु उनके आदर्शता के गुणसागर अपने सामने सदा के लिए मौजूद है। इसी कारण उनकी आत्मा अमरत्व को प्राप्त कर चुकी है। ऐसे महानात्मा को हमारे कोटि कोटि वंदन सह. श्रद्धा सुमन समर्पित हैं। उनके ज्ञान-दर्शन-चारित्र के सुवासित गुण हम सभी में विकसित होवें। बस परम परमात्मा से यही मंगल-भावना युक्त आंतरिक पुकार है।



महागुरु को अनन्त प्रणाम

■ उप प्र. राजेन्द्रमुनिजी म.

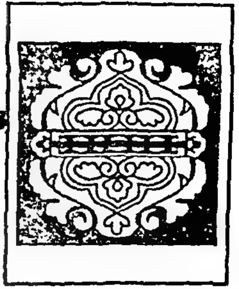
ज्यों ही आचार्य देव के देवलोक गमन के समाचार इन कानों को सुनने मिले मन को एकाकी विश्वास नहीं हो पाया कि क्या ये सत्य हैं। जिसको लेकर हृदय में कुछ कल्पनाएँ थी कि आचार्य भगवन्त के निकट भविष्य में पुनः दर्शन प्राप्त होंगे। पर अब वे हमारे बीच नहीं रहे।

आचार्य देव का जीवन निर्मल, पावन, पवित्र व साधनामय था, वे एक तपोमूर्ति, शांतमूर्ति व योगमूर्ति थे। विगत वर्षों में सिकन्दराबाद व अहमदनगर के चातुर्मास दौरान निकट सेवा में रहने का संयोग मिला। उनकी आत्मीयता भुलाए नहीं भुलाई जा सकती। आज देह दृष्टि से वे हमारे बीच भले ही न रहे हैं व गुण-दृष्टि से सदा सदा विराजमान हैं। वे स्वयं भी तिर गए एवं लाखों को तिरा गए, उनका जीवन आगम की भाषा में 'जहां अन्तो तहा बाहि, जहा बाहि तहा अन्तो', अर्थात् जैसा भीतर था वैसा ही बाहर था, उस महापुरुष महागुरु के चरणों में हृदय की अनन्त आस्था के साथ हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित है। ■■

आलोक स्तंभ-आचार्यश्री

■ श्री सुरेन्द्रमुनिजी म.

आराध्य देव आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. न केवल जैन जगत के उज्जवल सितारे थे, अपितु भारतवर्ष के चमकते-दमकते ज्योतिर्मान नक्षत्र थे। वे एक ऐसे अलौकिक महापुरुष थे। जिनकी महिमा और गरिमा को भाषा द्वारा व्यक्त करना सम्भव नहीं है। उनके जीवन सागर में असंख्य सद्गुणों के दिव्य रत्न पूर्ण आभा से सदाकाल प्रकाशमान रहे हैं। और वे काल की संकीर्ण सीमा को लांघ कर भी दैदिप्यमान रहेंगे। उन महापुरुष के आदर्श जीवन में सरलता और सहजता, संयम एवं समता, त्याग और वैराग्य, ज्ञान और क्रिया, दिव्यता और भव्यता, सहिष्णुता और गम्भीरता, वीरता और धीरता, साहस और उत्साह, विश्वास और दृढता, निर्लोभता और निस्पृहता, सत्य ओर शील, विवेक और विनय आदि सद्गुण विद्यमान थे। इन सद्गुणों की मधुर सौरभ का पान करने के लिए भारत वर्ष के विभिन्न अंचलों से भक्त भ्रमर आया करते थे। ओर उनके दर्शन कर वे फूले नहीं समाते थे। उनके मुखारविंद से जब भी वचनों की अमृत वर्षा होती थी तब दर्शक जन उस



वर्षा से लाभान्वित हो जाता था। और वह अपने आपको भाग्यशाली और पुण्यशाली मानता था।

आचार्यश्री जी वास्तव में भक्त जनों के मन मन्दिर के साक्षात् भगवान थे। तीर्थ स्वरूप थे, पारस पुरुष थे, करुणा के देवता थे।, शिक्षा के जगत में जो क्रान्ति की अलख जगी। प्रसुप्त मानस को जगाने के लिए बिगुल बजाया। जिससे मानव समाज अज्ञान के सघन अंधकार से सदाकाल मुक्त हुआ। रूढ़िवाद के कारागृह से छुटकारा पा सका और संस्कारों के महामार्ग पर सुदृढता से गतिशील हो सका। वह दानवता के स्थान पर मानवता को अपनाने लगा, जिससे उसके जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। परिष्कार हुआ और ऐसे संस्कारों का आविष्कार हुआ कि वह मानव जाति के लिये एक अभिनव ज्योति स्तम्भ के रूप में मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। सुदृढता से गतिशील हो सका।

महामहिम आचार्य सम्राट् ने साहित्य के क्षेत्र में भी उत्कृष्ट ग्रन्थ प्रदान किये। जो प्रबुद्ध पाठक हैं, वे आचार्यश्री के साहित्य सागर में से प्रेरणाओं के दिव्य रत्न प्राप्त कर लेते हैं और वे अपने जीवन को सदाचारमय बनाते हैं। वास्तव में आचार्य श्रीजी प्रतिभाशाली, समर्थ साहित्यकार थे। वे सरस्वती के अतिजात पुत्र थे। इसलिये उन्होंने सरस्वती के महामन्दिर में अमूल्य ग्रंथों का उपहार समर्पित किया था। यह समर्पण सदा चिरायु रहेगा।

परम श्रद्धेय पुण्य पुरुष आचार्यश्री जी का जहाँ पर भी मंगलमय पदार्पण होता था, उनके पुण्य प्रभाव और सदुपदेश से अनेक प्रकार के जन-कल्याणकारी कार्य सहज रूप से सम्पन्न हो जाते थे। उनके द्वारा जिन शासन की प्रभावना विपुल रूप में हुई है। जिनका सर्वांग रूप से उल्लेख करना इस जड लेखनी से परे है। कोई भी इतिहासकार जब बीसवीं सदी का इतिहास लेखन प्रारम्भ करेगा तब इस इतिहास पुरुष को छोड़कर इतिहास पूर्ण रूप से लिख नहीं पाएगा। वास्तव में आचार्य देव अपने आप में इस सदी के सर्वथा मौलिक इतिहास पुरुष थे। जिसका प्रत्येक पृष्ठ और प्रत्येक पृष्ठ की प्रत्येक पंक्ति प्रेरणास्पद है। जो भी इस ऐतिहासिक महापुरुष को भावात्मक दृष्टिकोण से एवं अन्तर्चक्षुसे निहारेगा वह स्वयं कृतकृतत्यता का अनुभव करेगा। उस परम पावन पारस पुरुष के सद्गुण और संदेश के संस्पर्श से मानव जाति का जीवनरूपि लौहखण्ड स्वर्णमय बनेगा ओर निर्मल आभा से प्रतिपल दीप्तिमान रहेगा।

■ ■

- *क्रोध क्रोधी को तथा क्रोध के पात्र, दोनों को ही उत्तप्त करता है। इसलिए महापुरुष और मुमुक्षु प्राणी इससे कोसों दूर रहने का प्रयत्न करते हैं।*



होनहार बीरवान के होत चीकने पात

■ श्री अक्षयऋषिजी म.

एक छोटासा गांव था। वह आधुनिक सुख-सुविधाओं से अति दूर था। वहाँ के रास्ते मिट्टी के थे एवं मकान भी मिट्टी के ही थे। पर उन मकानों में रहनेवालों के हृदय कॉंक्रीट के मकानों में रहनेवालों की तरह कठोर न होकर मिट्टी के समान मृदु थे। वहाँ के लोग सीधे-सरल और भोले-भाले थे। उनका हर दिन प्रायः एक-सा ही बीतता था। वे रोज दिनभर खेतों में काम करते और संध्या समय भगवत् भजन में बिताते।

गांव में रात का जल्दी अहसास होता है। वहाँ रात अधिक शान्त तथा गहरे अंधकार से युक्त होती है। उस दूर-दूर तक फैले हुए तथा गहरे अंधकार रूपी सागर में खिड़की-दरवाजों से टिमटिमाते दीपकों का धुंधला प्रकाश राहगीरों के लिए आकाशदीप का काम करता है।

गांव के बीचोबीच खुले मैदान में भाविक लोग एकत्रित हो गए थे। भजनी-मंडली भजन गा रही थी। उस भजनमंडली में एक छोटासा बच्चा था। उस बच्चे की ओर सब की नजरें जमी हुई थीं। अधिकांश भजन उसने ही गाये थे। लोग फिर-फिर उसे ही गाने के लिए कह रहे थे।

उस बच्चे की आवाज सधे हुए गायक-सी थी। उस आवाज में मधु-सी मधुरता थी। मिश्री-सी मिठास थी, कोयल की एकतानता थी तथा संगीत प्रिय कान उस आवाज को सुनने के कायल थे।

वह बच्चा सबको अपना-अपना-सा लगता था क्योंकि उसकी सुंदर मुखाकृति, बड़ा भाल, विशाल आँखें, उँची नाक, सर्वसाधारण बच्चों से कुछ अधिक बड़े कान, गेहुँआ रंग, सुंदर आवाज, चेहरे पर सदा मंद-मंद हास्य का निवास, साथ ही साथ शान्त, सरल, सहज स्वभाव सोने में सुहागा का काम कर रहा था। भला, इतनी सारी विशेषताएँ जिस बच्चे में होंगी उसकी ओर कौन नहीं आकर्षित होगा?

भक्तमंड़ली उस बच्चे को भजन गाने के लिए आग्रह कर रही थी। बच्चा गा-गाकर थक गया था। अब उसकी गाने की इच्छा नहीं थी। तभी गांवप्रमुख बोला - "देखो नेमी! लोगों के आग्रह के लिए अब सिर्फ एक ही भजन सुनाओ।" नेमी विनीत स्वर में बोला - "पहले ही चार-पाँच भजन सुना चुका हूँ, फिर कहते हैं और एक सुनाओ! हर बार ऐसा ही कहा जाता है कि बस, अब एक ही।" नेमी लोगों के आग्रह को अधिक देर तक टाल नहीं सकता था। इसलिए तुरंत भजन गाने के लिए तैयार हो जाता था।

समय-असमय में कोई भी कभी भी उसे भजन गाने के लिए कहता था, अगर उसकी गीत गाने की इच्छा नहीं रहती तो



उसे चॉकलेट आदि खाने की चीजों का प्रलोभन देकर अथवा तुझे कमरे में बंद कर देंगे ऐसा भय बताकर उससे गीत गवाने का प्रयत्न करता था।

''होनहार बीरवान के होत चीकने पात'' इस कहावत को सौ फी सदी सत्य साबित किया छोटे नेमी ने। जो आयु माँ की ममतामयी छाया में विश्राम की होती है, उस आयु में नेमी ने श्रमसाध्य, ग्रीष्म-ताप-सदृश्य, ममता छत्र-विहीन कठिन संयम मार्ग को शेर की भाँति अपनाया तथा शेर की भाँति ही आजीवन उस मार्ग पर अग्रसर होता रहा।

संयम ग्रहण करने के बाद रत्नऋषिजी म. सा.ने नेमी का नाम आनंदऋषिजी म. सा. रखा। आनंदऋषिजी म. सा. ने १३ वर्ष की उम्र में ही प्रण कर लिया था कि गुरुदेव ने दिये हुए नाम की मैं लाज रखूँगा। इसीलिए तो वे जिंदगीभर औरों को आनंदित करते रहे, सुखी बनाते रहे, अपने शुद्धाचरण से दूसरों का आचरण सुधारते रहे एवं प्रवचन, भजनों के माध्यम से मानवजाति को एक धागे में पिरोते रहे।

उन्होंने अपना सारा जीवन औरों को सौंप दिया था। उन्होंने अपनी इच्छा-अनिच्छा का ध्यान न रखकर दूसरों की इच्छा-अनिच्छा का अधिक सन्मान किया। उन्होंने अपनी सुख-सुविधा को कणभर भी महत्त्व नहीं दिया पर आसपासवालों की सुख-सुविधा को कभी भी नजरअंदाज नहीं किया। न कभी उन्होंने प्रलोभन से आकर्षित होकर अपने सहज और सरल जीवन में कृत्रिमता लाई और न भय से भयभीत होकर संयम मार्ग से विचलित हुए।

इसीलिए आचार्य आनंदऋषिजी म. सा. पंक्ति दर पंक्ति आगे बढ़ते गए। आचार्य, सम्राट्, राष्ट्रसन्त आदि उच्चतम पदों को आपने प्राप्त किया। आज वे हमारे बीच नहीं है, फिर भी उनका यश युग-युगान्तर तक मानवजाति में फैला रहेगा।



- *अभिमानी व्यक्ति अहंकार के कारण अपने आप को महान समझता है तथा औरों को तुच्छ।*
- *अहंकार से सभी मनुष्यों द्वारा निंदा का पात्र ही बनना पड़ता है।*
- *अभिमानी व्यक्ति गगन को छूने का प्रयत्न करता है किंतु धराशायी होकर संसार के समक्ष उपहास का पात्र बनकर रह जाता है।*
- *माया हृदय की सरलता को नष्ट कर देती है तथा कुटिलता को आमन्त्रित करती है।*



मेरे भगवन्त आनन्द

■ श्री गौतममुनि 'प्रथम'

"जाए सद्धाए णिक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा विजहित्ता विसोतियं"

"साधक ने जिस श्रद्धा, निष्ठा, वैराग्य भाव के साथ संयम पथ पर कदम बढ़ाया है उसी श्रद्धा के साथ संयम का पालन करे"

उक्त आगम की युक्ति को साकार रूप में मैंने देखा जन-जन के 'श्रद्धा के केन्द्र, 'आस्था के आयाम ज्ञान महोदधि,' राष्ट्रसंत, सरल, सौम्य, शांत, प्रशांत, चारित्र चूड़ामणि अखण्ड बाल ब्रह्मचारी आचार्य सम्राट् परम पूज्य गुरूदेव श्री आनंदऋषिजी म. सा. के जीवन में।

ज्ञान कुबेर मेरे गुरु

गुरुदेव श्री प्रतापमलजी म. सा. की असीम कृपा से तथा शताब्दी संत उपाध्याय पूज्य गुरुदेव श्री कस्तूरचंदजी म. सा. की आज्ञा से मुझे तथा शास्त्री प. प्रवर श्री सुरेशमुनिजी म. सा. को आचार्य प्रवर के दर्शन करने का तथा सेवा में रहने का अवसर मिला था।

मैंने अति निकटता से आचार्य प्रवर को संयम-साधनारत देखा। आचार्य श्री ज्ञान के कुबेर थे। अपनी वृद्ध अवस्था में भी ज्ञान सीखने में अप्रमत्त रहे। इस वर्षावास में हम अठ्ठारह श्रमण सेवा में थे।

आचार्य प्रवर ने फरमाया - "संतो, चातुर्मास काल में आगम वाचना प्रारंभ करो।" सभी संतों ने तहत्थ हजूर कहा और तत्काल ही आचार्य प्रवर ने आचारांग सूत्र की वाचना देने की महती कृपा की। एक दिन मैंने हजूर की सेवा में निवेदन किया कि "आपकी वृद्ध अवस्था है। आप यह कार्य युवाचार्य भगवंत को सौंप दें। तत्काल आपने यह फरमाया कि 'गौतममुनि, यह ठीक है। आचारांग सूत्र की वाचना तो मैं दे ही रहा हूँ साथ ही मेरे सांन्निध्य में बैठकर युवाचार्य प्रवर आप सभी मुनियों को सूत्र कृतांग की वाचना दे देंगे ताकि दोनों आगम की वाचना हो जायेगी। यह सुनकर मैं मन ही मन आश्चर्यचकित हो गया कि कितना स्नेह अपने संत-सतियों के भविष्य के प्रति है। ऐसे थे अप्रमत्त योगी ज्ञान कुबेर मेरे आचार्य प्रवर आनन्द।

मुझे पद नहीं चाहिए, एकता चाहिए

नासिक चातुर्मास की बात है कि आचार्य प्रवर युवाचार्य प्रवर की सेवा में मद्रास निवासी पद्मश्री सेठ श्री मोहनलालजी चोरड़िया आये, चर्चा के दौरान आचार्य भगवन की सेवा में अपने भाव अभिव्यक्त किये कि आप और हम श्रावक वर्ग यह प्रयास करें कि पुनः स्थानकवासी समाज एकता के सूत्र में बंध जाये। आचार्य प्रवर ने फरमाया कि मेरी

भी यही अभिलाषा है कि समाज एकता के सूत्र में बंध जाये। आप यह प्रयास करें।

''कहीं कोई कह दे कि हम आचार्य श्री को आचार्य नहीं माने तो आप सहर्ष कह देना कि आचार्य प्रवर एकता के लिए अपना आचार्यपद तथा युवाचार्य पद समाज को समर्पित कर देंगे। संघ जिन्हें चाहे आचार्य बनावें। मैं उसे सहर्ष मान्य करूंगा। ऐसे उदात्त विचार थे मेरे आचार्य प्रवर आनंद के।

आज मैं दूसरी ओर निहारता हूँ तो यह पाता हूँ कि पद व प्रतिष्ठा के लिए श्रमण वर्ग लाखों रुपयों का व्यय करवा रहे कि हमें पद देवें। किंतु आनंद भगवंत अपने पद का स्वयं परित्याग करने तत्पर थे - एकता के लिए।

मेरी दृष्टि से जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र संप्रदायवाद से परे सभी पर कृपा अमृत बरसाने वाले, आचार्य का होना, इस शताब्दी में असंभव है। आचार्य श्री के देह वियोग से संपूर्ण समाज के लिए एक महान श्रमण रत्न व शासन ज्योति की क्षति हुई है।

मैं श्रद्धेय श्री कुंदनऋषिजी म. सा. आदि मुनिवरों से यह अनुरोध करता हूँ कि गुरु का वियोग ही सर्वोपरि वियोग है आप सभी धैर्य धारण करें।

शासनेश से यही प्रार्थना है कि भगवंत की आत्मा सिद्धबुद्ध मुक्त बने। संघ के भावी कर्णधार भी सम्प्रदायवाद से परे रहकर आचार्य प्रवर की तरह उदार सहिष्णु सहृदय बनकर संघ का संचालन करें।



करुणा के देवता

इसी चातुर्मास में एक रात की बात है मैं लघु शंका के लिए उठा मैंने देखा कि आचार्य प्रवर अपनी एकांत साधना में जागृत थे। और माला पूर्ण होते ही फरमाया कि गौतममुनि कमरे का दरवाजा खोल देवे अभी कुछ दर्शनार्थी आयेंगे। मैंने निवेदन किया कि हजूर अभी रात का दूसरा प्रहर चल रहा है। आप आराम फरमावें। आचार्य प्रवर ने कहा - 'अभी आराम का अवसर नहीं है दरवाजा खोल दो।' मैंने तत्काल दरवाजा खोल दिया। तब मैंने देखा कि एक नवयुवक को अनेकों व्यक्ति पकड़े हुए रोक रहे थे उस ओर मत जाओ। क्योंकि आचार्य प्रवर विश्राम कर रहे होंगे।

मैंने उनसे कहा कि भगवंत जग रहे हैं। आप इसे क्यों पकड़ रहे हो। तब उनमें से एक व्यक्ति ने कहा कि इसके शरीर में ऊपर की हवा का प्रवेश हो गया है। यह बुरी तरह यक्ष के पराधीन है। हम इसे स्थान-स्थान पर ले गये हैं किंतु अभी तक कोई परिवर्तन नहीं है। मैंने सहज में ही कह दिया कि आप भगवंत से मंगल पाठ श्रवण कर लें। मेरा यह कहना हुआ और भगवंत का बाहर पधारना हुआ। आचार्य भगवंत को देखते ही युवक जोर-जोर से चिल्लाने लगा कि मुझे इनके पास मत ले जाओ। तत्काल आचार्य प्रवर ने फरमाया कि इसे मेरे पास लावो और जिस व्यक्ति को दस-पंद्रह व्यक्तियों ने पकड़ रखा था उसे छोड़ दिया गया।



तत्काल आचार्य प्रवर ने अपना बृहदहस्त उसके मस्तक पर रखा। रखते ही वह शक्ति बोल पड़ी कि इसने मेरा गुनाह किया है मैं इसे छोडूंगा नहीं। आचार्य श्री ने उसे समझाया तथा माफ करने को कहा। तब वह शक्ति बोली कि आपकी संयम साधना के आगे मैं नत-मस्तक हूँ। आपकी आज्ञा से इसे जीवनदान दे रहा हूँ। आचार्य प्रवर ने मंगलिक सुनाई वह शक्ति जिधर से आई थी, उधर चली गई। ऐसे थे करुणा के देवता आनंद कंद आचार्य भगवंत आनंद।



ज्ञान मेरू-आचार्यश्रीजी

■ श्री पद्मऋषिजी म.

इस शताब्दि के युग में जितने भी योगीपुरुष हुए, उस योगीयुग में अपने सम्यक् ज्ञान से सभी के मुकुटमणि शोभायमान हुए योगीराज आचार्य सम्राट् पूज्य गुरुदेव श्री आनन्दऋषिजी म. जिनके सिर्फ स्मरण से ही मनमें शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है। जिनका जीवन स्वयं प्रकाशित है। ऐसे महापुरुष के विषय में क्या लिखें।

आपने अपने जीवन का अधिकांश समय ज्ञान-प्राप्ति में व्यतीत किया है। कभी भी आपने अन्य कार्यों में अपना समय नहीं खोया। उन्होंने अपने जीवन का ध्येय ही विद्या प्राप्ति, वह भी विद्या व्यावहारिक नहीं किन्तु इन्सान को देवता बनाने की आध्यात्मिक विद्या का आपने अर्जन किया।

विद्यार्जन करके स्वयं के जीवन में उस विद्या का सिंचन किया। उस सिंचन से एक विद्यारूपी कल्पवृक्ष का निर्माण किया, जिस कल्पवृक्ष की छाया में बैठकर अनेको साधकों ने आध्यात्मिक जीवन जीने की कला को अवगत किया। जिससे उन्हें शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हुई।

आपश्री का जीवन बाल्यकाल से ही आध्यात्मिकता की ओर झुका हुआ था। आध्यात्मिकता के साथ में आपने गुरुवर्य श्री रत्नऋषिजी म. का सान्निध्य पाकर आप और भी संयमरूपी उपवन में एक महकते हुए कभी न कुम्हलाने वाले और सदैव खिले रहनेवाले गुलिस्तां के फूल बन गये। इस महक को पाने के लिए भारतवर्ष से जैन और जैनेतर मनुष्यरूपी भौंरे आकर जीवन का सच्चा आनन्द पाने लग गये है।

आप स्वयं ज्ञानदान में उद्यत रहते थे। कभी कोई भी आपके सान्निध्य में आनेवाला जिज्ञासु आपके दर्शन और समाधान से प्रेरणा पाकर जीवन उत्थान ही करता था। पुनः उसे किसी की प्रेरणा लेने की जरूरत नहीं थी। ऐसे ज्ञानदीप के लिए

हमारा भाव वंदन। इस धरातल पर अगर सूर्यदेवता नहीं होते तो शायद मनुष्यों का जीवन भी अंधकारमय होता; क्योंकि प्रकाश के बिना हर इन्सान कुछ भी कार्य करने में कामयाब नहीं होता, इसलिए इस पृथ्वीपर सूर्य की आवश्यकता होती है।

अगर किसी दिन आसमान में बादल छाये हैं और सूर्य भगवान उदित नहीं हो, तो वह दिन किसी भी इन्सान को अच्छा साबित नहीं होता है।

उस समय ही हम आदित्य का महत्त्व या उपयोगिता समझ सकते हैं। या कुछ दिन सूर्य उदित ही न हो तो इस धरातल पर महामारी का प्रकोप हो जायेगा। जिससे यह धरा दुर्गंधीमय हो जायेगी। उस समय धरातल पर रहे हुए मानव की यही उत्कंठा रहेगी कि कब सूर्य भगवान के दर्शन हो, और इस महामारी के चक्र से छुटकारा पा ले।

जिस तरह पृथ्वीतल पर भानु की महत्ता सिद्ध होती है उसी तरह इन्सान के जीवन में ज्ञान की उपयोगिता होती है। हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षिओंने स्थान स्थान पर ज्ञान की महत्ता को बतलाते हुए कहाँ कि अगर आकाश में सूर्य नहीं हो तो जीवन कितना भयावह बन जाता है, उसी तरह मनुष्य में ज्ञान नहीं हो तो वह इन्सान होते हुए भी पशु सदृश हो जाता है। इसलिए कहा भी है -

ज्ञानेन सदृशं नास्ति पवित्रं

ज्ञान के समान इस मनुष्य लोक में दुसरी कोई भी पवित्र वस्तु नहीं है। जिस



व्यक्ति के पास ज्ञान हो वह सभी स्थानपर पूजनीय होता है। जिस महापुरुष के पास आध्यात्मिक और पवित्र ज्ञान हो, वह महात्मा पूजनीय के साथ-साथ भी वन्दनीय बन जाता है। और उनके पथपर चलने के लिए इन्सान की आकांक्षा होती है। जिससे वह भी जीवन का दिव्य आनन्द प्राप्त करता है।

यहाँपर आपश्री के अन्तिम समय की एक घटना पवित्र ज्ञान की महत्ता को स्पष्ट करती है।

महाप्रयाण यात्रा के कुछ दिन पूर्व ५-६ दिन की घटना। नित्यक्रम के अनुसार प्रतिदिन आप नित्य पाठ हुए बिना आहार नहीं करते थे। जिस वक्त नित्य पाठ सुना था, उस वक्त संतिकरं स्तोत्र का पाठ सुना रहा था, उस समय मेरे मुह से 'सिरि' के स्थान पर 'सीरिं' ऐसा उच्चारण आया तो तुरन्त गुरुदेव श्रीने मुझे इशारा करके कहा कि यह गलत है किन्तु मेरे ख्याल में नही आया कि, गुरुदेव क्या फरमा रहे हैं। तब गुरुदेवश्री ने धीरे से फरमाया सिरी के स्थान पर सीरि ऐसा उच्चारण नहीं करना चाहिए। कितनी पाठ की शुद्धता। उम्र की ९२ में भी आपकी जिह्वा पर सरस्वती निवास करती थी। जहाँपर मान में पवित्रता होती है, वहाँ अन्तिम समय तक सरस्वती निवास करती है। अन्तिम समय तक आप ज्ञान साधना करते रहे। ऐसे ज्ञानयोगी को हमारा भावभीना वन्दन।





आचार्य सम्राट् सच्चे महापुरुष थे

■ श्री दिनेशमुनिजी म.

जीवन में अनेकों व्यक्तियों से मिलने का दर्शन करने का अवसर प्राप्त होता है, उनमें कितने ही व्यक्ति चलचित्र की तरह आते हैं और चले जाते हैं। उनकी स्मृति मानस-पटल पर स्थायी नहीं होती। पर कुछ व्यक्तियों का मिलन माधुर्य से लबालब भरा होता है। उनके दर्शन पवित्र और निर्मल होते हैं। प्रथम क्षण में ही मन को मुग्ध कर देते हैं। अन्तर्हृदय में गहरे उतर जाते हैं। मन मन्दिर में इस प्रकार आसीन हो जाते हैं जिनकी स्मृति मिटाये मिटती नहीं, भुलाये भुलती नहीं?

महामहिम राष्ट्रसन्त आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म. ऐसे ही महापुरुष थे। उनके दर्शन सन् १९७५ में महाराष्ट्र में करने का सौभाग्य मिला। परम श्रद्धेय उपाध्याय पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनिजी म. के साथ फिर सन् १९७९ में सिकन्दराबाद में और सन् १९८७ में अहमदनगर में वर्षावास काल में चरणों में रहने का अवसर मिला। उनकी अपार कृपा हमारे पर रही। उनका अपार वात्सल्य हमें प्राप्त हुआ। समय-समय पर अपने सन्निकट बिठाकर उन्होंने जो सद्‌शिक्षा हमें प्रदान की उसका स्मरण कर हृदय नत है।

आचार्य सम्राट् वस्तुतः महापुरुष थे। एक पाश्चात्य चिन्तक ने महापुरुष की परिभाषा लिखी है - किसी भी महापुरुष की महानता का पता लगाना है तो यह देखना चाहिए कि वह अपने छोटों के साथ कैसा व्यवहार करता है। प्रस्तुत कसौटी पर कसते हैं तो आचार्य सम्राट् सच्चे महापुरुष थे। वे हमारे जैसे लघु सन्तों से भी प्यार करते थे।

आचार्य प्रवर का सान्निध्य सुखकर था, हितकर था। भीष्म-ग्रीष्म ऋतु में चिलचिलाती धूप में कोई व्यक्ति घटादार, छायादार उपवन में पहुँच जाय तो उसे अपार आह्लाद होता है। वही स्थिति आचार्य प्रवर के चरणों में रहने में थी। आज हमारे सर से उनकी विमल छाया उठ गई है जिससे हमारा मानस खिन्न है, हृदय व्यथित है। भारी मन से उस महागुरु के चरणों में अनन्त आस्था के साथ श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ, और यह निवेदन करता हूँ कि हे महाप्रभो! हमें वह शक्ति दो जिससे हम आपके बताये हुए आदर्श पथ पर निरन्तर बढ़ते रहें। आपके नाम को रोशन करते रहें।

■ ■

- *हृदय की वक्रता अथवा कपट साधक की समस्त साधना और तपस्या को मिट्टी में मिला देता है।*
- *वक्र हृदय में धर्म के अंकुर नहीं जमते।*



मेरे श्रद्धा केन्द्र

■ श्री विशालऋषिजी म.

अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के महाप्राण राष्ट्रसंत परमश्रद्धेय आचार्य सम्राट १००८ श्री आनंदऋषिजी म.सा.ने. दि. २८ मार्च १९९२ शनिवार के दिन सायंकाल को ५-१५ पर इस संसार से बिदाई ली और वे मुक्त हो गए।

आचार्य सम्राट किमी एक संप्रदाय के या एक धर्म के ही नहीं, बल्कि सारी मानवजाति के महाप्राण थे। गुरुदेव जैन परम्परा के एक दैदीप्यमान नक्षत्र, श्रमण संघ के गौरवशाली महापुरुष एवं जन-जन के श्रद्धाकेन्द्र थे।

पूज्य आचार्य प्रवर की महिमा अपार, अनन्त एवं अतुलनीय है। श्रद्धा असीम है, शब्द सीमित हैं। मैं उनके विराट् एवं विशाल जीवन का वर्णन किस प्रकार करूं? गुरुवर का जीवन चन्द्रमा की तरह शीतल था और सूर्य के समान तेजस्वी था। गंगा के समान निर्मल और गुलाब की तरह सुगंधित था। भगवंत का जीवन एक बहु-रंगी गुलशन की तरह महकता था। उसमें गुणरूपी अनेक फूल महकते, मुस्कराते, खिलते हुए दूसरों के लिए खुशबू फैलाते थे। भारत सरकार ने आपश्री को 'राष्ट्रसंत' उपाधि से विभूषित किया था। आपश्री के महानिर्वाण से मानवजाति का चमकता हुआ सूर्य अस्त हो गया।

आचार्य श्रीजी विविध सद्गुणों के आगार थे। आपश्री समाज और संघ को आजीवन अमृत-पान कराते रहे। आचार्यश्रीजी के निर्वाण से आज हम सब अनाथ हो गए हैं। गुरुदेव श्रीजी से हमें अहर्निश ज्ञान तथा हितशिक्षा मिलती थी। सभी को समन्वय एवं मित्रता का बोध मिलता रहता था।

हे ऋषिप्रवर. हे मुनिप्रवर
हे संघ शिरोमणि तीर्थललाम।
पावन चरण-कमल में हम सब
करते कोटि कोटि प्रणाम।।

महासतीजी पारसकुंवरजी मेरी संसार पक्षीया नानी थीं। जब भी उनके दर्शन करने मैं जाता था। तब उनसे हितशिक्षा मिलती थी। संसार की असारता एवं त्याग का महत्त्व इन सब बातों को सुनकर अचानक मुझ में वैराग्य की भावना बढ़ गई। आचार्य श्रीजी का नाम कौन नहीं जानता था? १९७७ ई में पहली बार मैंने माताजी-पिताजी के साथ अहमदनगर में आचार्य श्रीजी के दर्शन किए। तब से मेरे विचारों ने मोड़ लिया। अब घर पर मन नहीं लगता था। मैंने माताजी-पिताजी से कहा कि मैं अहमदनगर में आचार्य भगवन्त के पास प्रतिक्रमण सीखने जा रहा हूँ। परन्तु माता-पिता ने मना कर दिया। इच्छा न होते हुए भी घर पर रहना पड़ा।



लेकिन वह रहना पहले से विपरीत था। अब मैं न तो किसीसे बात करता था और न भरपेट भोजन करता था। आखिर एक दिन माता-पिता ने कहा, प्रतिक्रमण सीखकर जल्दी आएगा तो जा सकता है।

दूसरे दिन सुबह माता-पिता को प्रणाम कर मैं सीधे अहमदनगर आ पहुँचा। यहाँ किसीसे विशेष परिचय नहीं था। दूसरे दिन पं. रत्न पूज्यश्री कुन्दनऋषिजी म.सा.को मैंने अपना अल्प परिचय दिया। उन्होंने कहानियों की किताब पढ़ने को दी। शाम के समय बिछाने-ओढ़ने की व्यवस्था कर दी। अगले दिन पूज्य कुन्दनऋषिजी म. मुझे आचार्य श्रीजी के पास ले गए। उन्होंने आचार्य श्रीजी से कहा यह लड़का चालीसगांव से आया है। आपकी सेवा में रहकर प्रतिक्रमण सीखना चाहता है। आचार्य श्रीजी ने सबसे पहले पूछा 'क्या तू अपने माता-पिता से पूछकर आया है?'' मैंने कहा, 'पहले तो उन्होंने मना किया था। बाद में बड़ी मुश्किल से संमति प्रदान की।' फिर गुरुदेव श्रीजी ने मेरे दाहिने हाथ की हस्तरेखा देखी और कहा- 'ठीक है। कल अच्छा दिन है। गुरुवार भी है।'

दूसरे दिन सवेरे ही गुरुदेव श्रीजी ने 'अरिहंतो मह देवो' का प्रथम पाठ दिया। साथ-साथ अर्थ भी बताते गए। इसी तरह थोडे ही दिनों में प्रतिक्रमण याद हो गया। कुछ दिन बाद पिताजी मुझे लेने आ गए। घर वापस जाने की मुझे इच्छा नहीं थी। परंतु आचार्य श्रीजी ने कहा-'ऐसा नहीं करना।' आपश्रीजी ने पिताजी को भी समझा दिया। तब पिताजी ने कहा, 'मैं तो इस विषय में बहुत रुचि रखता हूँ। मुझे धर्म के प्रति श्रद्धा है। पारसकुंवरजी म. हमारे ही परिवार में से हैं। इसके पश्चात् गुरुदेव श्रीजी ने मुझे मंगलिक सुना दी।

पिताजी के साथ घर पहुँचने पर माताजी ने कहा-'वर्धमान! नगर में इतने दिन क्या कर रहा था? इतने दिन क्यों लगाए? यहाँ मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती। अब तू दुकान संभाल, पिताजी की मदद कर। मैं थोडी देर मौन रहा। बाद में मैंने कहा 'माताजी मैं तुम्हें आचार्य श्रीजी के पास ले चलता हूँ। तू उनके दर्शन करेगी तो तुम्हारी तबीयत तभी ठीक हो जाएगी।' परंतु माताजी ने ना कर दिया। मैं दो-तीन दिन बाद घर में बिना पूछे नगर आ गया और वहाँ से पत्र भेज दिया। बडे भाई डॉक्टर मुझे पाँच-सात दिन बाद लेने आए। मैंने उनको आचार्य श्रीजी और अन्य संतों का दर्शन कराकर परिचय कराया। बड़े भाई के साथ घर वापिस पहुँचने पर माताजी ने, डॉ. भैया ने, सुरेश भैया ने, सुनीता बहन ने मुझे बहुत समझाया। मैं मौन रहा। फिर पिताजी ने कहा-''उसकी इच्छा ही है तो तू क्यों अंतराय डाल रही हैं? यह सुनकर माताजी चिढ़ गई इस बात को लेकर माताजी, पिताजी में अनबन हो जाने लगी।

कभी-कभी मैं माताजी को कहानियों की किताबें पढ़कर सुनाया करता था।

[illegible] लिए कह दिया।

पूज्य सम्मेलन के बाद आचार्य श्री अहमदनगर पधारे। उपाचार्य, युवाचार्य अन्य संत आचार्यश्रीजी के साथ नगर आए थे। १९८७ ई. में आचार्य श्रीजी का दीक्षा-अमृत महोत्सव था। ७५ वें दीक्षा-दिन के इस अवसर पर वरिष्ठ संतों ने निर्णय लिया कि इस प्रसंग पर अधिक से अधिक दीक्षाएँ संपन्न हों। वहाँ अनेक साध्वियाँ विराजमान थीं। उनके पास वैरागन बहनें बैठी हुई थीं। उनमें से एक वैरागन बहन की आज्ञा हो चुकी थी। मेरी आज्ञा की बात चल रही थी। उस समय पं. रत्न कुन्दनऋषिजी म.सा.ने पूज्य आचार्य श्रीजी की आज्ञा से तीन-चार प्रतिष्ठित व्यक्तियों को चालीसगांव [illegible] के समय आपको [illegible] आना होगा। आप स्थानक में [illegible] हम मांगलिक एवं आशीर्वाद देंगे। [illegible]जी म. ने कहा-'कोशिश करेंगे।' अब पूज्य आचार्य श्रीजी ने बहुत अच्छी तरह से माता-पिता को समझाया। बाद में [illegible]जी म. ने एक आज्ञापत्र तैयार किया और पूज्य आचार्य श्रीजी को पढ़कर सुनाया। मेरे माताजी-पिताजी को उसपर हस्ताक्षर करने को कहा। माताजी-पिताजी ने उसपर हस्ताक्षर किए। बाद में वह आज्ञापत्र पूज्य आचार्य श्रीजी के पास दिया गया। उसी समय जय-जयकार की ध्वनि गूंज उठी। कुल मिलाकर सात बहनें और दो भाई ऐसे नौ की संख्या हो गई।

अब दीक्षा का मुहूर्त, दीक्षा समय और अन्य तैयारियाँ शुरू हुई। माताजी ने कहा ''अब थोड़े दिन मेरे पास रहना'' मैं भी माताजी के साथ घर गया। पंद्रह दिन परिवारवालों के साथ रहा। दीक्षा तिथि से आठ दिन पहले मैं सब को साथ लेकर अहमदनगर पहुँचा। दि. २९ नवंबर



लेकिन वह रहना पहले से विपरीत था। अब मैं न तो किसीसे बात करता था और न भरपेट भोजन करता था। आखिर एक दिन माता-पिता ने कहा, प्रतिक्रमण सीखकर जल्दी आएगा तो जा सकता है।

दूसरे दिन सुबह माता-पिता को प्रणाम कर मैं सीधे अहमदनगर आ पहुँचा। यहाँ किसीसे विशेष परिचय नहीं था। दूसरे दिन पं. रत्न पूज्यश्री कुन्दनऋषिजी म.सा.को मैंने अपना अल्प परिचय दिया। उन्होंने कहानियों की किताब पढ़ने को दी। शाम के समय बिछाने-ओढ़ने की व्यवस्था कर दी। अगले दिन पूज्य कुन्दनऋषिजी म. मुझे आचार्य श्रीजी के पास ले गए। उन्होंने आचार्य श्रीजी से कहा यह लड़का चालीसगांव से आया है। आपकी सेवा में रहकर प्रतिक्रमण सीखना चाहता है। आचार्य श्रीजी ने सबसे पहले पूछा 'क्या तू अपने माता-पिता से पूछकर आया है?'' मैंने कहा, 'पहले तो उन्होंने मना किया था। बाद में बड़ी मुश्किल से संमति प्रदान की।' फिर गुरुदेव श्रीजी ने मेरे दाहिने हाथ की हस्तरेखा देखी और कहा- 'ठीक है। कल अच्छा दिन है। गुरुवार भी है।'

दूसरे दिन सवेरे ही गुरुदेव श्रीजी ने 'अरिहंतो मह देवो' का प्रथम पाठ दिया। साथ-साथ अर्थ भी बताते गए। इसी तरह थोडे ही दिनों में प्रतिक्रमण याद हो गया। कुछ दिन बाद पिताजी मुझे लेने आ गए। घर वापस जाने की मुझे इच्छा नहीं थी। परंतु आचार्य श्रीजी ने कहा-'ऐसा नहीं करना।' आपश्रीजी ने पिताजी को भी समझा दिया। तब पिताजी ने कहा, 'मैं तो इस विषय में बहुत रुचि रखता हूँ। मुझे धर्म के प्रति श्रद्धा है। पारसकुंवरजी म. हमारे ही परिवार में से हैं। इसके पश्चात् गुरुदेव श्रीजी ने मुझे मंगलिक सुना दी।

पिताजी के साथ घर पहुँचने पर माताजी ने कहा-'वर्धमान! नगर में इतने दिन क्या कर रहा था? इतने दिन क्यों लगाए? यहाँ मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती। अब तू दुकान संभाल, पिताजी की मदद कर। मैं थोडी देर मौन रहा। बाद में मैंने कहा 'माताजी मैं तुम्हें आचार्य श्रीजी के पास ले चलता हूँ। तू उनके दर्शन करेगी तो तुम्हारी तबीयत तभी ठीक हो जाएगी।' परंतु माताजी ने ना कर दिया। मैं दो-तीन दिन बाद घर में बिना पूछे नगर आ गया और वहाँ से पत्र भेज दिया। बडे भाई डॉक्टर मुझे पाँच-सात दिन बाद लेने आए। मैंने उनको आचार्य श्रीजी और अन्य संतों का दर्शन कराकर परिचय कराया। बड़े भाई के साथ घर वापिस पहुँचने पर माताजी ने, डॉ. भैया ने, सुरेश भैया ने, सुनीता बहन ने मुझे बहुत समझाया। मैं मौन रहा। फिर पिताजी ने कहा-''उसकी इच्छा ही है तो तू क्यों अंतराय डाल रही हैं? यह सुनकर माताजी चिढ़ गई इस बात को लेकर माताजी, पिताजी में अनबन हो जाने लगी।

कभी-कभी मैं माताजी को कहानियों की किताबें पढ़कर सुनाया करता था।

बीच-बीच में माताजी कहतीं- 'वर्धमान! तुझपर ऐसा कौन सा संकट आया है कि तू दीक्षा लेना चाहता है? मैंने कहा - 'माँ! मुझ पर कोई संकट नहीं आया है। यह संसार असार है' उसी समय सुमती एवं आत्माराम का संवाद सुनाया। घर पर भी मैं गरम पानी पीता था। चौविहार करता था, चप्पल जूते का त्याग था। माताजी ने सोचा - इसके दिमाग से दीक्षा का चक्कर निकालना चाहिए। वह मुझे राजस्थान जोधपुर में मासीजी के वहाँ लेकर गई। मासीजी का पूरा परिवार धार्मिक होने से उन्होंने मेरी दीक्षा की इच्छा का समर्थन ही किया। माताजी ने सुनीता के विवाह के बाद दीक्षा लेने को सहमति दिखाई। आठ-दस दिनों के बाद हम घर वापिस आए। मैं आचार्यश्रीजी के पास पूना में पढ़ने के लिए चल दिया।

पूना सम्मेलन के बाद आचार्य श्री अहमदनगर पधारे। उपाचार्य, युवाचार्य अन्य संत आचार्यश्रीजी के साथ नगर आए थे। १९८७ ई. में आचार्य श्रीजी का दीक्षा-अमृत महोत्सव था। ७५ वें दीक्षा-दिन के इस अवसर पर वरिष्ठ संतों ने निर्णय किया कि इस प्रसंग पर अधिक से अधिक दीक्षाएँ संपन्न हों। वहाँ अनेक साध्वियाँ विराजमान थीं। उनके पास वैरागन बहनें बैठी हुई थीं। उनमें से एक वैरागन बहन की आज्ञा हो चुकी थी। मेरी आज्ञा की बात चल रही थी। उस समय पं. रत्न कुन्दनऋषिजी म.सा.ने पूज्य आचार्य श्रीजी की आज्ञा से तीन-चार प्रतिष्ठित व्यक्तियों को चालीसगांव



भेजकर मेरे माताजी-पिताजी को लेकर आने का आदेश दिया। उसी दिन मेरे माता-पिता आ गए। दूसरे दिन मंत्रीजी म. ने उनसे बात की। उपाचार्य श्रीजी ने भी समझाया। परंतु माताजी की आँखों से निरंतर आसुओं की धारा बह रही थी। वे इस समय पूज्य आचार्य श्रीजी के समक्ष 'नहीं' भी कह न सकती थीं। मुझे और मंत्रीजी म. को मेरे माता-पिता ने पहले ही कह दिया था कि सुनीता की शादी के समय आपको चालीसगांव आना होगा। आप स्थानक में विराजना। हम मंगलिक एवं आशीर्वाद लेंगे। मंत्रीजी म. ने कहा-'कोशिश करेंगे।' अब पूज्य आचार्य श्रीजी ने बहुत अच्छी तरह से माता-पिता को समझाया। बाद में मंत्रीजी म. ने एक आज्ञापत्र तैयार किया और पूज्य आचार्य श्रीजी को पढ़कर सुनाया। मेरे माताजी-पिताजी को उसपर हस्ताक्षर करने को कहा। माताजी-पिताजी ने उसपर हस्ताक्षर किए। बाद में वह आज्ञापत्र पूज्य आचार्य श्रीजी के पास दिया गया। उसी समय जय-जयकार की ध्वनि गूंज उठी। कुल मिलाकर सात बहनें और दो भाई ऐसे नौ की संख्या हो गई।

अब दीक्षा का मुहूर्त, दीक्षा समय और अन्य तैयारियाँ शुरू हुईं। माताजी ने कहा "अब थोड़े दिन मेरे पास रहना" मैं भी माताजी के साथ घर गया। पंद्रह दिन परिवारवालों के साथ रहा। दीक्षा तिथि से आठ दिन पहले मैं सब को साथ लेकर अहमदनगर पहुँचा। दि. २९ नवंबर



१९८७ का सुवर्ण दिन उदित हुआ। उस दिन सवेरे पूज्य आचार्यश्रीजी ने मुझे दीक्षा विधि अपने मुखारविंद से कराई। उस दिन की याद मैं कदापि नहीं भूल सकता।

दीक्षा के बाद साढे चार साल तक पूज्य आचार्य श्रीजी के सानिध्य में मुझे सेवा का अवसर मिला। पूज्य आचार्य श्रीजी मुझे समय-समयपर हितशिक्षा देते रहते थे।

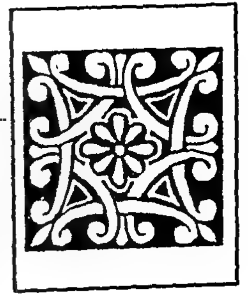
वृद्धावस्था के कारण पूज्य आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य नरम-गरम रहता था। दि. १७ मार्च १९९२ के दिन मैंने आचार्य श्रीजी के मुखारविन्द से २५० गाथाओं का स्वाध्याय एवं एक घंटा मौन के आजीवन पच्चखान लिए थे।

दि. २८ मार्च १९९२ के दिन सायं-काल को ठीक ५-१५ बजे पूज्य आचार्य श्रीजी का महानिर्वाण हुआ। श्रमण संघ के अनमोल रत्न हमारी आँखों से ओझल हो गए। आपश्रीजी के महानिर्वाण से संपूर्ण जैन तथा जैनेतर समाज की बड़ी भारी क्षति हो गई। हमें उनके गुणों का अनुसरण करना चाहिए। उनके उपदेशों को एवं शिक्षाओं को आत्मसात करना चाहिए। तभी हमारा श्रद्धांजलि मनाना सार्थक होगा।

"किश्तियाँ बह जाती हैं,
तूफान चले जाते हैं।
यादें रह जाती हैं,
इन्सान चले जाते हैं।"

■ ■

- *यदि साधक माया की ग्रंथि का भेदन नहीं करता है तो अनन्त बार उसे गर्भ में आना पड़ता है।*
- *जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ बढ़ता जाता है। लाभ ही लोभ को बढ़ाता है।*
- *लोभ के आते ही अनेक घर बरबाद हो जाते है।*
- *लोभ पर विजय प्राप्त करने वाले सन्त महात्मा सदा सुखी रहते हैं।*
- *जीवात्मा जब लोभ और लालच में फँस जाता है तब कहीं का नहीं रहता।*
- *इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।*
- *प्रत्येक प्राणी के हृदय में दूसरों के दुख को देखकर करुणा का उदय होना चाहिए तथा उसे अपनी शक्ति और योग्यतानुसार अभावग्रस्त प्राणी की सहायता करनी चाहिए।*
- *नियम, व्रत, त्याग, प्रत्याख्यान आदि कुछ तो करो, जिससे आत्मा का कल्याण हो सके।*



आनन्द विलाइ गयो...आक्रन्द छवाई गयो

■ श्री विवेकमुनि

श्रुत्वा च कीर्ति भवदीय दूरे...,
कर्णौ च तृप्तौ न च चक्षुषी मे
तयोर्विवादः परिहर्तु कामः।
समागतोऽहं तव दर्शनाय॥

जिन शासननी एक जीवंत गरिमा, एक जीवंत महिमा, जीवंत एक प्रतिमा, प्रकृष्ट प्रतिभाना स्वामी, समग्र सृष्टिनी प्रकृति पण जे विरल विभूतिना गुणगान यशोगान करती हती ते परम श्रद्धेय पुण्य श्लोक, परमाराध्य चरण, पूज्यपाद आचार्य सम्राट आनन्दऋषिजी म. सा. ना प्रथम वखतज पुण्यमय दर्शन थया ए घडीए सहसा सहज रीते पू. पंडितरत्न जिनशासन चंद्रमा गुरुदेवश्री भावचंद्रजी म. सा. ना मुखेथी आ श्लोकनो उद्गार थयो-ए मंगल दिवस हतो सने १९९१ नी २७ मी जान्युआरी. ए वखते जाणे केटलाय वर्षोनी अदम्य झंखना, अंतरनी एक आकांक्षा पूरी थई. आम तो एक सरखा नाम आ विश्वमां अनेकानेक व्यक्तिओना होय छे. पण केटलीक व्यक्तिना काम एवा होय छे के जेनुं नाम सांभळता ज देह रोमांचित थई जाय. तो ज्यारे साक्षात् ए प्रशममूर्तिना प्रणाम करता करता शुं थाय ए आलेखवा माटे तो सडसडाट चालती पेन के कविनी कल्पना पण थंभी जाय! जीवनना ए परम सौभाग्यनो कई रीते शब्दरूपे आकार आपवो ए मननी मोटी मुंझवण बनी जाय.

अहमदनगरना आनंद दरबारमां अनेक पूज्यवरो, श्रमण संघीय प्रवर्तक पू. श्री. रूपजी म. सा., सचिव म. श्री. कुंदनऋषिजी म. सा., प्रवीणऋषिजी म. सा. आदि अनेक संत-सतीजीओनी मंगल हाजरीमां पू. आचार्य भगवंतना प्रथम दर्शननी मनोकामना पूरी थई अने उपरोक्त संस्कृत सुभाषित पू. आचार्यश्रीए सांभळ्युं त्यारे तेओश्री पण तुरत ज अत्यंत प्रसन्न वदने बोली उठ्या :

अमृतं शिशिरे वह्निः,
अमृतं क्षीर भोजनम्।
अमृतं राजसम्मानं,
अमृतं प्रिय दर्शनम्॥

"वसुधैव कुटुम्बकम्" कह्युं त्यारे पूज्यश्रीना आ प्यारभर्या हृदयांगारथी अमारुं दिल अत्यंत अहोभाव पूज्यभावथी ममतानी ए महान मूर्तिने नमी पड्युं.

"मिलन पण मधुरुं बनी जाय त्यारे
परस्परना हैया भळी जाय ज्यारे।"

ए वखते पू. आनंद गुरुदेवमां अमने प्रत्यक्ष अमारा ज गुरुवर्योनुं संस्थापन दर्शन देखायुं. ए मंगलमूर्तिना मांगलिक दर्शने ज छ ए ठाणाओ ए त्यां ज अट्ठम तप करीने भावपुष्पो अर्पण करवानी भावना व्यक्त करी। उपस्थित दरेक शिष्यवृन्दे (आनंद दरबारना महामूला रत्नोए) अमने खूदज



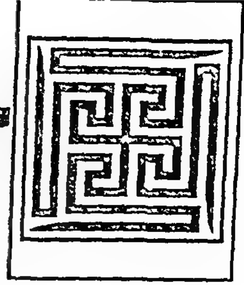
प्रेमपूर्वक आवकार्या, सत्कार्या. अमने पोतानामां समावी लीधा. फुलमां रसनी जेम, चंदनमां सुगंधनी जेम. दूधमां साखरनी जेम.

अनेक आत्माओनी स्वप्न सृष्टिना प्रेरणास्रोत हृदय सिंहासन पर विराजमान परमात्म स्वरूप पू. आनंदऋषिजी म. साहेबे अमने आग्रह करी आठ दिवसने बदले २० दिवस रोक्या. अखूट वात्सल्य वर्षा वरसावी अमने तरबतर कर्या. लगातार २० दिवसनो सतत सहवास, एमनी गोदनी मीठी हुंफ जाणे एक प्राणजीवन द्रष्य बनी गयुं, जेनो प्राण आनंदमय, तप आनंदमय, जप-संयम साधना समग्र जीवन ज आनंदमय एवा आनंदगुरुदेवनुं असली स्वरुप दर्शन करी अमारे कई रीते एमने ओळखवा ए वीसे य दिवस सुधी अमे मात्र विचारता जोता ज रह्या. कारण के एमनी वाणीमां अखूट माधुर्य, देहमां अनुपम सौन्दर्य अने आंतरिक ऐश्वर्य पण अमाप रस झरतुं हतुं. ९२ वर्षनी उंमरे पण पूज्यश्रीने गीत-संगीत स्वाध्यायनो खूब शोख. आटली जैफ वये कंठनी तकलीफ होवा छतांय केटलीक राग-रागिणीमां आम्रने स्वभाविक रीते जेम म्होर आवे तेम एमना होठ उपर गीत पद आवी जाय. आवो अनुभव रोज रात्रे थतां स्वाध्याय स्तवन गुंजनमां थयो. रोजे रोज अनेक अनुभवो-हकीकतो कहेता अने अनुग्रह पण कर्यो. एमनी साथे रह्या तो एमज लागतुं के पूज्यश्रीनी वाणीनी सादगी जीवनमां उतरी छे के जीवननी सादगीमां वाणी?

श्रमणसंघीय शिरताज पू. आनंदऋषिजी माटे कई कल्पना करवी. केटली कोशिश करवी के पोते केवा छे? चांद सितारा के सूरज जेवा छे? पण ए य उपमा फीट बेठी नहीं त्यारे हताश थईने एटलुं ज कहेवुं पड्युं के आनंद गुरुदेव बस आनंद जेवा ज छे.

अहमदनगरनी यात्रा करता अमने जाणे एक अद्‌भुत महायोगी युगपुरुष प्राप्त थया छे, एवो आत्मसंतोष थयो अने आनंद दरबारमां खूब मान-सन्मान पाम्या पछी चतुर्विध संघनी विशाल हाजरी- मां आखरे अमे त्यांथी आगळ वधवा विदाय लीधी त्यारे आचार्यश्रीए मंगल आशीर्वाद आपीने गुजराती भाषामां एम पण कह्युं के "फरी पाछा पधारजो" "वहेला आवजो" आ शब्दोए अनेकनी आँखों अने हृदय भीजावी दीधुं. अत्यंत हृदयद्रावक करुण दृश्य हतुं. विहारनी ए वसमी वेळानुं अने...अने...अमे फरीथी ए आनंद मूर्तिना दर्शन करीए ते पहेला ए बधुं ज मात्र स्मरण बनी गयुं, जे कदिय न भूली शकाय. आजे हवे आचार्यनी पादपूजा करवाने बदले मात्र गुण स्तवना प्रार्थना ज करवी रही. आजे हवे अहमदनगरमांथी खुद आचार्यदेवे ज सदाय ने माटे विदाय लई लीधा. हवे तो अहमदनगर जाणे भगवान राम वगरनी अयोध्या जेवी भासे.

"आनंद विलाई गयो! आक्रन्द छवाई गयो।" एक अलगारी ओलिया पुरुषनी जीवंत जीवन दर्शननी शताब्दि उजववाना मधुरा स्वप्नां अधुरा रह्यां. "आनंद दरबार...याद आता है बार बार" जे



बीजाना जीवन किताबनी प्रस्तावना करवाने बदले पोतानी ज स्तवना आत्मचिंतन करता हता, ए महात्मा पुरुषना हवे प्रत्यक्ष दर्शनने बदले अने हवे स्मरणांजलि करवानो वसमो वखत आव्यो छे.

अनेक भक्तोना कल्पतरु, कामकुंभ ने कामधेनु के जेमना दर्शनथी दरिद्रता-दुर्भाग्य दुःख दूर थतुं, माणस साचा अर्थमां नैतिक आध्यात्मिक श्रीमंत बनतो, ए आराध्य चरण आचार्यदेवेश पू. श्री आनंद ऋषिजी म. सा. माटे कलमथी कंडारवा कोई काव्य के लेख द्वारा कंई पण लखवुं ते घुघवता सागरने गागरमां भरवा जेवी के पछी अरुणोदयनी लालीने शीशीमां भरवा जेवी बालीश बाल चेष्टा छे. केम के ए कोई राजकीय नेता न हता. पण सौना लोकलाडीला गुरु हता. अनेक भव्य जीवोना प्रणेता हता. जेवी रीते रामना नामे पत्थर पण तरी जता, घनश्यामना नामे झेर पण अमृत बनी जतुं तेम आ दुनियामां एवो ज एक जादु हतो के अशक्य पण शक्य बनी जाय.

आनंद गुरुदेव ने प्रणामथी एना नामथी हकीकत छे के तेओ मात्र उदपेशक नहीं पण साचा उपासक हता. प्रचारक नही प्रभावक हता. एमनुं सतत इष्ट स्मरणमां रटण-रमण हतुं एटले सहज स्फूरण थतुं हतुं. परिणामे दरेकनी मनोकामना पूर्ण थती हती. साराये जैन समाजमां नही पण जन समाजमां तेओ वंदनीय पूजनीय-स्मरणीय-चमत्कारिक बाबा हता. पूज्यश्रीअे केटलायना सपनाने साकार कर्या छे. वेरान रणमां पण गुलझार खीलव्या छे. पाषाणने पण प्रतिमानो आकार आप्यो छे. एवा अद्‌भुत कलाकारनुं मूल्यांकन शुं करवुं?

पू. आचार्यश्री आनंदऋषिजी म. सा. मोटा मनना एक महामानव हता. एमना जीवन व्यवहारथीज जीवन जीववानी जाणे कला शीखवा मळती. एमना सामाजिक उपकारोने कई रीते याद करवा? जैन शासननी गरिमा वधारवा श्रमण संस्कृति ने एकज आकृतिमां दोरवा एमणे केटलुं महान बलिदान आप्युं के सत्ता माटे ज्यां साठं साठं होय सत्ता माटे मोटी गांठ पडे एने बदले एक वखत नही पण बब्बे वखत पूज्यश्रीए जेवी ऊंची पदवीनो स्वेच्छाए त्याग कर्यो, पदनो मद एमणे न चडवा दीधो. एवुं लागे के अनेकताने बदले समाजनी एकता ने एना करतांय वधारे पोतानामां एकत्वमां ज जाणे एक राग हतो. एटले ज एमणे क्षमता (पदवीनो) त्याग करी समताने धारण करी. भगवाने शास्त्रमां कह्युं छे तेम सन्ते पसन्ते उवसन्ते। पू. आ. भगवंत आंतर बाह्य रीते शान्त प्रशांत उपशांत हता. छतां पण पोताना प्रबळ पुन्य प्रभावे त्रीजी वखत आचार्य पदने पामेला पू. आनंदऋषिजी म. सा. ना शासनथी श्रमण संघनो वैभव खूब वध्यो हतो. सारा य हिन्दुस्तानमां एमनुं गौरव वध्युं हतुं. श्रमण संघना आ द्वितीय आचार्यश्रीना पगले।



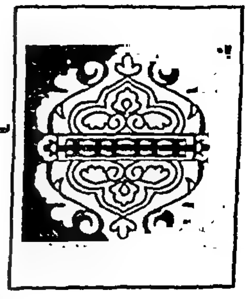
अने ए छतां आगळ एमना बाह्य जीवन वैभव देहनी कांति के संघनी क्रांतिने लंबाई पहोळाई मापवा करता एमना गेहनी आत्मानी कांतिने पामवानो आपणे प्रयत्न करवो जोइए. एमना नीजी जीवननुं उंडाण जोवुं जोइए. तो आनंद गुरुदेवना रूपने बदले स्वरूपनुं दर्शन स्पर्शन आपणने थाय.

समग्र जैन समाजमां सौथी वरिष्ठ पू. आचार्यश्रीनी वधती जती उंमरने लीधे तेओ थोडा अस्वस्थ रहेता होई केटलाक वर्षोथी तेओश्री अहमदनगर स्थिरवास बिराज्या हता. पण एमना पुनीत पगले नगर जाणे एक "आनंद यात्रा धाम" बन्युं हतुं. केमके आवनारा दशनार्थीओने त्यां परमात्माना ज दर्शन थता हता. अने अहमदनगर संघनी आगता-स्वागता व्यवस्था पण अनोखी हती. रोज हजारो लोको त्यां निःसंकोच रीते आवता. आ रीते आनंद ऋषिजी म. सा. अने अहमदनगर सौनुं आकर्षण केन्द्र बन्या हता.

छेल्ला केटलाक समयथी कथळती जती तबियत-अशाता वेदनीय कर्मनो उदय शारीरिक कोई पण परिषह तकलीफ बतावतो होय तो पण एमनुं अंतर तो सदा सर्वदा प्रसन्नकारी ज होय. एमनी आराधना-साधनाना सर्वसूरो एक महा-रागनी ज महेफिल रचाता हता. केम के संगीत तेमने प्रिय हतुं ने? सोऽहं...सोऽहं नी ज एक धुन स्वत्वनुं ज एक समरण ए स्फूरणनुं ज जाणे केम अवतरण न थयुं होय?

अमे हंमेशने माटे काया अने छायानी जेम आराध्य गुरुदेवनी तन-मन-प्राणथी सेवा सुश्रुषा करनार पू. बाबाजी महाराज अने जेना प्राण कहो के त्राण कहो ते सचिव म. श्री कुन्दनऋषि म. सा. तथा पू. आनंदगुरुदेवनी अंतिम श्वास सुधी साथे रही अनन्यभावे सेवा करनार पू. श्री. प्रवीणऋषिजी म. सा., पद्मऋषिजी म. सा., प्रशांतऋषिजी म. सा., महेन्द्रऋषिजी म. सा., आदर्शऋषिजी म. सा. आदि दरेक संतोए-शिष्योए मन-वचन-काया त्रणे योगथी अमूल्य एवी सेवा करी छे, जे खरेखर प्रशंसनीय छे "सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः" ए दुर्लभ सूत्रने जाणे आ विनीत शिष्योए बहु सुलभ बनावी दीधुं.

अलौकिक अने अनोखा एवा पूज्यपाद आचार्य सम्राटना जीवन कवनने जो स्थूल शब्दोमां ओळखवुं होय तो एटलुं ज लखी शकाय के अभ्यास- आत्मविश्वास अने अभिव्यक्तिनो त्रिवेणी संगम पवित्र तीर्थराज प्रयाग एटले आनंदऋषिजी म. सा.? विविध धर्मग्रंथोनुं शास्त्रोनुं उंडुं ज्ञान अढार भाषाना जाण - अभ्यासी, प्रभु भक्तिमां ज अनुरक्त अे ज साची शक्ति एवो आत्मविश्वास एमां ज चालतो श्वास अने भारतभरना पादविहारमां अनुभवनी अभिव्यक्ति ए विभूतिमां जोवा मळती. माटे ज तेओ ए हिन्दुस्ताननां दरेक प्रान्तो प्रदेशमां शहर के गामडाओमां अरे घर-घर मां प्रत्येक व्यक्तिनी अनहद चाहना मेळवी



हती. पूज्य आ. श्री मात्र वक्ता, लेखक के गायक न हता, श्रमण संघना अधिनायक ज न हता, अनेक जीवोना उद्धारक तारक उपकारक हता. एटले खरेखर तेओ पूजाने लायक हता.

हवे तो पू. आचार्य गुरुदेव सीमा रहित बन्या छे. अे सीमा रहित सीमामां एमना पाद चिह्नो आपणे क्यां शोधवा? महाविदेह क्षेत्रमां!!! खरेखर एमनो आत्मा अत्यारे सीमंधर स्वामीना देशमां बिराजीत हशे. उत्कृष्ट साधना, उत्कृष्ट पुण्य एमने त्यांन लई जाय तो बीजे क्यां लई जाय?

असीम साधना-उपासनाना उपासकना आ शब्द लेख स्मरणग्रंथमां तो मात्र एमनी एकाद अवस्था बे-चार गुणोनी छाया आवी शके. परंतु समग्र आनंदऋषिजीनो निःसीम आत्म वैभव तो क्यांथी आवी शके. आपणुं शुं गजु एमने शब्दोमां लखवा आलेखवानुं?

बस हवे तो आपणा माटे एमना पवित्र पाद कमलने बदले यादनी सुगंध ज रही छे. आनंदनी लहेरो शांत पडी गई छे. प्रेम प्रेरणा पुरुषार्थनुं झरणुं अनंत एवा सागरमां भळी गयुं छे. कृपाळु गुरुदेवने एटलुं ज कहिए-

तुं प्यारका सागर है।

तेरी इक बुन्द के प्यासे हम।

अंतमां आचार्यश्री को मेरा शत शत श्रद्धानत वन्दन है,

और धन्या पुण्या इस मरुभूमिका भी अभिनंदन है,

समता एकता का पुर जोर, जोश था जिनकी चेतना में,

सचमुच ऐसे महामानव की, पदरज भी चंदन है।



- *अशुभ कर्मों की गठरी विषय-कषायों की तीव्रता से ही अधिकाधिक भारी होती है और आत्मा को पुनः पुऩ जन्म-मरण करने के लिए बाध्य करती है।*
- *कर्मपाश में फँसा हुआ यह जीव जन्म-मरण करता हुआ दुःखों को भोगता है।*
- *विषय-कषायों को समूल नष्ट करने में एकमात्र धर्म ही सहायक हो सकता है।*
- *जीवन में सद्गुणों, सद्वृत्तियों तथा अविकारी भावों का लाना ही धर्म है। जीवन का मर्यादित एवं सुसंस्कृत होना ही धर्म है।*
- *सच्चा धर्म कषाय-विष का नाश करते हुए जीवन के लिए परम रसायन सिद्ध होता है।*
- *आत्मा का सच्चा और सहज स्वभाव है - शुद्ध, निष्कलंक और निर्विकार होकर अनन्त सौख्य प्रदान करने वाले लोक की ओर उठना तथा अपनी अनन्त शक्ति को जागृत करना।*



अतीत के दृश्य वर्तमान की आँखों में

■ साध्वी सुमतिजी

आमतौर पर कहा जाता है - सत्य का हृदय के साथ सम्बन्ध नहीं है। सत्य का पक्षधर हृदयशून्य होता है। किन्तु परमश्रद्धेय पूज्य गुरुदेव प्रज्ञामहर्षि राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमरमुनिजी इन आम बातों से बहुत भिन्न है वे प्रज्ञा के सत्य के हिमालय है तो उसी हिमालय से शिवत्व की अनुकम्पा की स्नेहकृपा की पावन जनकल्याणकारी गंगा भी बहती है।

- क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है?
- भ. महावीर ने गंगा महानदी क्यों पार की?
- ध्वनिवर्धक का प्रश्न हल क्यों नहीं होता?
- पर्युषण एक ऐतिहासिक समीक्षा
- कन्दमूल भक्ष्याभक्ष्य मीमांसा
- आज की महती अपेक्षा परिवार नियोजन

इत्यादि लेखमालाओं में सत्य को सर्वप्रथम बेताग-लपेट के प्रगट करने की उनकी प्रखरता अद्वितीय है, आसान नहीं है यह सब। सत्य की तुला पर अपना सर्वस्व उन्होंने अर्पण किया है। उनका भावपक्ष भी इतना ही प्रबल है कि सबको अपनी भावतुला में समत्वभाव से समा लेते है।

अजमेर, सादड़ी, भीनासर आदि के साधु-सम्मेलनों में जयपुर आदि के महान मुनिपुंगवो के सम्मिलित चातुर्मासों में श्रमणसंघ के निर्माण में और निर्माण के बाद भी लम्बे समय तक समय समय पर विवादों के वात्याचक्र उठते रहे और श्रद्धेय गुरुदेव की अन्तर्हृदय की विशालता ने हंमेशा समाप्त किया है। पूज्य आचार्य श्रीगणेशलालजी महाराज पू. आ. श्री हस्तीमलजी महाराज, बहुश्रुत पं. श्री समर्थमलजी महाराज आदि सभी परम्पराओं के सभी मुनिवरेण्य एवं आचार्यों के प्रति सम्मान आत्मीयता रही है। श्रमणसंघ से अलग होने पर भी सबसे बंने अपने उदात्त संबंधों को पूर्ववत रखते हुए भी आचार्य प्रवर आनंद ऋषिजी महाराज के प्रति सादर भावात्मक समर्थन अर्पित करते रहे।

केशलोच, माइक का प्रयोग आदि सैद्धान्तिक परिचर्या एवं आचार जो वास्तविक वैचारिक दूरी नहीं किन्तु मताग्रही परिस्थितियों के कारण पैदा हो गई थी। इस दूरी को पाटनेवाले महामनस्वी स्व. श्री उत्तमऋषिजी महाराज, स्नेहमूर्ति श्री मोतीऋषिजी महाराज आदि जैसे संघविस्तार एवं संघसंगठन में निस्वार्थ एवं निष्काम भाव से समर्पित सन्त उस समय आचार्यश्री जी की सेवा में नहीं थे, किन्तु पूज्य गुरुदेव के स्तुत्य वंदनीय प्रयास रहे कि भावनात्मक दूरी आज तक पैदा नहीं होने दी उन्होंने।

आचार्यश्री के परिनिर्वाण वीरायतन में सम्पन्न हुई श्रद्धाञ्जलि सभा में आचार्यश्री चंदनाजीने गद्‌गद हो कहा था "वैचारिक



विभिन्नता तो चिन्तनशीलता का विकास है, समृद्धि है। किन्तु अबोधता है कि लोग उसे हेतु बनाकर मन की दूरी बना लेते हैं। हमारी प्रजा के आलोक में वैचारिक विभिन्नता जहाँ है वहाँ भावनात्मक एकात्मकता का रूप विलक्षण है। हम सब भावभक्ति के साथ महामहिम आचार्यश्री जी के चरणों में प्रणत हैं।"

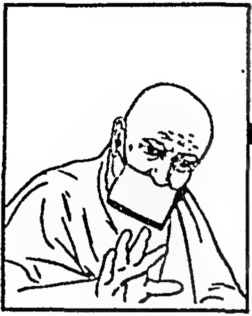
७/९/६८ में लिखा पूज्य गुरुदेव श्री के पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है जो सहज श्रद्धा प्रवाहित करता है-

'चन्दनाजी की आपके प्रति श्रद्धा है, आपके प्रति सहज निष्ठा भी है। वह तरुण है, साथ ही शिक्षित एवं विचारक भी है। अतः विचारों में नयापन अंगडाई ले रहा है और वह नयापन अपने में कोई बुरी चीज़ भी नहीं है। हाँ, यह ध्यान में रखने जैसा है कि यह नयापन कहीं सत्य की औचित्य की मर्यादा तो नहीं लांघ रहा है और इतना आपके द्वारा हो सकता है, आपके प्रति भक्ति उसे इतना बाँधे रख सकती है। इधर-उधर के लोगों या पत्रों के द्वारा यह होना कठिन लगता है। आपसे जब भी कभी प्रत्यक्ष में मिलन होगा, समक्ष में विचार चर्चा होगी, मुक्ताभाव से, तो मुझे विश्वास है आप के पितृहृदय का सहज स्नेह और उसकी पितृभाववक्ति अवश्य ही सहज अनुशासन का पथ प्रशस्त करेंगे दोनों मिलकर।'

साध्वीरत्न श्री सुमतिकुंवरजी महाराज के अपने उद्गार-

'जीवन जीवन है। (वह तेजगति से आगे की ओर गतिशील है किन्तु कुछ प्रसंग गति को इस तरह से मोड़ देते हैं कि एक तरफ आगे की यात्रा चल रही है तो साथ-साथ दूसरी स्मृति पटल पर अपने ही अतीत की यात्रा हो रही है। आज अतीत की यात्रा पर है मेरा मन। यात्रा ऐसे केन्द्र से हो रही है जो तप, संयम, सान, भक्ति और सत्कर्म का उद्गम स्थान है -

'स्मृति के सारे तार एक साथ झंकृत हो उठे हैं, अतीत का एकेक दृश्य तरंगित होता हुआ सामने आ रहा है - प्रथम दर्शन का वह असीम आनंद शब्दातीत है। पूना के समीपवर्ती वाघोली केसनंद में वह भव्य और दिव्य मूर्ति बोलाईवाड़े से पद यात्रा करती आ रही है। मन में मेरा सुदृढ निर्णय था कि हर हालत में दर्शन करने ही है। रास्ता दुर्गम था, वाहन की गति वहाँ नहीं थी, किन्तु श्रद्धा भक्ति से उमड़ते हृदय ने उसे सुगम कर दिया। दूर से धीरे धीरे प्रकट होती जब आचार्य सम्राट श्री आनंद ऋषिजी महाराज की वह आह्लाप्रद दिव्य प्रतिमा अपने अनुपम दो सक्षम सैनिक से तैनात, गुरुभाई श्री उत्तमऋषिजी महाराज, एवं श्री प्रेमऋषिजी महाराज दृष्टिगोचर हुई, भक्ति से आपूरित निर्मल मन पर वह दृश्य ज्यों का त्यों अंकित है। उन्हीं अलौकिक क्षणों में सम्यक्त्व दीक्षा मैंने पायी और प्रार्थनापूर्ण निवेदन किया "गुरु का महान पद सर्वांगेन आपको ही वहन करना है। केवल दीक्षा गुरु ही नहीं मेरे शिक्षा गुरु भी आप ही होंगे।" भक्त की प्रार्थना भगवान सुनते हैं इसे मानो सिद्ध



करने आचार्य भगवान अपने व्यस्त कार्यक्रम के वाबजूद घोड़नदी के निकट कोंडेगव्हाण पधारे जहाँ उल्लासपूर्ण भव्य दीक्षा समारोह सम्पन्न हुआ। उसी दीक्षासमारोह के साक्षी वटवृक्ष की सधन शीतल छाया में उस परमगुरु ने मुझे श्रुतदान दिया।

'मेरे इस परमाराध्य गुरु के साथ एवं उनके संकेतानुसार भारत के अनेकानेक प्रान्तों में प्रायः ४० हजार माईल का पदविहार हुआ, जिसमें हर पंथ, समुदाय, सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों के दर्शन, परिचय, मिलन का आनंद लाभ पाया। अवसर पाते ही मेरे दीक्षा गुरु शिक्षा का लाभ कराते रहे। उनकी कृपा ही थी कि मैं जोधपुर, बीकानेर, अजमेर के सम्मेलनों में सम्मिलित होने का सुलाभ पा सकी। स्मृति के झंकृत तार पूर्वेतिहास को भी झंकृत करते जा रहे हैं, प्रमाण दे रहे हैं कि श्रद्धाभक्ति की यह पावन गंगा अंतःसलिला कितनी गहरी तथा कितनी विस्मृत है। महाराष्ट्र में धर्मप्रभावना का सर्वप्रथम श्रेय श्री रामकुंवरजी महाराज को प्राप्त हुआ। बाल्यावस्था में उनके वैधव्य से चिन्तित माता-पिता ने मातवा, मेवाड़ तथा राजस्थान जाकर साधु-साध्वियों से महाराष्ट्र पधारने की विनंती की।

रामकुंवरजी के पिताश्री गंभीरमलजी लोढा एवं माता श्री चंपाबाई को सफलता मिली- कवि सम्राट श्री तिलोक ऋषिजी महाराज वि.सं.१९३६ में घोड़नदी महाराष्ट्र पधारे। वहाँ चार दीक्षाएँ हुईं - रामकुंवरनी अपनी माता के साथ, तथा आचार्यसम्राट् के गुरु श्री रत्नऋषिजी महाराज उनके पिताश्री स्वरुपऋषिजी महाराज।

'महाराष्ट्र में ज्ञान का दीप प्रज्वलित हुआ। श्री रत्नऋषिजी महाराज ने महाराष्ट्र के अपने परिभ्रमण में देखा कि अज्ञानता के अंधेरें में भटक रही है जनता, समयोचित निर्णय लेकर अनेक स्थानों पर शिक्षा संस्थान प्रारंभ किये। किसी पर ज्यादा भार न देकर प्रत्येक कमानेवाला प्रतिदिन केवल एक पैसा शिक्षा हेतु अर्पण करें। यही फण्ड 'पैसा फण्ड' कहलाया और इस फण्ड से आज भी बड़े बड़े शिक्षा संस्थान महाराष्ट्र में शिक्षा का ज्ञान का प्रकाश फैला रहे है।'

प्रथम पीढ़ी

श्री रत्नऋषिजी महाराज एवं श्री रामकुंवरजी महाराज का गुरुभाई एवं गुरुबहन का संबंध रहा।

दूसरी पीढ़ी

श्री रामकुंवरजी महाराज की २३ शिष्याओं में से केवल एक शिष्या शांतिकुंवरजी ने आगे शिष्य परंपरा का विस्तार किया, उनकी गुरुबहनें श्री जसकुंवरजी महाराज एवं तपोमूर्ति श्री रम्भाजी महाराज ने उनको साथ दिया और श्री रत्नऋषिजी महाराज के शिष्य हैं शांतमूर्ति आनन्ददाता श्री आनन्द ऋषिजी महाराज।

तीसरी पीढ़ी

श्री शांतिकुंवरजी महाराज की शिष्याओं में मेरी ज्येष्ठ गुरु बहन श्री

देवता महाराज एवं लघु गुरुबहन श्री अमृतकुंवरजी महाराज तथा आचार्य आनन्द ऋषिजी महाराज के शिष्य श्री प्रेमऋषिजी महाराज, श्री मोतीऋषिजी महाराज, श्री कुन्दन ऋषिजी महाराज आदि।

चौथी पीढ़ी

आचार्यसम्राट् आनन्दऋषिजी महाराज की दीक्षा श्री चंदना की नानी के पीहर से हुई। अतः नानीजी श्री आनन्दऋषिजी महाराज को अपना गुरुभाई मानती रहीं। गुरुभाई के चरणों में अपनी सेवा भक्ति समर्पित करती रही। उसी भक्तिभाव से आप्लावित तपस्विनी नानीजी वि. सं. १९४१ में वसन्त पंचमी के दिन शकुन्तला (श्री चन्दनाजी) को लेकर गुरुचरणों में पाथर्डी आये और "शुभस्य शीघ्रम्" सम्यक्त्व दीक्षा देकर उसी दिन से सम्यक् ज्ञान की आराधना प्रारंभ की। पदयात्रा की सारी कठिनाइयों के बावजूद ज्ञान की आराधना निरंतर चलती रही। यह क्रम दीक्षाग्रहण के पश्चात् यथावत् चलता रहा और अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा तो सर्वोपरि है। साथ में अनेक विषयों में आचार्यत्व भी प्राप्त किया।

शरीर संपदा से सम्पन्न, तेजस्वी, ओजस्वी इस सुन्दर बाला को देखकर प्रश्न सबके मन में उठता रहा कि क्या सच में यह कन्या दीक्षा लेगी?

चित्तौड़ की वीर भूमि, मालवा, गुलाबपुरा में मात्र १५ वर्ष की उम्र में शकुन्तला संयम पथ पर आरूढ हुई।



इतिहास इतिहास है। इतिहास ढोने के लिए नहीं, किन्तु उसके गौरव गरिमा के विस्तार के लिए है। यही बात लेकर खड़ी हुई तीसरी पीढ़ी आज तक परिवर्तन कर्त्ता या क्रान्तिकारी को पुष्पमालाएँ नहीं मिली हैं, लेकिन उसकी चिन्ता करे, वह होगा कोई ओर।

आचार्य चन्दना जी ने देखा अगर विचारों में कहीं तेज है, अगर युग को देखने की कहीं दृष्टि है अगर तर्क में कहीं धार है, अगर भावनाओं की गहराई को छू सकता है, तो वह एकमात्र हस्ती हैं 'प्रज्ञामहर्षि उपाध्याय कविश्री अमर मुनिजी महाराज। वे उनके चरणों में आगरा पधारीं। मानो सारे प्रश्न वहाँ विलीन हो गए और एक रचनात्मक कार्य 'वीरायतन' की योजना उन्हें वहाँ मिली। इसी योजना में अनंतानंत आशीर्वाद लेकर वे राजगृह पधारीं। समवसरण भूमि का वह पावन स्थान, भावनाओं से भरकर कलकत्ता दो चातुर्मास। उस योजना को जनता तक पहुँचाने हेतु किये और १९७३ में वे राजगृह में 'वीरायतन' को रूपायित करने पधारीं।

भौगोलिक हाल अत्यन्त बेहाल था। समवसरण भूमि आतंकित भूमि थी। जहाँ केवल अपराधकर्मियों का साम्राज्य था। कष्टों की कोई सीमारेषा नहीं थी। शायद उन्हें हर कष्ट उत्साह और पौरुष को बढ़ाने में ही मदद देता रहा। और आज वीरायतन धरती का स्वर्ग, दुःखियों का दुखहर्ता, अंधों के लिए चक्षु दाता, पंगुओं



के लिए गति दाता, अज्ञानियों का अज्ञानहर्ता, अधार्मिकों का धर्मस्थान सेवा साधना का सर्वोत्तम स्थान बन चुका है। आचार्य श्री चंदना जी का कहना है कि जो भी शुद्ध हो सका है, इस में आचार्य सम्राट् आनंदऋषि जी महाराज के आशीर्वाद हैं। हम सब के शिक्षा-दीक्षा के प्रदाता है। मेरे परिवार मेरी ज्येष्ठ गुरुबहन देवता महाराज, मेरी शिष्याओं में नवलकुंवरजी, श्री चंदनाजी, साधनाजी, यशाजी एवं नवलकुंवरजी की शिष्या श्री सूर्यप्रभा एवं चन्द्रप्रभा की भी दीक्षा आचार्यश्री जी के द्वारा ही प्राप्त हुई है।

आचार्य सम्राट् श्री आनंदऋषिजी प्रकृति से अति जहानु और उदार हैं। अपने गुरु 'रत्नऋषिजी महाराज' की परंपरा को आगे बढ़ाया है। उन्होंने "तिलोकरत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड" की स्थापना करके जैन शिक्षा का जो विस्तार किया है, वह वास्तव में अप्रतिम है। इसी तरह सेवा की दृष्टि से 'तिलोक परमार्थिक संस्था' का निर्माण कराया है जनकल्याण की दिशा में महनीय कार्य कर रहा है।

आचार्य सम्राट् का लक्ष्य प्रारम्भ से ही शिक्षा विस्तार का रहा है। मेरी सारी शिक्षा का श्रेय उन्हीं को है जिसमें मातृवत् सहायक रही हैं तपोमूर्ति श्री रम्भाजी महाराज। आचार्य सम्राट् ने अपने आचार्यत्व को फलितार्थ किया है। वृद्धावस्था तक पढ़ाकर सहस्राधिक श्रमण श्रमणी वर्ग को उन्होंने प्रेमपूर्वक धैर्य के साथ शिक्षा प्रदान की है, श्रुतज्ञान का अध्ययन कराया है।

स्थान की दूरी मन को दूर नहीं रख सकती। आचार्य सम्राट् की अस्वस्थता के समाचार आते ही मन खिन्न हो जाता, मुझे याद है कि एक दिन जब अहमदनगर के श्रद्धालु भक्त वीरायतन पहुँचे उन्होंने आचार्य सम्राट् के अस्वास्थ्य के समाचार दिये, तो मन आँखों की राह बहने लगा। चन्दनाजी ने जैसे ही आँसू देखे और जाना कि मेरा मन आचार्य सम्राट् के दर्शनों के लिए व्याकुल है तत्क्षण निर्णय ले लिया कि हर हालत में दर्शन कराने ही हैं। पू. गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनिजी महाराज ने आज्ञा दी कि मैं वाहन के द्वारा दर्शन करने जाऊँ। कमेटी के ना करने का सवाल ही नहीं था।

कुछ भ्रान्त रुढ़िवादिता के पक्षधरों के लिखित इन्कार मुझ तक पहुँचे कि मैं आचार्य सम्राट् के दर्शनों के लिए उनकी सेवा में उपस्थित न होऊँ। फिर भी मैं उनके दर्शनार्थ श्री चन्दनाजी और अन्य मेरी साध्वियों के साथ सन १९८६ में अहमदनगर पहुँची। कुछ समय तक वहाँ मेरा रुकना हुआ।

अहमदनगर में घोडनदी में जब जब आचार्य सम्राट् के कुछ बाध्य आवरण हटे और सहज भावस्थिति के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ - वही आत्मीयता, वही प्रेम, वही आशीर्वाद बरसता रहा जो प्रथम दर्शन में मुझे मिला था। उनका वह आशीर्वाद मेरे पूरे संघ को मिलता रहा है।

उनके अन्तिम समय में भी मुझे अगर समय पर समाचार मिल पाता तो मैं अन्तिम दर्शनों के लिए अवश्य पहुँचती और वही कृपा प्रसाद मुझे मिलता।

वस्तुतः दैहिक जगत का अब क्या विचार करना, आज उसकी कल्पना करना भी असंभव है। भाव जगत में महामहिम आचार्य सम्राट् आशीर्वादमुद्रा में हृदय सिंहासन पर विराजमान है।

'ॐ शान्ति'



■ ■

आनन्दधाम - 'आनन्द'

■ महासती डॉ. मंजुश्रीजी म.

बीसवीं सदी के प्रारंभ में जन्मा हुआ एक बालक पूरी बीसवीं सदी पर छा गया- यह विश्वसनीय तथ्य है, जिसे लाखों लोगों ने अपनी आँखों से देखा है, कानों से सुना है और आत्मा से अनुभव किया है। भक्तों के दिलों का सच तो यह है कि इस अनूठे व्यक्तित्व का प्रभाव आने वाली सहस्राब्दियों में भी अक्षुण्ण और अमिट रहेगा। इतिहास उसे अपने जीवित रहने तक बार-बार दोहराता रहेगा।

सन १९०१ ई. में वह जब पैदा हुआ था, तो नेमिचन्द्र नामक सामान्य बालक था, जो अपनी महत्त्वाकांक्षा, धैर्य, दृढ़ता, साहस, मनोबल, त्याग, तपस्या, परोपकार, आदि गुणों के कारण सम्मान्य स्थिति के सोपानों पर उत्तरोत्तर चढ़ते-चढ़ते जीवन की संध्या आने से पहले शिखर पर पहुँच गया।

उस प्रज्ञापुरुष के दर्शन मेरे चर्म-चक्षुओं ने अनेकों बार किये, अपने पलक-संपुटों में उसकी तेजोद्दीप्त आभा को घूंट-घूंट पीकर, जी भर कर तृप्ति का अनुभव करते हुए अपने भीतर समाहित कर लेने का प्रयत्न किया। मेरे अन्तर्नयनों ने उसके विराट् गंगाजलीय व्यक्तित्व को अपनी छोटी सी गागर में भर कर सदा के लिये सुरक्षित रख लेने का प्रयास किया। मेरे हाथ उसके चरण-स्पर्श को लालायित रहते थे, तो मस्तक श्रद्धा से अभिभूत होकर झुक-झुक जाता था और बुद्धि उसके गुणानुवाद कर स्वयं को कृतार्थ मानती थी।

उसका कभी मुखर और कभी मौन आमन्त्रण पाकर मेरे कदम उसी की दिशा में भागे चले जाते थे। अभी अभी ८ फरवरी १९९२ को उसके श्रीमुख से संपन्न हुई कुमारी कविता रमणलालजी लुंकड़ की जैन संन्यास दीक्षा उसी के आमन्त्रण का प्रतिफलन है। परम पवित्र भाव-तरंगों से स्नात, शांत, गंभीर वातावरण में जब उसने दीक्षा मंत्र दिया तो मानो धरती पर स्वर्ग की दिव्यता और भव्यता अवतरित हो गयी थी। आज भी उस क्षण का स्मरणीय



आनन्द रोम-राजी को पुलकित कर देता है। (यह दीक्षा उसके मुखारविंद से होनेवाली अंतिम दीक्षा थी।)

उस प्रभु के दरबार में बैठकर दर्शन भक्ति, श्रवणभक्ति करते समय, हर रंग में उसका ही नजारा देखने की, दिखाई देने की अनिर्वचनीय अनुभूति को बस कबीर के शब्दों में ही अभिव्यक्ति दी जा सकती है -

''लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।''

उस सर्वातिशायी देवता को अपने हृदय-सिंहासन पर विराजमान करने की उत्कंठा लिये भक्तों की भीड़ समद्र की लहरों के समान उमड़ती-घुमड़ती आया करती थी। उसके मुख की मुस्कान और वरद-हस्त को स्वीकृति का लक्षण मान कर, उस परम देवता को अपने हृदय मंदिर से जाने नहीं देने का संकल्प लेकर लौटती थी।

उस दानवीर के द्वार पर आया हुआ कोई भी भक्त कभी खाली हाथ नहीं लौटा, अपितु आशीर्वादों से झोली भर कर ही लौटा। मलकापुर से जयपुर (वाया अहमदनगर) की हमारी यह १६०० कि. मि. पदयात्रा उसी के आशीर्वाद से हो रही है। सुदीर्घ मार्ग की भीषण कठिनाइयों पर विजय प्राप्ति के अमोघ अस्त्र मनोबल को बनाये रखने के लिये हम पर उसका आशीष सहस्र-सहस्र धाराओं में बरसा है।

एक मिनिट में लाखों का वारा-न्यारा करने वाले भक्त, उस मानवता की प्रति मूर्ति का एक इशारा पाते ही लाखों का त्याग करके, लाखों दीन-दुःखियों, अनाश्रितों, विद्यार्थियों के जीवन में खुशहाली का संचार कर देते थे।

उस धर्मवीर ने अपने जीवन में धर्म को देखा, जाना, परखा और जिया। आदर्शवाद के गगन में वायवीय उड़ान भरने की, चांद की मिट्टी को परखने की अपेक्षा उसे जीवन के धरातल पर अपनी जड़ें जमाने में, जीवन की मिट्टी को संवारने में अधिक विश्वास था।

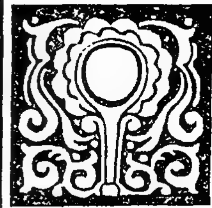
जगतो विजेता के रूप में ख्याति प्राप्त उस मनोविजेता ने अपने अंतरशत्रुओं पर विजय पाने के साथ-साथ बाह्य जगत में प्रतिकूल व्यक्तियों और प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय पाने में भी अद्भुत कौशल संपादन किया था।

जीवन को धन्य बनाने वाले उस जीवन्तता के धनी ने मृत्यु को भी धन्यता के साथ ही शांति प्रदान की। मृत्यु ने चाहा था उसे मारना, लेकिन न मार सकी, आज भी वह हमारे अन्तःकरण में जीवित है। उसका धवलयश शाश्वत काल तक भक्तों को आह्लादित करने में समर्थ है।

उस आनन्द मूर्ति आनन्द के आनन्द सरोवर में अवगाहन कर आनन्द प्राप्ति की अभीप्सा लिये आनन्द विभोर होकर मेरा नमन!

''आनन्द ही आनन्द है,
आनन्द की कमी नहीं।
आनन्द की सम्प्राप्ति की,
है साधना आनन्द ही।।''

■ ■



दीप स्तंभ - पू. आचार्य भगवन !

■ साध्वी प्रमोदसुधाजी

पुष्प स्वयं सुंदर है, उसे सुंदरता का बाना पहनाने की आवश्यकता नहीं होती। पुष्प के सौंदर्य का वर्णन नहीं करना पड़ता न ही उसकी याद में स्मृतिधाम बनाने पडते हैं। फूल से प्रसारित सुवास ही उसका जीवन और दर्शन बन जाती है। उसे चाह नहीं होती कि, कोई उसके पास आए, उसकी तथा उसके महक की प्रशंसा करे। फूल की सुवास को संग्रहीत करने कलम - कापी या कॅमेरा सक्षम नहीं है। न ही लेख-संगीत या शायरी........

ऐसे ही जिनशासन उपवन के एक सौरभमय पुष्प थे हमारे पूज्यवर! जिनकी संयम-सुवास पर, जीवन खुशबू पर, साधना सौरभ पर जनसाधारण सश्रद्धा-सभक्ति - सहज दीवाना है।......

पू. गुरुदेव का जीवन काँटों के बीच गुलाब ही था। इस सुंदर गुलाब ने काँटे अर्थात् कठिनाइयों को सह कर अपना जीवन प्रभुचरणों में अर्पित कर दिया था। इस गुलाब ने अपने जीवन की सौरभ न केवल महाराष्ट्र मे ही बल्कि संपूर्ण भारत में फैलाई।

खान में होनेवाले हीरे को जब संयोग वा सहयोग मिलता है तभी वह अपने तेज से दुनिया की आँखों को चौंधिया सकता है। आनंद स्वर्ण को भी रत्न गुरु का संयोग मिला और ऋषि आनंद का तेज वृद्धिंगत हो गया। संयम - ग्रहण करने के बाद पूज्यवर ने ३ लक्ष बनाये।

संयम साधना - ज्ञान साधना - गुरु सेवा, लक्ष्य संप्राप्ति में पूज्यवर पूर्णतः सफल रहे। अपने श्रम पर, बल पर ही आपने अपने जीवन का विकास किया। 'आप मन से सरल, बुद्धि से प्रखर, भावना से भावुक, विचार से दार्शनिक, हृदय से श्रद्धाशील प्रतिमा से तर्कशील, जीवन से विकासशील साधक थे।' मुखमुद्रा मृदुल थी क्यों कि कभी किंसी के साथ कठोर वाणी का प्रयोग नहीं करते। वे सहिष्णु थे क्यों कि कभी अपनी आलोचनाओं से परेशान नही होते। वे अपने मंतव्य पर सदा निर्भय होकर आगे बढते थे। लौटना उन्होंने कभी सीखा ही नहीं था।

आपका जीवन सदा मंगलमय रहा। एक सजग-सचेत-सतेज विचारक आपश्री रहे। जीवन को तेजस्वी बनाने आप एक सूत्र देते है जो आन लो उस पर मजबूत बने रहो। उसमें ही तुम्हारी शान है। यही जीवन का तत्त्व है! इसी तरह निराश व्यक्ति को आशा एवं उल्हास की प्रेरणा देते थे। आपका प्रत्यक्ष अस्तित्व सभी के तापों का हरन करता था। आपके दर्शन से तनाव-ग्रस्त मानव को नवीन शांति का अनुभव होता था।

आपने विनय को जीवन का मूलमंत्र



माना, गुरुआज्ञा को धर्म की आधारशिला, जिज्ञासा को संयम की शिखा, गुरुवर के विधि-निषेधपरक संकेत सूत्रों में अपना सारा चित्त केंद्रित किया।

ऐसे महान-मनस्वी पूज्यवर के पार्थिव चमन का अवसान तो नितांत निश्चित हो चुका है लेकिन आविष्कृत कृतित्व चमन जन-जन के सरोवर में सश्रद्ध चमक रहा है। इस ज्वलित चिराग के आलोक को हृदयकोष में सुरक्षित रखा है।

ऐसे पूज्यवर के सद्जीवन की किताब के पृष्ठों को हम पलटते रहें, पढते रहें और यथावश्यक प्रेरणा प्राप्त करते रहें। इस कार्य को क्रियान्वित करना ही सही अर्थ मे गुरु-चरण में श्रद्धा सुमन अर्पित करना होगा।

हे अनंत उपकारी गुरुदेव! आपके चरणों में यही प्रार्थना है कि हमारी श्रद्धा और भक्ति भरे यह नन्हे नन्हे दीप आपके आशीर्वाद का स्नेह पाकर जलते रहें चाहे कितनी ही आँधी आए आपके नाम को उज्ज्वल करते रहेंगे! ■ ■

निर्मल ज्योतिपुञ्ज आचार्य प्रवर

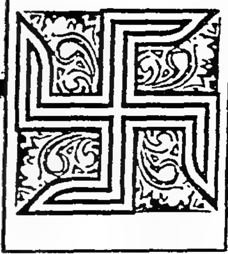
■ साध्वी डॉ. प्रमोदकुंवरजी



निर्मल अनन्त आंकाश में जब इन्द्रधनुष तनता है तब उसके सौन्दर्य की अनुभूति तो की जा सकती है किन्तु उसे शब्दों में प्रकट करना संभव नहीं होता है। उसी प्रकार आचार्य देव के व्यक्तित्त्व का चित्रण शब्दों में संभव नहीं है, वह तो मात्र अनुभूति का विषय है, किन्तु अनुभूति के प्रकटीकरण के लिए शब्दों का सहारा तो लेना ही पड़ता है। शब्द हमें आभास तो देते हैं, किन्तु वे अनुभूति की पूर्णता नहीं दे सकते। आचार्य श्री के व्यक्तित्त्व की अनुभूति तो उन हजारों हजार व्यक्तियों की अपनी थाती बन चुकी है, जिन्होंने उनके सान्निध्य को प्राप्त किया। भावी पीढ़ी को वह अनुभूति तो नहीं दे सकते हैं, फिर भी शब्दों के माध्यम से उनके व्यक्तित्त्व के एक शब्दचित्र अवश्य खड़ा कर सकते हैं जिसे पढ़कर उनकी अनुभूति का अहसास अवश्य कर सकेंगे।

१) ज्ञान और कर्म का संयोग

आचार्य श्री का व्यक्तित्त्व ज्ञान और कर्म का एक संगम स्थल था। आगम वचन है कि "विज्जा चरण पमोक्खो" अर्थात् न अकेला ज्ञान और न अकेली क्रिया व्यक्तित्त्व को पूर्णता दे सकती है।" इसीलिए सूत्रकृतांग में कहा गया है कि "ज्ञान और क्रिया के संयोग से ही मुक्ति होती है।" केवल ज्ञान का बोझ ढोने वाला उस पंगु के समान होता है जो मार्ग को देखकर भी चल नहीं पाता और केवल



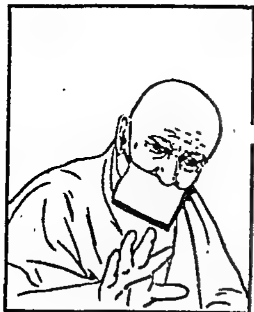
क्रिया को करने वाला उस अन्धे के समान है, जो चलकर भी लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता। यही कारण था कि आचार्य श्री ने अपने जीवन में सदैव ज्ञान और क्रिया के समन्वय पर बल दिया और समाज को भी उसी समन्वय की दिशा में प्रेरित किया। आगमों और शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करके भी वे मात्र ज्ञानी या उपदेशक नहीं बनें, अपितु उन्होंने उस ज्ञान को अपने जीवन में स्वयं जीया। वे विचार के क्षेत्र में जितने उदार रहे आचार के क्षेत्र में उतने ही सजग भी। जहाँ एक ओर उन्होंने समाज में ज्ञान की गंगा प्रवाहित करने के लिए अनेक विद्यामन्दिरों की स्थापना की वही उन्होंने साधना के केन्द्र भी बनाये। अपने श्रम से प्राप्त उस अपार ज्ञान राशि को वे सन्त सतियों और जिज्ञासुओं के अध्ययन अध्यापन कार्य के माध्यम में सदैव ही वितरित करते रहे। यदि कोई भी ज्ञान-पिपासु उनके पास आता, तो वे अपने शरीर और स्वास्थ्य की परवाह किये बिना ही उसकी ज्ञान-पिपासा को शान्त करने का अथक प्रयास करते थे। अध्ययन अध्यापन की रुचि ऐसी थी कि जब वे उसमें निमग्न होते थे तब उन्हें समस्त बाह्य बाधाएँ अप्रभावित रखती थी।

२) वाणी विवेक और विचार संयम के तीर्थराज

जिस प्रकार प्रयागराज में गंगा यमुना संगमित होकर भी अपनी मर्यादाओं को बनाए रखती हैं। उसी प्रकार आचार्य श्री के जीवन में विचार का प्रवाह वाणी के संयम की मर्यादा में हंमेशा आबद्ध रहता था। सीमित और संयमित वचन व्यवहार उनके व्यक्तित्त्व की विशिष्टता थी। अत्यन्त अल्पभाषी होकर भी उनके जो शब्द निकलते थे वे श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श करते थे। उनकी वाणी में कृत्रिमता का पूर्ण अभाव होता था। वे बहुत ही नपातुला बोलते थे। निरर्थक शब्द व्यवहार उन्हें कभी भी पसन्द नहीं था। यही कारण था कि उनके शब्दों का चिरस्थायी प्रभाव होता था।

३) सरलता और सहजता की प्रतिमूर्ति

(गुरुदेव आचार्य श्री का जीवन सरल और सहज था। वे अक्सर कहा करते थे) कि "जसा बुलावा तसा चलावा" अर्थात् (जैसा कहो वैसा करो। और जैसा करो वैसा कहो। आज के इस युग में मानव व्यक्तित्त्व छल और छद्म से भर गया है। दोहरी जीवन शैली हमारे जीवन की अंग बन गई है। इस विषम परिस्थिति में ही हम आचार्य श्री के इस महान गुण की मूल्यवत्ता को सम्यक् प्रकार से आंक सकते हैं। आज जीवन की सरलता और सहजता हम से लुप्त होती जा रही है चाहे राजनेता हो या धार्मिक। सभी आज दोहरा जीवन जीने को बाध्य है। कुछ परिस्थितिगत विशेषताएं और कुछ अपने को ऊंचा और श्रेष्ठ दिखाने की होड़ में हम इस दिशा में बहे चले जा रहे हैं किन्तु इतना निश्चित है कि जब तक जीवन में सहजता नहीं आती तब तक तनावों से मुक्ति भी संभव नहीं।



और जब तक तनावों से मुक्ति नहीं तब तक आध्यात्मिक शान्ति भी नहीं। आचार्य श्री के चेहरे पर शान्ति सदैव अठखेलियाँ करती थी उसका कारण यही था कि उनका जीवन अन्दर से सरल और सहज था। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो व्यक्ति अन्दर से जितना सरल और सहज होता है उसका व्यक्तित्त्व उतना ही भव्य और आकर्षक होता है। आचार्य प्रवर की यह सरलता सदैव ही उनके शान्त मुखमण्डल से प्रकट होती थी।

४) समता विभूति

अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ प्रत्येक के जीवन का अंग होती है चाहे राजा हो या रंक, साधु हो या गृहस्थ सबके जीवन में अनुकूल और प्रतिकूल अवसर तो आते ही हैं। वस्तुतः वही व्यक्तित्त्व महान होता है, जो इन परिस्थितियों में अपने को विचलित नहीं होने देता है। आचार्य श्री का जीवन सदैव ही इस प्रकार की समता से ओतप्रोत रहा है। उन्होंने प्रतिष्ठा और सम्मान के कलश भी उसी समता से पीये जिस समता से अपमान और तिरस्कार के घूंट। श्रमण संघ के संचालन में उनके जीवन में ऐसे अनेक अवसर आये जब उन्हें मान और अपमान दोनों को पीना पड़ा। आलोचना और प्रत्यालोचना भी हुई तो जय जयकार भी हुई किन्तु दोनों में वे अविचलित बने रहे। अपने विरोधी का भी उन्होंने उसी सहजता से स्वागत किया जिस तरह अपने प्रशंसकों का। धनी और निर्धन दोनों ही प्रकार के अपने भक्तों को वे सदैव ही उसी समता रस का पान कराते रहे। व्यक्तिगत रूप में कभी उन्होंने अपने निर्धन भक्त की अवहेलना करना पसन्द नहीं किया, यह उनके महान व्यक्तित्त्व का सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण गुण था। वस्तुतः वे गीता की भाषा में "स्थितप्रज्ञ" थे समता के सुमेरू थे, जिसे बाह्य अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ कभी भी विचलित नहीं कर पाईं। उनके जीवन में हंमेशा परिस्थितियाँ ही हारीं वे कभी नहीं हारे ऐसे आत्म विजेता को मैं शत शत वन्दन करती हूँ। ■ ■

- *मन के भावों से ही आत्मा बँधती है और उन्हीं से मुक्त भी होती है।*
- *प्राणी उसी अवस्था में मुक्त हो सकेगा जबकि उसकी आत्मा सांसारिक वासनाओं और क्रियाकाण्डों को ही धर्म समझने वाली अज्ञानता से मुक्त रहेगी।*
- *हृदय की अज्ञान-ग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष कहा जाता है।*
- *कषायों का परित्याग करने पर ही संसार को घटाने वाली प्रवृत्तियों का आविर्भाव होता है तथा कर्मों का आस्रव रुकता है। इसे ही धर्म नाम की संज्ञा दी जाती है।*



आचार्य प्रवर धर्म संघ के प्राण थे

■ महासतीजी श्री पुष्पवतीजी

महामहिम राष्ट्र सन्त आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म. के स्वर्गवास के समाचारों को सुनकर हृदय म्लान हो गया, मन व्यथित हो उठा। कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ। आचार्य सम्राट् हमारे धर्म संघ के प्राण थे। उनका अद्भुत व्यक्तित्व और कृतित्व जन-जन के लिए प्रेरणा का स्रोत था। वे ऐसे अजात शत्रु थे। किसी के प्रति उनके अन्तर्मानस में द्वेष बुद्धि नहीं थी। वे सच्चे समतायोगी थे।

एक कहावत है कि दूर से पहाड़ सुहावने लगते हैं। पर सन्निकट जाने पर वे उतने सुहावने नहीं लगते। महापुरुषों की अद्भुत विशेषता है कि वे जितने दूर से सुहावने लगते हैं उससे भी अधिक वे सन्निकट से सुहावने लगते हैं। मैंने आचार्य सम्राट् के दर्शन किये। उनके चरणारविन्दों में वर्षावास करने का भी सौभाग्य मिला। मैं जब भी उनके चरणों में पहुँची अपार वात्सल्य प्राप्त होता रहा। वे अपनी मधुर शिक्षाएँ सदा प्रदान करते रहे। मैंने यह अनुभव किया कि वे कभी भी निरर्थक वार्तालाप नहीं करते थे। कभी वे आगमों के रहस्य बताते तो कभी संस्कृत साहित्य की सूक्तियाँ और युक्तियाँ बताते। कभी संगीत के संबंध में फरमाते तो मराठी के अभंग सुनाते। आचार्य प्रवर का स्वरमाधुर्य बहुत ही गजब का था। वे लयबद्ध संगीत की स्वर लहरियाँ छेड़ते तो सुनकर मंत्रमुग्ध बन जाते। वृद्धावस्था में भी उनका स्वरमाधुर्य और लयबद्धता श्रवणीय थी।

आचार्य प्रवर के दर्शनों का सौभाग्य जीवन में अनेकों बार मिला। जब भी मिले तब उनकी अपार कृपा दृष्टि को पाकर मैं अपने आपको धन्य-धन्य अनुभव करने लगी। मैं बहुत ही सौभाग्यशालिनी हूँ कि आपश्री ने अपना उत्तराधिकारी मेरे लघुभ्राता देवेन्द्र मुनिजी को बनाया। इस कारण भी आपकी अपार कृपा मेरे पर रही। सन १९८७ का यशस्वी वर्षावास अहमदनगर में हुआ। उस वर्षावास में मैं प्रतिदिन आपके दर्शनों के लिए जाती। आपके चरणों में बैठती। आपका आभामण्डल इतना दिव्य और भव्य था कि सन्निकट बैठने से ही अपार आनन्द की अनुभूति होती थी। मैंने यह भी अनुभव किया कि आपके सान्निध्य में मन में उठते हुए अनेक प्रश्नों का समाधान हो जाता था।

महापुरुषों का पवित्र जीवन कस्तूरी की तरह सुगन्धित होता है। कस्तूरी जहाँ पर पड़ी रहती है वहाँ पर सुगन्ध रहती है। और उस स्थान से हटाने पर भी वहाँ सुगन्ध रहती है। वैसे ही महापुरुष जब तक जीवित रहते हैं तब तक उनके पवित्र चरित्र की सौरभ चारों ओर फैलती ही है।



किन्तु देह त्याग के बाद भी उनकी भीनी-भीनी सौरभ चारों ओर महकती रहती है। उनका मधुर मनोहारी व्यक्तित्व हमारे हृदयों में बसा है। उनका हमारे ऊपर अनन्त उपकार है। उन्होंने श्रमण संघ का संगठन किया। आध्यात्मिक प्रेरणाएँ प्रदान कीं। जन-जन में धार्मिक शिक्षा का प्रचार किया। लोक सेवा के मंगलमय कार्य किये। उनमें ऐसी विरल विशेषताएँ थीं जो हमें आज भी अभिभूत करती हैं। उनमें बालहृदय की सरलता, विनम्रता, वाणी की मधुरता का ऐसा भावभीना तरीका था जिससे पराया व्यक्ति भी कुछ ही क्षणों में अपना बन जाता था। गुणज्ञता और गुणवत्ता का ऐसा दुर्लभ संयोग उनके जीवन में था जो हर व्यक्ति में देखने को नहीं मिलता। ऐसे महागुरु के चरणों में मैं अपनी अनन्त आस्था समर्पित करती हूँ।

■ ■

स्मृति सुगंध

■ महासतीजी श्री सुशीलकुंवरजी

'इस भूमि पर सैंकड़ों फूल खिलते हैं, पर कुछ फूलों की खुशबू दिल दिमाग पर अमिट रूप से छा जाती है। वैसे ही परम श्रद्धेय गुरुदेव के सुखद सान्निध्य में बिताए मधुर क्षण एवं प्रेरक प्रसंग रूप स्मृति सुगंध स्मृति पटल पर सदैव अंकित है। वह सुगंध आज भी उतनी ही ताजी है जितनी उस क्षण अनुभूत की थी।'

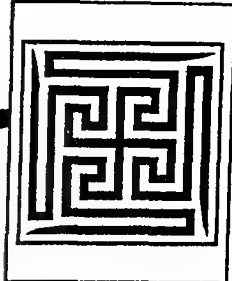
सन १९८६ की घटना है-

सूर्योदय होते ही हम सब साध्वी वृन्द प्रातः वंदन के लिए गुरु चरणों में पहुँच जाते थे। प्रार्थना के पश्चात् प्रतिदिन शास्त्र वाचन होता था। कुछ साधु-साध्वी एवं श्रावक श्राविकाएँ शास्त्र श्रवण का लाभ लेते थे। श्रीचरणों में मुझे भी अक्सर शास्त्रवाचन का सुअवसर मिलता था। वर्षों से मन में रही हुई शंकाओं का समाधान गुरुदेव सहज रूप से कर देते थे। स्याद्वाद, अनेकान्तवाद जिनके जीवन के अंग थे उनके लिए क्या अगम्य?

ऐसे ही एक सुबह हम गुरु चरणों में बैठे थे। शांतिपुञ्ज के सुखद सान्निध्य में शांति परमाणु चारों ओर बिखरे थे। गुरुदेव प्रसन्न थे। इस आभा मण्डल से हम भी लाभान्वित हो रहे थे। शास्त्र खोलकर पढ़ने की तैयारी ही थी कि एक श्रावक आये और गुरुदेव को वंदन कर नतमस्तक होकर खडे रहे। गुरुदेव ने पूछा-

"क्या बात है? कहीं बाहर गांव जाने की तैयारी है?"

श्रावक ने विनम्रतापूर्वक कहा-'हां गुरुदेव! नासिक जा रहा हूँ। कुछ सेवा का



लाभ मिले तो बडी कृपा होगी।''

गुरुदेव ने कहा - 'फिलहाल तो सब आनंद है। पर एक काम करना।

हम सब की आँखें गुरुदेव को ही निहार रही थी। मैं उत्सुक थी जानने कि गुरुदेव इस महाभाग को कौनसी सेवा, कौनसा काम फरमायेंगे? गुरुदेव की मधुर आवाज गूंजी-

'आज आचार्य श्री नानालालजी म. सा. नासिक पधार रहे हैं। दर्शनार्थ गये तो हमारी ओर से सुखसाता पूछना।'

सब के चेहरे पर आश्चर्य के भाव थे। मुझे इसमें कुछ विशेष नहीं लगा। क्योंकि गुरुदेव की उदात्त एवं विशाल विचारधारा से हम परिचित थे। सम्प्रदायवाद से वे विरत थे। महाराष्ट्र में कभी उन्होंने संप्रदायवाद के जहरीले बीज नहीं बोये थे। न कभी किसी के धार्मिक एवं साम्प्रदायिक विचार धारा की फालतू काट छांट एवं निंदा करने में अपनी शक्ति व्यय की थी।

श्रावकजी ने कहा-'गुरुदेव! आपश्री के समाचार तो पहुँचा दूंगा। परंतु एक प्रश्न पूछूं?''

'हां, जरूर...!'

'भगवन्! नानालालजी म. सा. के संत सती श्रमण संघ के साधु-साध्वियों की निंदा करते हैं, टीका - टिप्पणी करते हैं। आपश्री की जय भी नहीं बोलते, न बोलने देते हैं। जिससे समाज में फूट पडती है। वे लोग ऐसा व्यवहार करते हैं और आप खुद उनकी सुखशांति पूछवाते हो यह कैसे?'

श्रावकजी ने स्पष्ट रूप से अपनी बात कही।

'भाई! हमें किसी के व्यवहार से क्या लेना देना। अज्ञानवश ऐसा व्यवहार हो जाता है उनसे। हमारा तो व्यक्तिगत स्नेह का सम्बन्ध है। हम गलत व्यवहार करे क्या यह शोभास्पद है?'

गुरुदेव कुछ पल उस भाई की ओर देखते रहे। प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही गुरुदेव पुनः बोले - 'व्यवहार की बात बताता हूँ। बहने चूल्हा जलाती है या किसी व्यक्ति को कागज का टूकडा जलाना हो तो पहले दिया सलाई जलानी पड़ती है। सलाई जलाई और संयोगवश हवा का झोंका आ गया तो...?'

'सलाई बुझ जायेगी और चूल्हा अथवा कागज का टुकडा बिना जले ही रहेगा।' श्रावकजी ने जबाब दिया।

'बस, यही बात मन की भी है। किसी की भलाई-बुराई या किसी के साथ दुर्व्यवहार करना हो तो उन बातों को हम पहले मन में सोचते हैं, संजोते हैं। सामने वाले का कुछ बिगडेगा या नहीं यह तो दूर की बात है, पर मन तो खराब हो जाता है। मन बिगड़ गया, विचारधारा खराब हो गई तो...?

इसलिए किसी के बारे में गलत सोचना ठीक नहीं। कोई कुछ भी सोचे, करे। हमें तो सब के प्रति शुभकामना के ही भाव रखने हैं मन में।'



इतना बोलकर गुरुदेव मौन हो गये। अंतर की शुद्ध आभा चेहरे पर झलक रही थी। मधुर मुस्कान खेल रही थी उस दिव्य आनन पर। इन शब्दों के साथ मानो गुरुदेव ने सारे शास्त्रों का निचोड़ ही रख दिया था। हमारे सामने। सब के सिर श्रद्धा से नत हो गए थे।

■ ■

श्रद्धांजलि

■ श्री यशकुंवरजी म.

भूपालगंज भीलवाड़ा (राज.)
दि. ४-४-९२

तत्रस्थ परमादरणीय, परम वंदनीय, जैनधर्म दिवाकर, परमश्रद्धेय, बालब्रह्मचारी, राष्ट्रसंत स्व. १००८ आचार्यसम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म. सा. के शिष्यरत्न सुमधुर व्याख्यानी, सरलमना, पूज्य प्रवर्तक श्रद्धेय श्री कुन्दनऋषिजी म. सा. आदि आदरणीय मुनिवृन्द को अत्रस्थ शासन-प्रभाविका, पूज्या महासती श्री यशकुँवरजी म. सा. आदि सतीवृन्द ३२ की ओर से सविनय, सभक्ति, सश्रद्धा, सादर चरण-वंदना! एवं हार्दिक सुख शान्ति की पृच्छा!

विशेष - भारत के महान संतरत्न, समता के मेरूमणि आगम महोदधि, श्रमण शिरोमणि, परम तेजस्वी, महामनस्वी, करुणासिन्धु, जन-जन के आराध्य, श्रमण संघ की विरल विभूति श्रमण गगन का दिव्य दिवाकर, जन-जन को आनन्ददायक, परम वंदनीय, श्रद्धेय, अर्चनीय, सेवा करुणा के शुचि निर्झर, निर्मल आचार विचार की ज्वलंत प्रतिमा, क्षमाशील, सरलमना, परमादरणीय, मेरी श्रद्धा के अमृत-सिन्धु, हृदय-मन्दिर के देवता, आचार्य प्रवर १००८ श्री आनन्दऋषिजी म. सा. के महाप्रयाण का हृदयविदारक दुःखद संवाद ज्यों ही इन कर्णकुहरों में गुंजा, हृदय अपार वेदना से भर गया। मूक, जड़वत् शासन-नायक के महाप्रयाण के श्रुति-कटु संवाद को व्यथित पीड़ित, व्याकुल मन से सुना था सर्व सतीवृन्द ने।

मानस सागर में शोक की उत्ताल तरंगें तरंगित होने लगीं। महायशस्वी, अनुशास्ता के सुरधाम जाने की दुःखद घटना से कलेजा टूक-टूक हो गया, मन की व्यथा नयनाश्रु के द्वारा बाहर फूट पड़ी। लेकिन मन में शायर की पंक्तियाँ उभरने लगी-

"हृदय का सम्राट, जिगर का हुकमरा जाता रहा।
खार का महबूब, गुलों का महरबां जाता रहा।
मौन क्यों गुच्छे हैं और हर कली मुरझा गई-
आज हमारे बाग से है बागवां जाता रहा।"



हा! दुर्दैव! यह क्या? वीर की बगिया का सर्वाधिक श्रेष्ठ सुवासित सुमन कुटिल काल की महाआंधी से गिरकर भूमिसात हो गया! 'पल्लवित, पुष्पित, सुगन्धित सुमन जिसकी भीनी-भीनी सुगन्ध दिग्दिगन्त में महक रही थी वह सुमन कुम्हला गया, लेकिन सद्गुण सुवास युगों-युगों तक महकती रहेगी।

आचार एवं विचार की निर्मल किरणें प्रकाशित करनेवाला अवनितल का वह सहस्रांशु अस्त हो गया, किन्तु शुभ्र, धवल, अध्यात्म सद्गुणों की दिव्य समुज्ज्वल प्रकाशरेखा दे गया।

श्रमण संघ के गुरुतर भार को वहन करते हुए जीवन में कई उतार-चढ़ाव आये, सम-विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, किन्तु वह अकम्प-प्रदीप सदा प्रकाशमान रहा। भीषण झंझावातों में भी हिमाद्रि सी अचलता बनी रही। उसकी ज्योति धूमिल नहीं हुई।

गंगा सी निर्मलता, चंदन सी शीतलता, अग्नि सी तेजस्विता, सागर सा गाम्भीर्य, दिवाकर सी प्रकाशशीलता जिनके जीवन में थी। विनम्रता, सुकोमलता, मृदुता, ऋजुता, सहिष्णुता, निरभिमानिता ये थे उनके जीवन के विशिष्ट सद्गुण समूचा जीवन माधुर्य से परिपूर्ण था। द्राक्षावत् सुकोमल एवं माधुर्य से परिपूर्ण था उनका अन्तर्बाह्य जीवन। सतत जागरूक, संयमनिष्ठ, अध्यात्म साधक, तपोदीप्त समुज्ज्वल जीवन की वह सौम्य मुखाकृति कितनी भव्य, आकर्षक एवं मनोहारी थी? कितनी निर्मल पावन छवि थी उस पुण्यात्मा की दिव्यात्मा की! सफल सुयोग्य अनुशास्ता के रूप में उभर कर आये, वह संत रत्न आज देहदृष्ट्या हमारे समक्ष नहीं हैं, किन्तु उनका यशःशरीर अब भी विद्यमान है, और भविष्य में भी रहेगा। स्मृति-दीप सदा जलता ही रहेगा।

"शबनम फूलों पर गिरती, पत्तियाँ नम नहीं होती।

लाख महामानव चले जायें, स्मृतियाँ कम नहीं होतीं।।"

महामना युगपुरुष की जितनी महिमा गायी जाए उतनी ही कम है। अद्भुत योगी, महामनीषी, अनुत्तर ध्यानयोगी, युगनिर्माता, गुलदस्ते के समान महकते हुए उस विराट् व्यक्तित्व के लिए सभी शब्द छोटे हो जाते हैं। महिमा मण्डित जीवन की असीम गुणगरिमा ससीम शब्दों में कैसे अभिव्यक्त की जाए? अंत में दिवंगत आत्मा को अखण्ड आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो तथा उनके यशस्वी रिक्त पद की संपूर्ति हो, एवं चतुर्विध श्री संघ की नींव सुदृढ़ बने, यही हार्दिक मनोकामना!

विराट् व्यक्तित्व के श्री चरणों में अंत में विनम्र निवेदन!

"ज्ञान की ज्योति कहूँ या, सीप का मोती कहूँ।

भावना की चरण रज से, पाप मल धोती रहूँ।।"



श्रद्धेय, महामना अनुशास्ता के देवलोकगमन से सभी के मन पीड़ित हैं तो आप जैसे भाग्यशाली शिष्य रत्नों को अति निकटतम सान्निध्य मिला, आप अवश्य वियोग व्यथा से पीड़ित होंगे, किन्तु आपको विदित ही है कि ज्ञानीजन कभी शोकमग्न नहीं होते हैं। प्रतिपल समता की निर्मल मंदाकिनी प्रवाहित होती रहती है, अतः आप बहुत बहुत धैर्य धारण कराएँ! "सूज्ञेषु किं बहुना"

पत्रोत्तर की कृपा अवश्य कराएँ!

शासन-प्रभाविका परम यशस्वी
सद्गुरुवर्या श्री यशकुँवरजी म. सा.
की आज्ञा से
साध्वी सुधाकुँवर

सूर्य जो अस्त होकर भी उदित है

■ **उपप्रवर्तिनी महासतीजी कौशल्याजी म. (पंजाबी)**

गुरुवर की महिमा अनन्त,
अनन्त किया उपकार।
लोचन अनन्त उघाडिया,
अनन्त दिखावन हार,
अनन्त अनन्त ज्योति के धारक।
किया अनन्त में वास,
अनन्त हृदयों में बसे
फिर क्यों जगत उदास।

'ओह! इस संसार में एक ऐसा सूर्य अस्त हो गया है जो अस्त होकर भी उदित है। जिस का दिव्यालोक कभी तिरोहित नहीं हो सकता। जिसकी ज्योत्स्ना कभी मंद नहीं पड़ सकती, जिसकी प्रभा-भूषित रश्मिएँ अंधकार के कलेजे को युग युगान्त तक चीरती रहेंगी और भव्य संसार को प्रकाश से भरती रहेगी।'

जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म. जो इस भूलोक का परित्याग कर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गए। लोग कहते हैं चले गए श्री आनन्दऋषि महाराज, स्वर्गवासी हो गए आचार्य सम्राट्। कोई कहता है आत्म गए थे, अब उनका आनन्द भी उनके पास चला गया। पर मैं सोचती हूँ कहाँ चले गए? कहाँ? नहीं! नहीं! वे कहीं नहीं गए। न आत्म गए न आत्म का आनन्द गया। यदि आत्मा और उसका आनन्द चला जाता तो इस दृश्य जगत में शेष रह ही क्या जाता। फिर तो संसार में शून्यता भर जाती। आत्म आत्म का आनन्द और आत्म की चेतना सभी लुप्त हो जाती। एक जड़ द्रव्य ही शेष रह जाता। नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। ये तीनों त्रिकाल सत्य हैं सदा सदा रहने वाले हैं। जब तक मन



मोहक तारों का दल नील गगन में जिंदा है जब तक कलियों की चमक दमक आजाद चमन में जिंदा है जब तक गंगा में पानी है, यमुना में वही रवानी है,

गुरुवर कण कण में जिंदा हैं,
पूज्यवर जन जन में जिंदा हैं।
तुम हमारी आस में जिन्दा हो।
तुम हमारी श्वास में जिन्दा हो।
शरीर से भले ही विलग हो गए,
पर, हमारे विश्वास में जिन्दा हो।

जन मन के सिंहासनों पर आज भी विराजमान हैं। वे जा कर भी हमारे पास हैं - सूरदास के शब्दों में -

हाथ छुडाय जात हो निबल जान के मोय!

हृदय से जब जाओगे सबल जानूं तोय!!

वे भी तो हमारे हृदय के सम्राट्! हमारे हृदय मन्दिर में उसी श्रद्धा भक्ति के साथ मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए नजर आ रहे हैं - मानो कह रहे हैं, क्या कहते हो मैं चला गया? कब चला गया? अरे, मैं तो जन जन के कण कण में समाया हुआ हूँ। हाँ, जिस दिन तुम ने मेरे आदर्शों को, मेरे उपदेशों को, मेरे आदेशों को, मेरे सद्कार्यों को भुला दिया सचमुच उस दिन मुझे जबरन यह भूलोक छोड़ना ही पड़ेगा।

लगता है वह ज्योति चाक्षुस द्वार से हृदय में उतर गई है। वह खोई नहीं, वरन् हमारे अन्तर में समा गई है। ऐसे अन्तर में जहाँ से कभी जा न सकेगी। जिसे कोई छीन न सकेगा। जिसे कोई उठा न सकेगा। वह जन्म जन्मान्तरों तक हमारी अंगी साथी बनी रहेगी और हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। वह हमारे प्राणों में समा गई है। जब तक प्राणी रहेगा तब तक प्राण रहेंगे, तभी तक प्राणों में यह ज्योति भी रहेगी। वे दृश्य जगत से भले ही विलुप्त हो गए हैं, पर उनके आशीर्वाद उनकी आत्मीयता जैन जगत् से कभी विलग नहीं हो सकती।

"गए गए कैसे कहें गए वो जरूर हैं,
तन से गए हैं पर प्राणों में हजूर हैं।"

उनके अनन्त गुण इस अन्तहीन संसार के अनन्त प्राणियों में समाए हुए हैं

'आपका महान्, पवित्र, परोपकारी उदार आदर्श एवं ज्योतिर्मय जीवन इस विश्व में चेतनालोक भरता रहेगा। वचन भास्कर रश्मियों की भाँति युग युगान्त तक शुभ्र ज्योत्स्ना की वृष्टि करता रहेगा, जिसमें श्रद्धालु भक्त अवगाहन कर कृतकृत्य होते रहेंगे।'

यद्यपि आचार्य श्री आज हमारे मध्य में नहीं हैं, तथापि "यशः शरीरेणाद्यापि जीवति" वे अपने यश शरीर से हमारे पास ही है। उनके जीवन की मधु सी मधुरता अविस्मरणीय है। 'इहं सि उत्तमो भंते पच्छा होहिसि उत्तमो' वे हमारे तब भी वन्दनीय थे, अब भी वंदनीय हैं और जन्म जन्मांतरो तक वंदनीय ही रहेंगे।



"फूल मुरझा गया, किन्तु सौरभ अभी फैल रही है। सूर्य अस्त हो गया, लेकिन लालिमा अभी दिग्दिगन्त व्यापिनी है। पूज्य श्री की यश सौरभ अमर रहे। काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक युगयुगों तक महकती रहेगी। जैसे कि कहा भी है -

"एक प्रकाश स्तम्भ ढ़ह गया,
तेज पुञ्ज विलीन हो गया।
इक सुनहरे आसमां का,
एक ताबिदां सितारा छुप गया
लेकिन, उजाला दे गया।।"

उनकी पुण्य स्मृति युग युग तक हमारे अन्तर्मानस पर बनी रहेगी।

"जब तक जमीं, जमीं पे आसमां रहेगा।
हम सब पर गुरुदेव, तेरा एहसान रहेगा।"

"धीर, वीर, निर्भीक सत्य के अनुपम अटल पुजारी, तुम मर कर भी अमर हो गए, जय हो सदा तुम्हारी।"



- *हम तप करें नहीं, शील पाल नहीं, दान देवें नहीं, और चाहें कि हमें सुख मिल जाय तो कैसे मिलेगा?*
- *मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है।*
- *पुत्र को सुपुत्र बनाने के लिए उसमें सुसंस्कारों का निक्षेप करना आवश्यक है।*
- *बालकों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जो चरित्र को ऊँचा उठाकर आत्मा को शुद्ध करे।*
- *विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करे।*
- *मुक्ति की ओर ले जाने वाली शिक्षा नैतिकता एवं धर्म पर आधारित होती है।*
- *धार्मिक शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है।*
- *मांसाहारी व्यक्ति की अपेक्षा शाकाहारी व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अधिक स्वस्थ रहता है तथा दीर्घायु होता है।*
- *जहाँ मांसाहार होता है वहाँ करुणा की भावना नहीं रहती, अहिंसा की रक्षा नहीं होती।*
- *खुदा जालिमों से कभी प्रेम नहीं करता।*



आत्मगुणों का गौरवशाली गुलशन

■ श्री किरणप्रभाजी म.

चेतनामय शांति के अग्रदूत, भव्यात्माओं की शक्ति एवं भक्ति के अमरधाम........

"कैसे भूलाऊँ आपको ओ ! मेरे आराध्यदेव !

क्यों कि आप थे महामहिम महादेव !

लाखों नयन अश्रू बह रहें, अर्घ्य के रूप में,

मन को कैसे समझाऊँ? ओ मेरे परमदेव !"

पता नहीं था, इतने शीघ्र यह क्रूर कराल काल हमपर वज्राघात करेगा और जिंदगी के उन सुखद क्षणों में ही यह विदाई का मुहूर्त आयेगा। अचानक ही माला टूट गई हो, मणके बिखर गये हों, मन बिलख उठा हो, किसी हरे भरे फूलों से लदे छाँवकार वृक्ष को किसी निर्दयी ने झटके से काँट दिया, फूलोंभरी खुबसुरत क्यारी पर किसी ने आँख मिचाकर बुलडोझर चला दिया ऐसी ही एक घटना है.... श्रद्धेय का हमें छोड़ जाना।

कलेजा काँप रहा है, मन उदासीन है, वातावरण शून्यमनस्क बना हुआ है, वाणी स्तंभित हो चुकी है। आँखे मानो उस विभूति को खोजने आँसूओं के रास्ते से बेतहाशा भाग रही है। पूछ रही है! क्या कभी दिव्य आत्माओं की लोक-कल्याण देह अमर नहीं हो सकती? क्या उनकी आयु हजारों वर्षों तक लम्बी नहीं हो सकती? क्या मुझ जैसी पामर प्राणी की आयु उन्हें समर्पित नहीं की जा सकती? मन में उभरते इन प्रश्नों का समाधान कौन करें? कैसे समाधान हों? व्याकुल मन कैसे शांत हो? इन आँखों को कैसे समझायें? दिव्यदर्शन के लिए पावन प्रतिमा को निहारने के लिए तरस रही हैं, श्रवणेन्द्रिय की उत्सुकता कैसे मिटे जो वात्सल्य स्नेह से लबालब शब्दों को सुनने के लिए आतुर है, इन हाथों को कैसे समझाऊँ, जो चरणधूलि पाने छटपटा रहे हैं।

ओ! विशेषताओं के महासागर, मैत्रीभावों के मसीहा, मानवता के मेरू, श्वास श्वास से वंदनीय, पूजनीय हृदय सम्राट्, क्या कसूर हुआ हमारा? क्या अपराध किया हमने? जो हमें मँझधार में छोड़, इह लोक की यात्रा समेट, दिव्य लोक की यात्रा में प्रयाण कर गये। ओ! करुणासिंधू, कठोर कैसे बन गये? मक्खन सा कोमल हृदय आपका, किसी दुखी दर्दी को देखकर द्रवीभूत हो जाया करता था। फिर क्या वजह है, हम पर दया क्यों न आयी? आपकी सुखद स्मृतियाँ मन को क्लान्त खिन्न बना रही हैं।

एक नहीं, दो नहीं, सौ नहीं, हजारों स्मृतियाँ मानसपटल पर चलचित्र की भाँति उभर रही है, हृदय विह्वल बन जाता है,



मन में होता है, कहाँ खोजें, कहाँ ढूंढें? कहाँ देखें? हमारे पावन प्रभु को! परमात्म स्वरूप भगवान को। क्या जीवन में उन दिव्य विभूति के दर्शन प्रत्यक्ष रूप में कभी नहीं कर पायेंगे? मन बेचैन हो जाता है, अंतर पीड़ा उभर आती है।

"ओ आचार्य प्रवर शिष्य शिष्याओं का सुन लो भावभरा क्रंदन!

एकबार पावन दर्शन दो, हृदय बना दो शीतल चंदन!

प्रेरणा का दीप जलाकर, मन में भर दो स्फूर्ति स्पंदन!

उज्वल यश मंडित गुरुवर, स्वीकार करो प्रतिपल वंदन!"

जब मैं मन मंदिर की आराध्य प्रतिमा की स्मृतियों में खो जाती हूँ तो सामने आलोक ही आलोक नजर आता है। आप आलोक स्वरूप थे, आपका आभामंडल दीप्त था, प्रभावशाली था, प्रभावपूर्ण था। जो भी पहुँचा, उन भवभयहारी चरणों में नौ निहाल हो गया, जीवन की राह मिली, अंतर परिवर्तन हुआ, हजारों लाखों जनमानस को उजाला मिला।

आपकी मिसाल मिलना मुश्किल है, दुर्लभ है, क्या कमाल किया आपने करोड़ों भक्तों के हृदय में स्थान पा लिया, लाखों हृदयों में श्रद्धा की ज्योत जगाना सहज बात नहीं हैं। कोई गजब फरिश्ता ही यह कमाल कर सकता है।

जन समूह आपके दर्शनार्थ पहुँचता तो वह नजारा देखते ही बनता, उनके नयन हमारे प्रभुवर के मुखारविंद पर टिक जाते। वहाँ से हटने का नाम ही नहीं लेते, मानो आनंद विभोर हो अमृत पान कर रहे हों। अभी अभी न तो हमारे प्रभुवर की अमृत मीठी मधुर वाणी श्रवण करने को मिलती और न तो अनंत अनंत आशीषों से लबालब कर दर्शन होते, फिर भी न मालूम क्या करिश्मा था, लोग देखते ही अघाते नहीं थे, बलात् कहना पड़ता आगे बढ़ो! कैसा यह जीवन था, कैसी वह मोहनी मूरत, सोहनी सूरत थी। ऐसे महापुरुष धरती पर होते है जब लाखों मस्तक चरणों में झुकते है, यहाँ से विदा होते है तो लाखों करोड़ों नेत्र अश्रू के रूप में अर्ध्य चढ़ाते हैं।

आपका पावन जीवन लोहचुम्बक था, जिसने भी एक बार दर्शन किये, आपको अपने हृदय में समा लिया, आजिंदगी भावपूजा, अर्चा करता रहा, चरणों में पूर्णतः अर्पित हो गया। आपकी सौम्य मृखाकृति तथा मधुर मुस्कान जन मानस को अपनी ओर खींच लेती। आपके दर्शन में ही यह सामर्थ्य था। दर्शन मात्र से ही मन का आधा दुःख दूर हो जाता। आपके स्नेह सने तत्त्वामृत से ओतप्रोत शब्दों से तो मानो मन की थकान पूर्णतः दूर होकर आनंद सागर में डुबकियाँ लेने लगती और अपने आपको धन्य समझता। क्योंकि आपने दूसरों के सुख को ही अपना सुख समझा, अन्य के आनंद को ही अपना आनंद माना, दूसरों की खुशी को ही अपनी खुशी समझी। अणु अणु में परार्थ



का पराग प्रवाहित था, सद्भावना की सुरभी महक रही थी। हर श्वास विश्वमंगल के अमृतमय अध्यवसायों से ओतप्रोत था।

आप शासन उपवन के कुशल माली थे, हर पौधे को, हर फूल को, हर पत्ती को आपने जीवन के कण कण से सींचा। आपके पास ममता का आँचल था, जिसकी ओट में अनेकानेक दीप जलते रहे। आप वह अमृतकलश थे, जिसकी एक एक बूँद ने हजारों हजार लोगों के जीवन-विष का अपहरण किया। आप कल्पवृक्ष थे, जिसके तले जन मानस ने मनवांछित फल पाया। आप चिंतामणी थे, सान्निध्यस्थ की चिंताएँ चकनाचूर हो जाती। सही में परमानंद सी पावनमूर्ति थी आप।

दिव्य गुणों का दीपक था आपका दिल, जिस में कर्तव्य की कटोरी में सद्भावना का स्नेह ड़ालकर सद्विचारों की ज्योति से दुनिया को दिव्यालोकित करता रहा।

आपका जीवन दिव्य था, कर्म दिव्य थे, वाणी दिव्य थी। आपकी राह में आँधियाँ आयीं, तूफान आये, पर आप आंतरिक ऊर्जा से सामर्थ्यशील चेतना से मात करते रहे। शूलों के बदले आपने फूल ही फूल दिये, विष के बदले आप अमृत बाँटते रहें। कष्ट देनेवाले के प्रति करुणा की रसधारा बहाते रहे। यह थी आपकी महानता। सारा जीवन ही महानता, उच्चता, सरलता, सहजता, साधना, अनुकम्पा से ओतप्रोत था। विचारों में हिमालय सी ऊँचाई, आचार में दुग्ध सी शुभ्रता, ऐसे आपके विराट् व्यक्तित्व, अगाध कर्तृत्व को जानना असंभव है।

गंगा की तरह पावन दिव्य जीवन दर्शन अब कहाँ? वह मेघसी सरस रसधार बरसनेवाली मधुर मीठी वाणी अब कहाँ? स्फटिकसी शुद्ध निर्मल काया में करुणा से लबालब अंतःकरण के दर्शन अब कहाँ? मानो संसार के सारे गुणों ने, सारी अच्छाईयों ने ही आपके देह को धारण कर रखा हो।

''आप अहंकार से परे थे, अपनत्व रस से भरे थे।

आप भेदभावों से ऊपर उठे थे, मैत्री भावों से जुड़े हुए थे।''

'स्वार्थ के विष ने आपको छुआ तक नहीं, परार्थ का अमृत लबालब भरा था। आपके हृदय में वासना का अंधकार नहीं था, बल्कि विराग का आलोक खचाखच भरा था।''

सूरज दूर से छोटा नजर आता है, पर वह एक बहुत बड़ी दुनियाँ है, जिसके आलोक में जगत को राहें मिलती है। वैसे ही आचार्य भगवंत शांत, सौम्य मुद्रा में विदित होते थे, पर आपका भाव जगत इतना व्यापक था - एक ओर तो आत्मसाधना के पथ पर अग्रसर हो रहा था, दूसरी ओर विश्व के महान् मंगल की आकांक्षा एवं तड़फ लेकर लोक कल्याण में प्रवृत्त हो रहा था। कष्ट की दारूण वेला में



भी जीवन की सुरभि बहाल करते रहे। ऐसे व्यापक जीवन में मानवमात्र का मंगल रहा हुआ था। इसी उच्च, शुभ्र मंगल भावना से हमारे अंतर आलोक का अणु अणु वंदनीय, पूजनीय, आराधनीय बन गया था, यह देख भक्त के मुख से सहज ही शब्द स्फुरित हुए।

''नमो नमस्तेऽस्तु सहस्र -कृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।

नमः पुरस्ताद् अथ पृष्ठतस्ते, नमोऽस्तु ते सर्वतः एव सर्व ।।''

मात्र चरण ही वंदनीय नहीं थे, तो हर आत्मप्रदेश श्वास श्वास से वंदनीय था।

कबीरजी की उक्ति स्फूरित हो रही है, ''ज्यों कि त्यों धर दिनी चदरिया''..... बड़ी मार्मिक गहन उक्ति है। आपने जीवन का हर तार शुद्ध, शुभ्र पवित्र पावन रखा, साथ ही मन की गरिमा, वाणी की मधुरिमा, चारित्र की उज्ज्वलता से आप पावन एवं वंदनीय बने रहे। संघ शासन हितार्थ अपने जीवन का उत्सर्ग सहर्ष समर्पित करनेवाले दधीचि थे आप। आपने जो समाज को दिया वह शब्दांकन से परे है। आप श्रमण संघ के सार्वभौम सत्ता प्राप्त सम्राट् होने पर भी मेघ की तरह समान रूप से सभी को आनंद प्रदान करते थे। आपने आनंदधाम में हर प्राणी को आनंद ही आनंद बाँटा। आज़ सभी के मन निरस बन गये हैं, क्यों कि जीवन का आनंद रस लूट गया है।

आप ज्ञान ध्यान में रत, आराधना में लीन, साधना में संलीन, श्रमणसंघीय चर्या में व्यस्त थे। आप सदाचार एवं नैतिकता के संदेशवाहक थे। जीवन को संस्कारी, सुयोग्य बनाने हेतु शिक्षा से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं इसी चिंतन को लेकर आप प्रारंभ से ही शिक्षा प्रेमी रहे। साथ साथ संगठन के भी प्रबल समर्थक रहें। जनमानस में आपने संगठन की लौ जलाई थी। पत्थर से पत्थर मिलता हैं ईंट से ईंट मिलती है तो दीवार बन जाती है। जब दिल से दिल मिलता हैं तो टूटे दिल जुड़ पाते हैं। दिल से दिल मिलाने के लिए जो प्रयास आपका रहा जैन जगत के लिए वह प्रशंसनीय एवं स्तुत्य रहा है।

आपने अपने जीवन के साथ अनेकों के जीवन में रोशनी निर्माण की है। टूटे हुए अनेक जीवन जोड़े हैं। गिरते मानव को उठाया है। सोये हुए को जगाया है, रोते हुए को हँसाया है और अहं को भगाया है।

आपका अस्तित्व ही दीपक के समान था जो सब को प्रकाश तो देता है, पर उसकी घोषणा नहीं करता, बत्ती बनकर जलता है, उनका जलना अंधकार में भटकने वालों के लिए वरदान बन जाता है। आपकी ओजस्वी, तेजस्वी एवं वर्चस्वी छबि ने एक अनिर्वचनीय प्रभाव स्थापित किया।

बस अंत में यही कहूँगी.........

''जानेवाले कभी नहीं आते, जानेवालों की याद आती है।''

होती जिनकी चाह धरापर, प्रभु भी

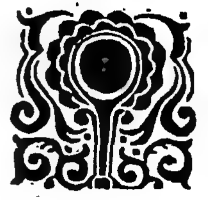
उन्हें बुलाते हैं

ऐसे दिव्य पुरुषों की क्षति पूर्ति, देव भी नहीं कर पाते हैं।''

ओ गुरुवर........

'मेरे श्रद्धा और समर्पण को थोडा सा मोल दो।

कृपा बरसा दो नयन खोलकर, एक लब्ज तो बोल दो।।''



बस! शासन के सजग प्रहरी, युगपुरुष, पुण्यपुरुष के चरणों में श्रद्धांजलि वंदनांजलि एवं भावसुमनांजलि।



हे श्रमण संघ रा गौरवशाली नेता

■ साध्वी अर्चनाजी म.

जीवन है विस्तार अनंत रहस्यों का, अनंत आयामों में। इसलिए जो व्यक्ति जीवन को उसकी समग्रता में जीता है वह स्वयं भी रहस्यमय हो जाता है। और तब उन अनंत आयामों में उनके व्यक्तित्व से जीवन ही बोलता है। ऐसे व्यक्तित्व को जानने, समझने अनुभव करने के लिए अपने व्यक्तित्व को विकसित करना पडता है। ऐसे ही विराट् व्यक्तित्व के धनी थे हमारे परम-आराध्य पूज्य श्री आचार्य सम्राट् १००८ श्री आनंदऋषिजी महाराज।

इस युग पुरुष का जन्म वीर संवत् १९५७ सावन शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार को एक छोटे से ग्राम 'चिचोंड़ी' में हुआ। नाम रखा गया नेमीचंद। ऐसे युगपुरुष को जन्म देने का सौभाग्य माँ हुलसा एवं पिता श्री देवीचंदजी को प्राप्त हुआ। बालक वय में ही माता के संस्कारों ने उन्हें भर दिया और सहजता में वैराग्य की लहरियों में लहराने लगे। इसी वैराग्य के फलस्वरूप १३ वर्ष के बाल वय में ही पू. श्री रत्नऋषिजी म. सा. का शिष्यत्व प्राप्त किया, आप श्री का नाम रखा गया श्री आनंदऋषि। साधना पथके महायात्री बनें।

यौवन के गुलाब में जहाँ साहस एवं सौरभ की स्फूर्ति होती है वहाँ आवेग एवं अविवेक के कांटे भी होते हैं। बिना कांटों का गुलाब मिलना मुश्किल है। जिस यौवन-गुलाब में संयम सद्विवेक और चिंतन की महानता है वह सुरभिपूर्ण बिना कांटों का गुलाब कहा जा सकता है, पर वह दुर्लभ। दुर्लभ है इसलिए इसकी महिमा है, मूल्य है, महत्त्व है, ऐसे गुलाब ही आत्मदेव की मंदिर की सच्ची शोभा बढ़ाते हैं।

यौवन सागर की लहरियों की तरह चंचल होता है, उत्तेजनामय और प्रबल आंधी की तरह प्रबल वेगवान होता है। उसके बहाव में कौन नहीं बहता। बहनेवालों का कोई इतिहास नहीं, कोई



उनका नाम लेवा भी नहीं। बहाव के विपरीत दिशा में जो अपना रास्ता बनांते है इतिहास उन्हीं का बनता है। ऐसे इने-गिने ही लोग इस धरती पर हुए, जिन्होंने अपना इतिहास अपनी साधना से लिखा जीवन का नव निर्माण किया, जीवन जीने की कला जानी उन्हीं में एक रहे मेरे परम आराध्य देवता श्री आचार्यश्रीजी।

उस महापुरुष का जीवन सरल, सरस मधुर था। तप, त्याग, सेवा एवं साधना की ज्योति से ज्योतिर्मय बन गया था। मन को स्वाध्याय एवम् ध्यान-साधना से साध लिया था। अपनी वृत्तियों को विराग भाव की साधना से स्वभाव की ओर मोड दिया था। गुरुदेव स्वयं बोलते न थे परंतु उनका जीवन बोलता था। जीवन से ही हर समस्या का समाधान मिल जाता। दुश्मन भी द्वेष भावना से आता तो सहज ही उस महापुरुष के साधना का ऐसा प्रभाव पडता कि सहज ही वैर को भुला देता और सरल बन जाता।

वह एक तपःपूत महाज्योति थी जो अतीत में प्रज्वलित थी, वर्तमान में प्रज्वलित है और भविष्य में प्रज्वलित रहेगी।

वास्तव में महामनीषी महापुरुष पूज्य गुरुदेव का विराट् व्यक्तित्व हमारे शब्दों की पकड में कैसे आ सकता है लेकिन उस अनंत गगन को छूने का प्रयास करता है। बूंद सागर को व्याख्यातीत करने का प्रयास कर रही है। रजकण हिमगिरि के महाशिखर को नापने का प्रयास कर रहा है।

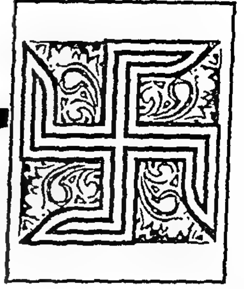
संसार में गुरु चरणों में वंदन करने से बढ़कर कोई चीज हो सकती है क्या? यह सवाल यदि कोई पूछना चाहे तो उसके सामने एक ही उत्तर-

ध्यान-मूलं गुरोर्मूर्तिः पूजा-मूलं गुरोर्पदम्
शास्त्रमूलं गुरोर्वाक्य मंत्र-मूलं गुरु कृपा।।

सचमुच गुणी जनों के संकीर्तन के ये अनमोल क्षण विरल ही मिल पाते है। हम भाग्यशाली है कि, हमें यह दुर्लभ अवसर एवं अलभ्य सहज ही उपलब्ध हुआ था।

आप मन के मनस्वी थे, तन के तेजस्वी थे। ८० साल की साधना काल में अवनीतल पर अध्यात्मवाद के प्रबल प्रचारक बने रहे थे। आपके आगम ज्ञान के शंखनाद की दिव्य ध्वनि दिग्दिगंत पसरी और विश्व उससे चेतना का अमर चेतना का संदेश प्राप्त करता रहा।

आप उन ज्योतिर्मय आत्माओं की शृंखला में एक दिव्य भव्य ज्योति थे जो जिधर भी निकल जाती आलोक फैलाती ही जाती। आप जिस पथ से गुजरते फूल निखरते और राहके काँटे दूर हो जाते थे। राह के कांटों को अपने तप-त्याग एवम् सेवा की सुवास के फूल के रूप में विकसाते रहे और महक बिखरते रहे! आपका जीवन दिनकर के समान दिव्य था।



इस युग पुरुष से झरती सत्य किरणें, मानव मानस के कलुष कल्मष को खोती सत्य किरणें नयी रोशनी, नया जीवन संदेश देतीं सत्य किरणें, किस पुण्यवान को नहीं भाती? महीने, वर्ष, युग और शताब्दियाँ भी बीत जाती हैं, परंतु कुछ ऐसा भी होता है जो समय के तूफान के सामने अपना सिर उठाये खडा रहता है। वह समय के तूफान के सामने अपना सिर उठाये खड़ा रहता है। वह क्या है? वह है महापुरुषों का प्रकाशमय जीवनदर्शन! क्या समय की आँधियाँ ऐसे प्रकाशमान जीवन को धूमिल कर सकती हैं? क्या वक्त के तूफान में उनके गौरव गाथाओं को मिटा सकता है? नहीं! कभी नहीं, उनका जीवन ही इतना विचित्र होता है जो भी चरणों में आता और आँखें फाडकर देखता ही रह जाता और धन्य होकर जाता। मैं भी एक बार उस युग पुरुष के चरणों में अपनी घोर पीड़ाओं को लेकर आयी, सारी व्यथा सुनायी। लंबी चौड़ी कहानी समस्या घंटों तक सुनाती रही। और उस बाबा ने घंटों की समस्या का समाधान मिनटों में दिया इतना ही कहा "सब ठीक हो जाएगा चिंता नहीं करना सतीजी" मैंने सुना और विचार करने लगी। चिंता करने जैसा ही विषय था, उलझनें ही उलझनें थी और बाबा ने ये क्या समाधान किया - मैं तो समझ ही नहीं पा रही थी। कैसे होगा समाधान? पर श्रद्धा थी इन चरणों में और सचमुच ही जिस चिंता से मैं घिरी थी वह बहुत जल्द ही सुलझ गयी। जीवन में फिर से आनंद के झरने बहने लगे।

जीते जी भी जगत को शांति दी और विदा होने के बाद भी भक्तों को संभाल रहे हैं। किसी शायर ने ठीक ही तो कहा है-

"आल में मस्ती में जब भी तेरा नाम लिया

गिरने न दिया तुमने हमें थाम लिया है।"

महापुरुष कभी चमत्कार नहीं दिखाते पर जीवन जरूर चमत्कारिक होता है।

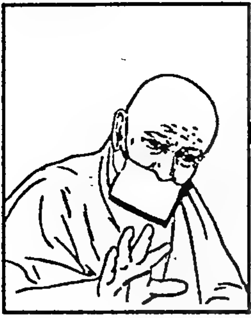
चमत्कार के अलभ्य क्षण।

अयाह गर्मी दोपहर की! विशाल जनसमूह कानों के पर्दे फाडनेवाला शोर गुल!

एकाएक एक बहन के गले में भीषण वेदना का संचार हुआ। गुरुदेव को सिंहासन पर बिठाया गया गुरुदेव का ही पार्थिव देह सुनहरी आभा को प्रस्फुटित कर रहा था। न जाने कैसे उस बहन के अंतर में विचारों की परतों से एक विचार उभरकर आया।

श्रद्धायुक्त प्रेरणा से उसके दोनों हाथ स्वतः किसी वस्तु को लेने के लिए उठ पडे।

पार्थिव शरीर के यत्र-तत्र पडी दर्फ की करोचो में से एक करोच उठाकर मुँह में डाल दी। साथ में 'जय आनंद' 'जय आनंद' का जयघोष करती रही। अचानक आयी असह्य पीडा का शमन हो गया। यह है गुरुदेव के स्पर्श करती हुई वस्तु का



प्रभाव। तो जिन्होंने उन चरणों का ही स्पर्श पाया वे कितने महान हुए।

उस ऋषि के चरणों में, उस योगिराज के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए यही कामना करते हैं कि उनके सिद्धान्त मानस-पटल पर उभरे। जीवन क्षेत्र में उतरें। उनके जीवन का प्रकाश हमारा मार्गदर्शन करे। हमारे सामने लगे प्रभु चिन्हों को धो डाले। श्रद्धा विश्वास का गुलशन हमारे अंतस पर खेले। जीवन का लक्ष्य संसार के तमस में न विचले। हे योगिराज! ऐसा वर दो हमें। हम भी आप द्वारा अंकित चरण-चिन्हों पर चलें इसी शुभ कामनाओं के साथ...



ज्योतिर्धर आचार्यश्री

■ श्री रंभाजी म.

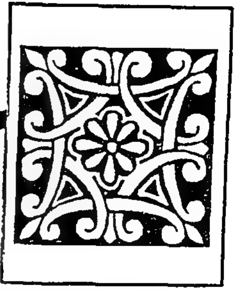
"देव तुम्हारी ज्ञान शिखा से - युग के पाप टलेंगे ही।

वन्दन के स्वर मन्द न होंगे श्रद्धा दीप जलेंगे ही।।"

जगत् में किसी न किसी ऐसे महापुरुष का जन्म होता आया है जो अपनी महानता से सृष्टि को अपने आलोक से आलोकित कर देते हैं। ऐसे युगपुरुष अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व द्वारा स्वयं का ही कल्याण नहीं करते, अपितु जन-कल्याण हेतु प्रकाश स्तम्भ बनकर जीवनोत्थान के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य भी करते हैं। ऐसे महापुरुषों की यशोगाथाएं इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित रहती हैं। लोकोपकार करते हुए इहलीला का संवरण कर देव लोक को प्रयाण कर जाती है। ऐसे ही महापुरुषों में महामहिम राष्ट्रसन्त आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज भी थे, जो गतसाल संथारापूर्वक अपने शरीर का त्याग कर ब्रह्मलीन हो गए।

जम्मू से बिहार करते हुए मुकेरियां के रास्ते में ही मुकेरियां समाज से अकस्मात सुनकर हृदय को आघात लगा कि आचार्यश्री हमसे सदैव के लिए विदा हो गए हैं। उनके महाप्रयाण ने मेरे मन को झकझोर दिया।

आप श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर आचार्य थे। वे केवल समाज के ही आचार्य नहीं थे, उनका अपने मन, वाणी और शरीर पर पूरा अधिकार था। वास्तव में आचार्य वही होता है जो अपने सच्चरित्र से समस्त संसार को प्रकाश देता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप तथा वीर्याचार आदि पांचों आचारों को धारण कर सत्य का प्रतिपादन करता है। उनकी साधना



अद्वितीय थी, पावन चरणों में जो भी आया, उसका जीवन चमक उठा।

सरलता, सहिष्णुता, शान्ति एवं समता की साक्षात् मूर्ति आचार्य देव के प्रथम दर्शन मैंने अम्बाला में पधारने पर किए थे। उस अवसर पर समस्त साध्वी मण्डल के विराजित होते हुए भी स्वागत गीत को बोलने का सौभाग्य केवल मुझे ही मिला था। अम्बाला स्वागत - पश्चात् पंजाब के हरियाणा जम्मू आदि क्षेत्रों में विचरण से लेकर दिल्ली प्रस्थान तक के लम्बे समय तक श्री चरणों में बैठकर अध्ययन करने का सु-अवसर भी मुझे मिला था। मेरे जीवन का कण-कण उन पावन चरणों का ऋणी रहेगा, जिन के रजः कणों ने अन्धकार से प्रकाश की ओर लाने का प्रयास किया। आचार्य भगवन् के चरणों में बैठकर जो मैंने पाया वह अद्भुत था। उनके आशीर्वाद का वरदहस्त सदैव मेरे साथ रहा। वह शान्त मूर्ति दिव्यात्मा अकस्मात् इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिव्यलोक को प्रयाण कर गई। ऐसी भव्यात्मा के महान विभूति के हम दर्शन प्रत्यक्ष रूप में तो नहीं कर सकते, अपितु परोक्ष रूप में उस दिव्य मूर्ति के दर्शन सदैव होते रहेंगे। उनके उत्तम गुणों की सुगन्धि दिग-दिगन्त में सदैव प्रसृत होती रहेगी। उस महान तपस्वी की स्मृतियाँ, गुण एवं अलौकिक शक्तियां ध्रुव तारे की तरह स्थायी रूप धारण कर सदैव दिशा बोध देती रहेगी। उनके ओजस्वी व्यक्तित्व के स्वर्णिम कण मुझे सदैव ज्योति प्रदान करते रहेंगे। उनके प्रति मेरी निष्ठा, श्रद्धा एवं आस्था स्थायी रूप लिए रहेगी।

मेरे अध्यात्म-पथ के गुरुवर्य आचार्य प्रवर मुझसे कभी दूर नहीं हो सकेंगे। मेरे पथ-प्रदर्शक, शिक्षक एवं अध्यात्म चेतः मेरे हृदय में अवस्थित रहेंगे। उनके श्रवण किए हुए शब्द मेरे श्रवणों में सदैव गुंजायमान रहेंगे। उनकी स्मृतियां मेरे पथ को सदैव आलोकित करती रहेंगी।

ऐसे तपस्वी साधक अनुशास्ता गुरु चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए शत शत वन्दन।



- *जहाँ माँस खाने की भावना होगी, वहाँ दया का नाश है।*
- *धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं रहता।*
- *अगर धर्म को टिकाना है तो अपने बच्चों को धर्म-संस्कारों से युक्त बनाओ।*
- *अशिक्षित और असंस्कारी बालक बड़े होने पर सभा-सोसाइटियों में हंसों के बीच में बगुलों के समान शोभाहीन मालूम देते हैं।*
- *सुसंस्कृत पुरुष ही अपने माता-पिता के गौरव को अक्षय रख सकते हैं।*



यस्य दृष्टि : कृपा वृष्टि :

■ श्री कौशल्याकुमारीजी म.

विश्व में कई आत्माएँ मानव के रूप में जन्म लेती हैं किंतु अज्ञानता और मोहमाया की भयंकर जाल में फंसकर संसार सागर में डूब जाती हैं। परंतु कुछ आत्माएँ नरतन पाकर आत्म आराधना एवं साधना के शिखर पर चढकर आत्मज्ञान के आलोक से जगत् को आलोकित करती हैं।

जैन जगत् के विस्तृत आकाश में पट्टधर जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान अनेक तेजस्वी ओजस्वी संत रत्न पैदा हुए हैं। उन महापुरुषों की हर माला में है अध्यात्मयोगी परमादरणीय प्रातःस्मरणीय नमस्कार सन्निष्ठ स्वर्गिय आचार्यदेव श्रीआनंदऋषिजी म.।

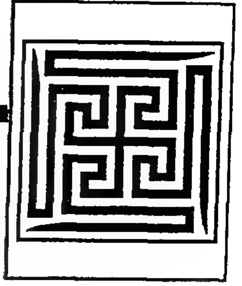
आपने समस्त जैन शासन में अजातशत्रु के रूप में ख्याति प्राप्त की थी। उसके मूल में एक ही तत्त्व था - वात्सल्यसे भरा हृदय। किसी भी सम्प्रदाय या मत पंथ का साधु या साध्वी हो श्रावक या श्राविका हो जैन या जैनेतर हो सभी को अपनत्व का भाव प्रगट करते थे। और वीतराग वचनों का सिंचन कर संतुष्ट करते थे।

मुझे परम पावन पवित्र पुरुष आचार्य देव के दर्शनों का कई बार सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ। आप द्वारा निर्दिष्ट शांत सुधारस का अमृत पान किया। आज भी वे अमृतबोल मेरे कर्ण कूहरो में गूंज रहे हैं। आपने मेरे नेश्राय में ३-३ भव्य आत्माओं को दीक्षाएँ देकर अनंत उपकार किया। हे परमोपकारी! आचार्य भगवंत आज आप देह से भरतक्षेत्र में नहीं हो लेकिन आपश्री का आनंद आनंद देनेवाला नाम अनंत गुणों से हजारो लाखो लोगों के मनमंदिर में प्रतिष्ठित है।

अरिहंत प्रभु की अनहद भक्ति से युक्त आपका सत् साहित्य चिंतन, मनन एवं स्मरण करने से अंतर का कषाय शांत हो जाता हैं। चित्त दुर्ध्यान से बचकर धर्मध्यान में स्थिर हो जाता है।

आपश्री अपने शरीर की प्रतिकूलताओं को सहन करके भी आगन्तुक भक्तों पर भावदया का विचार कर आत्महित के लिए योग्य मार्गदर्शन देते रहते थे। शान्ति सौहार्द्र और मैत्रीपूर्ण वातावरण में आपकी अपार श्रद्धा थी। आपश्री फरमाते रहते थे कि अमैत्री-क्लेष एवं अशान्ति का कारण है। मैत्री भाव से धर्म का प्रारंभ होता है। चित्त परमशान्ति एवं सुख का अनुभव करता है।

मैं अहमदनगर आचार्यदेव के दर्शनार्थ गई थी। पुनः घोड़नदी आने के लिए प्रस्थान किया, उस वक्त गुरुदेव ने तीन छंद और मंगलिक फरमाया। वह मेरे लिए अंतिम मंगलपाठ था। वन्दन करते समय फरमाया कि रास्ता छोड़ किनारे किनारे



चलना, बीच में खतरा रहता है। वह बोल मुझे बड़े अमोल लगे। वास्तव में रास्ते के बीच में चलने से एक्सीडेन्ट होने का खतरा रहता है। वैसे ही संसार के बीच में जाने से भी भयंकर खतरा है। संसार समुद्र के किनारे किनारे चलने से ही मजा है; बीच में जाना खतरे से खाली नहीं है। वे शब्द प्रतिदिन प्रतिक्षण स्मरण में आते रहते हैं। वे शब्द मेरे जीवन में आत्मसात् बने, वैसा मेरा पुरुषार्थ हो, प्रयास हो, यही प्रार्थना।

आपश्री का जिनभक्ति, गुरुसेवा, धर्मशास्त्र, आगमप्रेम, शासन प्रभावना सभी जीवों के प्रति करुणा, आदि अनंत गुणों से अलंकृत समरसता की मधुरता का अनुभव करनेवाला जीवन था। आचार्य देव के गुणों को जितने याद किये जायँ उतने कम है। एक जिह्वा से अनन्त गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

"नमोस्तु आनंद योगीराय,
नमोस्तु मैत्री सुविकासकाय।
नमोस्तु भव्याङ्गि व्रजभूषणाय,
नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु॥"

श्रमण नायक सन्मति पथदायक जिन शासन के सफल सेनानी जन जन के आस्था केन्द्रबिंदु स्वर्गीय आचार्य देव श्री आनंदऋषिजी म. सा. के चरणों में कोटि कोटि वन्दना।

घोड़नदी (शिरूर)
ता. २।६।९२



- *पिता की सतर्कता और माता की लगन ही बालक के उज्ज्वल भविष्य में सहायक बन सकती है।*
- *उस पुत्र के होने से क्या लाभ, जो न विद्वान ही हुआ और न धार्मिक ही बन सका।*
- *शिशु अनुकरण के द्वारा ही सीखता है।*
- *अपने बालकों को प्रारम्भ से ही संस्कारित करने का प्रयत्न करो।*
- *बालकों में प्रारम्भ से ही उत्तम संस्कार डाले जायँ। उनमें नीति और धर्म का बीजारोपण किया जाय।*
- *शिक्षा का कार्य है, बालक में जो सद्‌गुण गुप्त रूप से विद्यमान होते हैं उन्हें प्रत्यक्ष करना। चरित्र निर्माण करना तथा उसे सन्मार्ग बताना।*
- *जिन पुरुषों में शम भाव का अभाव है, वे मनुष्य पशु के समान ही हैं।*



श्रमण संघ के भाग्य विधाता का महाप्रयाण

■ साध्वी श्री त्रिशलाकुंवरजी

पुष्प खिलते हैं बहुत सुगंध देता है कोई कोई।

पूजा करते हैं बहुत पूजनीय होता है कोई कोई।

माला में प्रथम मणिका, उपवन में प्रथम पुष्प का तथा गगन में प्रथम नक्षत्र का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है वहीं वर्तमान के संतसमुदाय में मेरी आस्था के अमृतसिंधू जन-जन की श्रद्धा के केन्द्रबिन्दु परमाराध्य आचार्य भगवन्त का था।

कहा जाता है कि मनुष्य जब संसार में आता है तो वह रोता है और लोग हंसते हैं किन्तु उसे ऐसे कार्य करने चाहिए कि महाप्रयाण के समय वह हंसे और संसार उसके लिए रोता रहें। जिनशासन के शृंगार, श्रमण संघ के सूत्रधार, जैन जगत् की दिव्य विभूति परमपूज्य गुरुदेव का जीवन ऐसा ही था। उन्होंने अपने जीवन में शायर के कथन को आत्मसात् किया था -

जिंदगी ऐसी बिता, जिंदा रहे दिलशाद तू।

जब न हो दुनिया में तो, दुनिया के आये याद तू।।

सरलता आपके जीवन का शृङ्गार थी, सहिष्णुता निसर्गजात गुण था, क्षमा आपका स्वभाव था। आप श्रमण संस्कृति के सजग एवं समर्पित प्रहरी थे।

आप वाणी के जादूगर थे। आपके सदुपदेश से श्रोताओं का हृदय परिवर्तन होता था। वारांगना वीरांगना बनती थी। अनेकों शिकारियों ने शस्त्रों का परित्याग कर दिया, मद्यपियों ने मधुशाला जाना छोड़ दिया। धूम्रपान करनेवालों ने अपने बंडल और पैकेट फेंक दिये। इस प्रकार प्रवचन द्वारा अहिंसा की सुगंध झोपडी से लेकर राजमहल तक पहुंचायी।

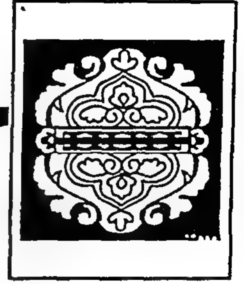
जैसे माली नाना प्रकार के पुष्पों से गुलदस्तों को संजोता है तद्वत् आपने अपने जीवनरूपी गुलदस्ते को अनेक सद्गुण रूपी सुमनों से सुसज्जित किया। ऐसे असंख्य गुणों से मण्डित श्रमण संघ के भाग्यविधाता का महाप्रयाण समस्त जैन समाज के लिए अपूरणीय क्षति है।

२८ मार्च की वह मनहूस घड़ी विषादमय संदेश लेकर आयी, जिसे सुनकर श्रोत्र जड़ हो गये, नेत्र सजल हो उठे, हृदय अवाक्-किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। हा! दैव!! यह क्या किया? क्या तुझे भी ऐसी दिव्यात्मा को प्राप्त करने का लोभ हो गया? तूने अनेकों को अपने प्रवाह में प्रवाहित किया, लेकिन आज एक अनूठा रत्न हमसे लूट लिया और हमें कंगाल बना दिया। तूने हमारी जीवन नौका के नाविक

को हमसे छीनकर मझधार में छोड़ दिया ड़गमगाने के लिए। मुझे तेरी नादानी पर दया आ रही है। तुझे मालूम नहीं था वह साधारण नहीं किन्तु असाधारण पुरुष था। उस दिव्यात्मा की गरिमा क्या कहूँ -

ऐ अजल! तुझसे ये कैसी नादानी हुई।
फूल भी वह तोड़ा कि गुलशन भर में वीरानी हुई।।

अस्तु! गुरुदेव का अजर अमर यशः शरीर हमें साधना के पथ पर अविराम गति से अग्रसर होने की प्रेरणा देता रहेगा। इसी अभिलाषा के साथ मैं आचार्य भगवन्त के प्रति श्रद्धानत हूँ -



गुरुदेव आपकी हितशिक्षाएँ
हम करते हैं याद।
जहाँ कहीं भी आप
हो देना आशीर्वाद।।

हम हिल मिल चलते रहे,
जिन पथ के अनुकूल।
गुरू भगवन्त लीजिए,
अर्पित श्रद्धा फूल।। ■ ■

मेरे परम आराध्य देव

■ साध्वी श्री कीर्तिसुधाजी

श्रद्धेय आचार्यप्रवर का जीवन बहुत महान था। वे इस युग के ज्योतिर्धर श्रमण रत्न थे। कालजयी युगपुरुष, श्रमणाकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र, जन जन के आराध्य, प्रतिपल वन्दनीय, अर्चनीय गुरुदेव का तपःपूत जीवन, गरिमा एवं महिमा मण्डित तेजस्वी जीवन, श्रद्धानिष्ठ जन के लिए सर्चलाईट के समान है।

आचार्य देव ज्ञान के "महासागर" थे। दर्शन की सरस्वती उनके मस्तिष्क की भूमि पर सदैव लहराती रहती थी, चारित्र की गंगा उनके ज्ञान सागर में मिलकर उसे एक अनोखा ही रूप प्रदान कर देती थी। वस्तुतः वे ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्र की त्रिमूर्ति थे। वे श्रमण संघ के महान आचार्य थे, किन्तु उनकी महत्ता का मूल आचार्यत्व नहीं था। सत्ता, अधिकार और प्रभुता नहीं थी, अपितु उनकी निरभिमानता थी जिसे उन्होंने चारित्रबल से प्राप्त किया था।

आचार्य भगवंत का जीवन आकाश की तरह विशाल, विराट् सागर-सा गंभीर, कामधेनु-कल्पतरु से भी अधिक सुखशान्ति का स्रोत, प्राणी मात्र के प्रति परोपकारी, कल्याणकारी एवं आशीर्वाद रूप था। आपका हृदय स्फटिक सा निर्मल-उज्ज्वल था। शरीर से भव्य आकर्षक शरीर सम्पदा तथा व्यक्तित्ववान थे।

आचार्य भगवंत के आगम रहस्य भरे अमृत वचनों को एक बार जो श्रवण कर लेता, उसके हृदय में वे वचन जादू जैसा



प्रभाव कर देते थे। व्यवहार जगत में जादू का प्रभाव अल्प काल के लिए होता है, पर उनकी वाणी के प्रभाव में अभूतपूर्व शक्ति थी। श्रोता के हृदय में वह ज्ञान सदा सदा के लिए स्थिर हो जाता। योग्य एवं उत्कण्ठित जिज्ञासु श्रमण-श्रमणियों को आगम वाचना देते हुए आप अपार आनन्द का अनुभव करते थे। स्मरणशक्ति की अनमोल निधि आपके पास सुरक्षित थी। स्मरणशक्ति का यह नजारा कि जो भी एक बार आपसे खुलकर मिलता उसे आप वर्षों के बाद भी पहचान जाते थे। "वे विद्वत्ता के अगाध सागर थे, सिद्धियाँ उनके चरण चूमती थीं, वैराग्य उनका अंगरक्षक था, संयम उनका जीवन साथी था और वे जीवन-मुक्त महान सन्त थे।"

वे सदैव साधना में संलग्न, आराधना में आसीन, उपासना में स्थित रहते थे। मेरा अन्तःकरण श्रद्धा-आप्लावित है। निम्न शब्दों में अपने भावों की अभिव्यक्ति करना चाहती हूँ -

"सारे जहाँ में तेरा, जलवा कमाल देखा,
हर कोई यहाँ से जाता, होकर निहाल देखा,
लौटा कभी न कोई, खाली तुम्हारे दर से
पूरा यहाँ पे होता, सबका सवाल देखा,
तू नित्यलीन रहता,
दुखियों के दुःख हरण में,
मेरा झुका है मस्तक,
गुरुवर तेरे चरण में।।"

जैसे आकाश के तारों को, पृथ्वी के रजकणों को, समुद्र की लहरों को, मानव हृदय की विचार तरंगों को, वर्षा की जलबिन्दुओं की गणना करना असंभव है उसी प्रकार आचार्य भगवंत के संयम और वैराग्यप्रधान जीवन की समस्त गुण-राशि अकथनीय है।

"मेरी लेखनी में वह बल कहाँ, जो गुण आपके प्रकाश करूँ।

अनन्त गुणों के आकर भगवन, कृपा हो ऐसी मैं भी विकास करूँ।।"

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मेरी दीक्षा उन्हीं पूज्य श्री चरणों की अनुग्रह छाया में सम्पन्न हुई। उनकी दी हुई शिक्षाएँ मेरे जीवन का पाथेय बनी हैं। गुरुदेव श्री की मुझ पर महान कृपा थी। श्री चरणों में पहुँचकर जिस आनन्द की अनुभूति होती थी, उसे स्मरण कर आज भी मैं गदगद हो उठती हूँ। आशीर्वाद मुद्रा में स्थित आपके वरदहस्त की स्मृति मेरे जीवन की पथप्रदर्शक है। आपका सान्निध्य मेरे लिए सदा-सर्वदा वरदान रहा है। मेरा हृदय आपके उपकारों के ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकता। आपका जीवन उपमातीत है। कवि की पंक्तियों में कहूँ तो -

"मैंने अपनी इन आँखों से, सच ऐसे इन्सान को देखा है।

जिसके बारे में सब कहते हैं, धरती पर भगवान को देखा है।

अन्त में ऐसे महापुरुष के स्मरणमात्र से जीवन कृतार्थ हो जाता है, अतः मैं उनका पुण्य स्मरण करती हुई उनके पावन

चरणों में अपने श्रद्धासुमनों की माला अर्पित करती हूँ।

"इन चरणों की धूलि लेने, भक्त अनेकों आते थे,

अमृतमय वाणी सुनकर के, जीवन धन्य बनाते थे।

'वल्लभकीर्ति' तारणहारा आनन्दगुरुवर है प्यारा,

सद्गुण की सौरभ से जिनका महका जीवन है सारा।।" ■ ■



कहाँ गये? मेरे गुरुदेव

■ साध्वी ज्योत्स्नाजी

फूल एक गुलाब का मुरझा के चला गया।
त्याग के अनुराग से खुशबू जगत को दे गया।

"म्हें तो आय सकुँ नहीं आप आवण री भावना रखजो" जब जब भी गुरुदेव के इस वाक्य को याद करती तो न जाने मन में कितने स्वप्न संजोये कि शीघ्रातिशीघ्र शाजापुर पहुँचकर पुनः गुरुदेव के श्री चरणों में पहुँचेंगे। भावना, भावना रह गई। हम नहीं गये, गुरुदेव हमे छोड़कर चले गये। हमारे स्वप्न को साकार करने नहीं दिया।

सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् अकस्मात गुरुदेव के इस वसुधा से उठ जाने के दुःखद समाचार सुने तो हृदय विदीर्ण हो गया। स्तब्ध रह गये। मन विश्वास नहीं कर रहा था। किन्तु सत्य तो सत्य ही था। सत्य को स्वीकार करना ही पड़ा। अविश्वास का महल शीघ्र ही ढ़ह गया। एक अलौकिक धर्म-सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया। क्रूर काल ने उस दिव्यात्मा को एक ही झपाटे में हम शिष्यों एवं समाज के हाथों से छीन लिया।

दीक्षा के ग्यारह वर्ष पश्चात् मेरा प्रथम और गुरुदेव का अंतिम चातुर्मास था। मेरी जिन्दगी के वह सुनहरे दिन थे, जब आप श्री के पावन चरणों में बैठकर सीखती थी। अनायास स्मृति-पटल पर वे दिन अंकित हो उठते हैं। अतीत के वो दिन, वो मधुर स्मृतियाँ मन को झकझोर देती हैं। हम जितने भाग्यशाली थे उतने ही भाग्यहीन भी थे। भाग्यशाली थे तो आप श्री के सान्निध्य में साढ़े ग्यारह महिने रहे; किन्तु भाग्यहीन भी उतने ही थे कि अन्तिम समय में दो माह के लिए आप से दूर हो गये। आप श्री के चरणों में हमारा जो समय बीता वह चिरस्मरणीय है।

आप एक महान आत्मा थी। आप श्री के दर्शन के लिए भक्तों की भीड़ लगी ही रहती। व्यक्ति को भूख लगती है, भोजन करता है, उसकी क्षुधा दूर हो जाती है। प्यास लगती है, पानी पीता है, तृप्त हो



जाता है, किन्तु गुरुदेव के दर्शन की प्यास कभी मिटती नहीं थी। एक बार जो भी आप श्री के दर्शन कर लेता, उसकी दर्शन की प्यास बढ़ती ही जाती, वह कभी तृप्त नहीं होता, अघाता नहीं था। जो भी आपश्री के चरणों में आता आपकी चरण-धूलि को मस्तक पर लगाकर अपने आपको धन्य मानता। आप श्री के पास ऊँच-नीच का, अमीर-गरीब का भेद नहीं था, जो भी, जब भी, जिस स्थिति में आता, जो चाहता वह पा लेता था। सब के साथ आपका एक-सा व्यवहार था। विद्वानों एवं बड़ों के साथ आप हँसकर एवं प्रेम से बोलते थे तो बच्चों के संग भी उतने ही वात्सल्य से बोलते थे। आपश्री की ज्ञान पिपासा बहुत तीव्र थी। आप श्री तप-संयम-साधना, आचार एवं क्रिया के प्रबल साधक थे। इतने महान आचार्य पद पर स्थित होने पर भी आपके जीवन में निरभिमानता थी। राग-द्वेष रूपी कीचड़ से आप सदैव दूर रहे। विनय, नम्रता, सरलता, सहिष्णुता, क्षमा, धैर्य, करुणा एवं दया आदि सद्गुणों से आपका जीवन ओतप्रोत था।

क्या लिखूँ? गुरुदेव के बारे में जितना भी लिखूँ उतना ही कम है। शब्द इतने स्थूल हैं कि शब्दों को सीमा में नहीं बाँध सकती। इस एक जिह्वा के द्वारा अनंत गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ। हरघड़ी, हर क्षण, हर समय गुरुदेव की याद आती है। जब जब भी आप श्री के चरणों में पहुँचती एक अद्भुत आनंद की अनुभूति होती, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकती। जिसने गुरुदेव के दर्शन किये, वही उसकी अनुभूति कर सकता है, उसीने आनंद की अमूल्य निधि प्राप्त की। ऐसी आनंद की अमूल्य निधि लूट ली गई। अब कहाँ वह मोहिनी मूरत, जिसके लिये लाखों भक्त तरसते हैं, जो कि आपके द्वार पर दौड़कर आते थे।

गुरुदेव! अब कब आपके द्वार के खुलने की प्रतीक्षा करूँ? कब आपके उठने की राह देखूँ? किस खिड़की से झांकूँ? क्या हम शिष्य-शिष्याओं पर इतनी ही कृपा कि हमको वेदना के सागर में डुबोकर, चिर वियोग की दीवार खड़ी कर आप चले गये? कहाँ गये? कहाँ ढूँढ़ें? कोई भी तो पता नहीं! गुरुदेव? आप चले गये, आपकी यादें शेष रह गई। आप चले गये, आपकी कहानी रह गई। आप चले गये, आपकी महक रह गई। आप चले गये, आपकी रोशनी रह गई। आप चले गये, आप अमर हो गये। आप चले गये, आपकी कहानी तो बहती बूँदे ही कहेंगी। आप चले गये, आपकी कहानी तो अब देश की माटी ही कहेगी।

गुरुदेव आज हमारे बीच में नहीं है, पर उनके कार्य आज भी अमर हैं।

'मौत उसकी है करे जमाना जिसका अफसोस।
यों तो दुनियाँ में सभी आते हैं मरने के लिये।।'

अंत में भौतिक शरीर से गुरुदेव की छत्र-छाया हम पर नहीं है; किन्तु उनका वरदहस्त परोक्ष रूप से युग युग तक हम पर बना रहे, इसी भावना के साथ उस दिव्यात्मा के चरण सरोजों में श्रद्धा सुमन अर्पण करती हूँ।





My Most Unforgetful Character

■ Sadhvi Shruti Darshanaji

In the Garden of world, Many flowers bloom and will bloom. Acording to the Irresistable and ever-lasting laws of nature. They all laugh for a time, feel pride for their glory and in the end, merge in the limitless infinite past. But that bunch of beautiful flowers are diferent which fill the world with fragrance, which intoxicate despiring hearts with hope and enthusiasm, which influence the world with its qualities and whose spotless beauty is able to wipe away the dust of the whole world. The Existance of that Flower is Most precious which sacrifices its Beauty and Its matchless Glory for the sake of others. Otherwise, flowers blook and die away in the worlds garden.

The Same applies to the existance of the man, The life of great spiritual guide Acharya Shreejee Bloomed. His unique virtues shine out, his power of purifying the world is revealed but all this is used for the sake of improving the lot of man kind.

My endeavour is to give only a brief sketch of his holy life. The life of acharya Shreejee is being outlined here for the betterment of others. His life was able to infuse new life in the world and inspire new hope in all. His life was an actual demonstration for the precious teachings of lord Mahaveera. He profounded and preached the princ- iples in such a way that can easily be followed by everybody.

Acharayashriji was a Great divine and pure soul who have completly annihilated the worldly Bondages. He had achieved a complete control over passions and emotions and had attained perfect insight by his soul force and bright of spiritual knowledge.

Acharayashriji was our surest and safest guide. He was an embodi- ment of love and mercy. He was a precious jewel of Uainism for which he has been crowned as "Acharaya Samrat" He was an image of selfless love and reservoir of pity. He was incarnation of purity simplicity humility and fraternity. He led a sublime and most useful life successfully in all respects. He was a great source of inspiration for all mankind.

It is said that saints are gods realized spritual magnets. Teachings of such great saints give not only spiritual solace but also to work for spiritual upliftment of the people. They are silent protectors and promoters of culture.

It is said that they are great who are brilliant lamps that kindle the



darkness of ignorance. They are the disstroyers of sin and redeemers of the fallen, cleaners of besmeared, wipers of the miseries of the miserable.

He was an impressive and inspired preceptor as well as brilliant orator much loved by the public. He was well versed in education, spiritiaual knowledge and moral behaviour. His weighty and thought- provoking sermons brought the strayed men to right path. His teachings deepened our ideas and thoughts broden our vision, hightend our mental horizen, strengthining our mind with a new vigour and enlighting our future generations for the betterment of life.

"Many a things......to me....Fate had refused

Many a time, I felt lost and confused

Yet-Gurudev's words, came ringing and consoled me

Thus singing -O Mind, to things

you don't get fused

Bad.....Bad is clinging

Stay apart and watch the game

Futile futile it is to be after name and fame,

How Good O! How Good

No, its best, not only good

This Great Rishi - from his own plate

He fed all of us his food

It elated everbody's mood

Food tasted like nectar

And so the elated flew far to the horizon,

Crossed, knew not....how many hectare."

Heroic efforts were made to save the life of reverence,

Beloved Acharya Shreeji

"He fought, fought the Battle with all his might.

He is out, out of human sight, beyond day and night

O Lord! let him reach your height,

We looked at him with awe and he got cought up in his cruel jaw was "He cruel?" No..No... His lamp of life there was no more fuel.

The spelling of Acharya Shreeji sketches the virtues of his life and his message to the world.

A – Abnegation is the motto of life.

N – Non violence is the Foundation of all vratas.

A – A good heart is worth a Gold.

N – Noble feelings and noble thoughts be Master of thy anger.

D – Deiligence is the mother of Good Luck.

R – Rightousness is root of our life.

I – Intigrity without knowledge is weak and useless.



S – Sympathy is the key that fits the lock of every heart.

H – Humility is the foundation of all virtues

I – IlLuminate your Soul with knowledge.

Thou were the treasure to the poor, the nectar to the diseased, the shelter to the helpless, the bliss to the miserable.

Much is left untold, Much is too briefly told, too poorly described this is a feelable attempt to show an outline only of the life of the great sage. The loss however, is irrecoverable and tremendous to the entire world.

Acharya Shreeji is a precious pearl

I am only a little girl

He is a valuable hero

But i am only a zero



उस दिव्य आत्मा के प्रति

■ साध्वी भावनाजी

नैन भर-भर आते हैं, प्राण तड़फते तुम बिन।

अय गुरुवर! कहाँ जा विराजे, देख हमारे अवगुण।।

प्रातःकाल जब सुना कि आचार्य देव चले गये हैं। तो कान यह शब्द सुनने के लिए तैयार नहीं थे। हृदय बोल उठा - क्या कहा? आचार्य देव चले गये हैं! क्या सचमुच चले गये हैं! नहीं-नहीं ऐसे शब्द मत बोलो। वे कृपालु, वे दयालु, वे करुणा के सागर, वे दुखियों के प्राणाधार हमें असहाय छोड़कर इतनी शीघ्रता से प्रयाण नहीं कर सकते। परन्तु जब चारों ओर से कोलाहल सुना, प्रत्येक चेहरे पर उदासी नजर आई, प्रत्येक के नैनों से आँसुओं की झड़ी दृष्टिगोचर हुई तो मन को विश्वास दिलाना ही पड़ा कि आचार्य भगवन तो सचमुच ही हमारे से सदा-सदा के लिए जुदा हो गये हैं। हृदय दहल उठा, प्राणों पर वज्र का सा आघात हुआ, मन तड़पने लगा, वाणी क्रंदन भरे स्वरों से बोल उठी, अय काल! तुझे यह क्या सूझी? तूने हमारे मसीहा को हमसे छीन कर हमें अनाथ कर डाला है।

धरा रो रही है, आसमां रो रहा है।

तेरी याद में हे गुरुवर! सारा जहां रो रहा है।

गुरुदेव! आप को पा कर यह जैन समाज कितना गौरवान्वित था। वह माँ कितनी पुण्य-परिपूर्णा है जिस की गोद ऐसी दिव्य ज्योति से भर गई। जिसने विश्वभर में ज्योति वितरित की। वह



जन्मभूमि भी भाग्यशालिनी है जहाँ ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया। वह संघ भी सौभाग्यशाली है जिस को ऐसे महान आचार्य रत्न की उपलब्धि हुई।

गुरुदेव! आपके सद्गुणों का वर्णन शब्दातीत है। क्यों कि आपके गुणों का न ओर है न छोर है। ऐसा प्रतीत होता है एक विशाल गुणों का सागर ठाठें मार रहा है। मैं कहाँ से प्रारम्भ करूँ? कैसे करूँ? क्या लिखूँ? लेखनी तो उठा बैठी हूँ परन्तु कुछ समझ नहीं आता कि मैं पहले कौन से गुण का वर्णन करूँ? ज्ञान का वर्णन करूँ या तप-जप का? विद्वत्ता का करूँ या विनय का? विनम्रता का वर्णन करूँ या सहृदयता का? अथवा वात्सल्य का करूँ? या फिर पर-दुःख-कातरता का करूँ। मेरे जैसी तुच्छ बालिका इस विराट् सागर के लिए कह भी क्या सकती है? यह दीपक अपने सूर्य के लिए क्या कहे? यह बिन्दु अपने सिन्धु के लिए क्या कहे? यह गागर अपने सागर के लिए क्या कहे? यह पुजारिन अपने पूज्यवर के लिए क्या कहे?

गुरुदेव भले ही आप तन से चले गये हैं पर हमारे हृदय में आप चिरकाल तक विद्यमान रहेंगे।

सब कहते हैं गये, चले गये हजूर हैं।

तन से भले ही चले, पर गुणों से आप जरूर हैं।

वास्तव में महापुरुष जब अपने नाशवान तन का परित्याग कर देते हैं तो वे अपने गुणों से अजर अमर हो जाते हैं। क्या राम और महावीर अमर नहीं हुए? अब मन के उद्गारों को कहाँ तक व्यक्त करती चली जाऊँ। रुकना तो पड़ेगा ही। अन्त में अधिक न कहती हुई मैं आपके चरणों में अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि आपकी कृपा दृष्टि इस जैन समाज पर युग-युगान्तरों तक बनी रहे। मुझे भी आप शक्ति प्रदान करें ताकि मैं निरंतर आपके पदचिन्हों पर अग्रसर होती हुई इस जैन समाज के लिए कुछ उपकार कर पाऊँ। पूर्ण रूप से संयम-साधना करती हुई अपना आत्म-कल्याण करूँ।

ज्ञान की ज्योति कहूँ, या सीप का मोती कहूँ।

भावना की चरण रज से, पापकाल धोती रहूँ।

■ ■

- *शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य जीवन की परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता प्राप्त करता है।*
- *जो विद्या सद्गुणों पर आधारित होती है तथा जिसमें धार्मिक विचारों का समावेश होता है, वही विद्या जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाती है।*



मन मन्दिर के दिव्य देव : आचार्यश्री

■ साध्वी प्रियदर्शनाजी

इस विश्व वाटिका में कितने सुमन खिलते हैं और मुरझा जाते हैं। आकाश में कितने तारे चमचमाते हुए उदय होते हैं और अस्त हो जाते हैं। ऐसे ही इस धरातल पर मानव के रूप में अनेकों आत्माएँ अवतरित होती हैं और चली जाती हैं।

हाँ! कुछ उत्तम आत्माएँ इस रूप में भी जन्म लेती हैं जो अपने आदर्शों एवं विशेषताओं से मानव संसार को चमत्कृत कर देती हैं। उनका जीवन कालान्तर में भी मानव को ज्ञान का आलोक देता है। जैन धर्म दिवाकर, राष्ट्रसन्त, परम श्रद्धेय आचार्यसम्राट् पूज्य श्रीआनन्दऋषिजी म. सा. भी उन्हीं महापुरुषों में से थे, जो महावीर के संदेश सौरभ से जन-जीवन को सुरभित कर रहे थे।

अम्बर का तुझे सितारा कहूँ,
या धरती का रत्न प्यारा कहूँ!
त्याग का एक नजारा कहूँ,
अथवा डूबतों का तुझे सहारा कहूँ!!

आचार्यश्री जी क्या थे-

परम दार्शनिक, आगम विशारद, साहित्य वाचस्पति, सिद्धहस्त लेखक, उदारमना, क्रिया के धनी, गहन चिन्तक, परम तत्त्वज्ञ, संस्कृत, प्राकृत, ऊर्दू एवं अंग्रेजी आदि भाषाओं के विशिष्ट विद्वान, वाणीभूषण, मधुर गायक, श्रमण संघ-नायक, श्रमण संघ शासक, श्रमण संघ सूर्य एवं श्रमण संघ के सर्वस्व थे आचार्य सम्राट पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म. सा.। आचार्य देव की महानता, विशालता, उदारता, सरलता, विनम्रता, सहृदयता, व्यवहार कुशलता, वात्सल्यता, अध्ययन-परायणता, कर्तव्य निष्ठता, सुशीलता, दिव्यता, भव्यता और सहनशीलता आदि गुण किसी से छिपे हुए नहीं हैं।

जो गुण एक आचार्य में होने चाहिए वे सभी आचार्य देव में निहित थे। अर्थात् *आचार्य की सम्पदाओं से सम्पन्न थे।* यही कारण है कि आज आप श्री जी जन-जन के श्रद्धा के केन्द्र बने हुए हैं।

जैसे फूलों की महत्ता उसकी सुगन्ध है, दीपक की महत्ता प्रकाश है, वैसे ही मनुष्य जीवन की महत्ता उसके सद्गुणों से है। इसी प्रकार आपश्री जी सद्गुणों के भण्डार थे। आपश्रीजी ने जैन संस्कृति के गौरव को अक्षुण्ण बनाया और विश्व के कण-कण को सुगन्धित किया।

नाम रोशन कर गए,
गुणों का ना कोई पार हैं
लेखनी ना लिख सके,
जो आप का उपकार है।

वास्तव में जैन समाज पर आपका जो उपकार है वह अवर्णनीय है। जैसे सागर को गागर में भरना असम्भव है, ऐसे ही



आपश्रीजी के असीम गुणों का वर्णन करना मेरी लेखनी और वाणी से बाहर की बात है।

जिस प्रकार गुलदस्ते में रंगबिरंगे अनेक प्रकार के पुष्प अपनी अपनी सौरभ विखेरकर मन को आह्लादित करते हैं, उसी प्रकार मेरे हृदय के सम्राट् आचार्य देव का जीवनरूपी गुलदस्ता भी नानाविध सुमनों की सौरभ से सुरभित है।

आपका व्यक्तित्व हिमालय से ऊँचा, सागर से गंभीर, मिश्री से मधुर और नवनीत से भी सुकोमल था। गुरुदेव चिन्तामणि के सदृश सब की चिन्ताओं को दूर करते थे। कामघटवत् मनोकामनाओं को पूर्ण करते थे। मोमबत्ती की तरह प्रज्ज्वलित होकर जगत् को ज्ञान का प्रकाश देते थे। भटके हुए को सन्मार्ग दिखाते थे। इसीलिए हम आपको "तिन्नाणं तारयाणं" कहते हैं। इस क्रूर काल ने आप को हम से छीन लिया सदा-सदा के लिए । उनकी छत्रछाया जो हमारे ऊपर थी पर लगता है प्रकृति को मंजूर न था। इसीलिए इस क्रूर काल को सहन न हुआ और सदा-सदा के लिए हम से छीन लिया और हमें निराधार बनाकर चले गए।

अब तो लग रहा है पहाड़ टूट गया, किसकी ओट लें? पावनगंगा बह गई, किसमें गोते लगाएँ? चिन्तामणि, कामधेनु एवं कल्पवृक्ष के समान महान विभूति हमारे से अदृश्य हो गई, अब चिन्ताओं का शमन, कामनाओं की पूर्ति कैसे होगी? शरण विहीन हो गए, अब कौन सहारा देगा?

आप अब आ नहीं सकते,
आपको हम अब ला नहीं सकते।
लाखों कोशिशें करें
मगर आपको अब हम पा नहीं सकते।

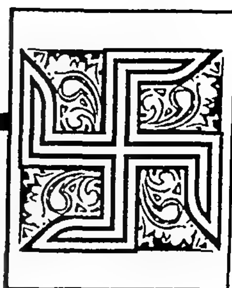
मेरे पास ना इतना ज्ञान बल है और न ही भावानुरूप भाषा! जैसे एक नादान बालक अपने नन्हे नन्हे हाथों को फैलाकर असीम आकाश को अपने हाथों की परिधि में बांधना चाहता है वैसे ही मैं भी श्रद्धातिरेक से गुरुदेव के सम्बन्ध में कुछ लिखूं, मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। अधिक क्या लिखूँ? अन्त में इतना ही-

आपश्री जी की आत्मा जहाँ पर भी विराजमान है, वहाँ आत्मा को शांति मिले। मैं अपनी श्रद्धा का निष्कम्प दीप जलाकर भावों के अगणित पुष्पों से अपनी श्रद्धांजलि गुरु चरणों में समर्पित करती हूँ, स्वीकार करें। आपकी कृपा दृष्टि सदा बनी रहे और आपके पथ की पथिका बनकर अपने जीवन का उत्थान करूँ।

इन्हीं शब्दों के साथ-

खोजती हूँ मैं स्वयं ही
क्या तुम्हें अर्पित करूँ!
हाँ! मुझे कुछ याद आया
श्रद्धा सुमन समर्पित करूँ।।





ऊर्जस्वल व्यक्तित्व

■ साध्वी प्रमिलाजी

"धरा रो रही है, गगन रो रहा है,
नयन ही नहीं, आज़ मन रो रहा है!
तेरी याद में आज आचार्यश्री!
जहाँ रो रहा है, वतन रो रहा है!!"

स्वर्ग प्रयाण! देवलोक गमन। वह भी आचार्यश्री का? इस हृदय विदीर्ण समाचार श्रवण से दिल भर आया। असह्य वेदना! ऐसी भयंकर वेदना! मानो किसी ने एक साथ ही तन-मन पर हजारों हजारों बाणों का ही प्रहार कर दिया हो!

आचार्यश्री सदा सदा के लिए विदाई ले गए हैं, इस दुःखद समाचार से हृदय पाषाणवत् सन्न रह गया, और क्या हुआ?

फुल्लां बांग मुरझा गए तुरन्त चेहरे,
गुम सब दे होशोहवास हो गए!
जैन जगत दे चमकते दिवाकर प्यारे,
आज आचार्यश्री स्वर्गवास हो गए।"

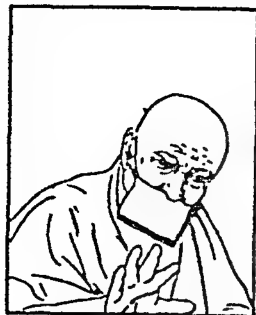
ऐसे प्रतीत हुआ, मानो एक बहुत भारी भूकम्प आ गया, ऐसा भूकम्प जिसने लाखों आशाभवनों को एक क्षण में धराशायी कर दिया।

जैन जगत दा हो गया दिल टुकड़े,
खबर सुनी ते लगी ए तीर बन के!
खबर सुनी ते मुख तो आह निकली,
दिल थाम बैठे दिलगीर बन के!!
ताब किथे जिगर ए सहे सदमा,
बह चलया अखियो नीर बन के!
आई मौत कम्बख्त बे वक्त जालिम!
बुरी जैनियों दी तकदीर बन के।"

काल सदा प्रवहमान ही रहा है। इस संसार में जो आता है उसे एक दिन जाना ही पड़ता है। यह एक अटल सत्य है लेकिन-

(मरा नहीं करते मर कर भी,
नाम रहे जिन का जिन्दा है।
खुदा बहाता है आंसू,
मौत होती है शर्मिन्दा।)

भारत वर्ष की पवित्र मिट्टी में देव गुणों से सम्पन्न महापुरुषों को जन्म देने की विशेष क्षमता है। यहाँ अनन्त काल से अलौकिक विभूतियां लोक स्वरूप अवतरित हुई हैं। विश्व में भारतीय संस्कृति और दर्शन इन्हीं अलौकिक विभूतियों के कारण जीवित हैं। इन्हीं महापुरुषों की श्रेणी में हमारे विश्व वल्लभ, स्नेह सागर संघ सरोवर के राजहंस, श्रमण संघ के भीष्मपितामह आचार्य भगवन्त पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म. सा.। जो जैन संस्कृति के ऐसे मणि दीप थे। जिसके प्रकाश में इस सांस्कृतिक भवन का कणकण आलोकित हो उठा था। वे ऐसे जागरण गीत थे। जिन की स्वर लहरी को सुनते ही जन-जन जागृत हो उठता था, मोह-निद्रा



को त्याग देता था। वे अध्यात्म-गगन के ऐसे सूर्य थे जिस के प्रकाश में अज्ञानान्धकार दूर हो जाता था। वे ऐसे कल्पवृक्ष थे जिसकी छाया में पहुँचते ही किसी का मनोरथ अपूर्ण रह ही नहीं पाता था। वे पूर्ण पुरुष पुरुषोत्तम थे।

जिनवाणी का एक सूत्र उन पर बिल्कुल ठीक उतरता है, जो इस प्रकार है, सिंह के समान पराक्रमी, हाथी के समान स्वाभिमानी, वृषभ के समान भद्र, मृग के समान निस्संग, सूर्य के समान तेजस्वी, सागर सम गम्भीर, मेरु के समान निश्चल, चन्द्रमा के समान शीतल, मणि के समान कान्तिमान, पृथ्वी के समान सहिष्णु, सर्प के समान अनियत आश्रयी, तथा आकाश के समान निरवलम्ब! बस ऐसे थे मेरी श्रद्धा के केन्द्रं आचार्य श्री।

आप वास्तव में शान्तिसागर व शान्तिप्रदाता थे। द्वांदशविध और पञ्चविध संयम से परिपूर्ण मुखाकृति ऐसी प्रतीत होती थी, मानो देवाधिदेव शक्रेन्द्र की आकृति हो!

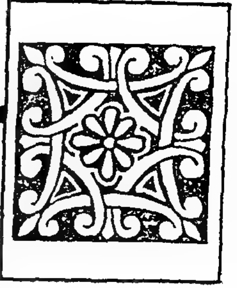
आप की ज्ञान-गरिमा अगाध थी। आपने लगभग १८ भाषाओं का गम्भीर अध्ययन एवं विविध शास्त्रों का मन्थन कर जो नवनीत निकाला उसमे लक्ष-लक्ष मानवों को आध्यात्मिक पोषण मिला, आत्मशान्ति प्राप्त हुई तथा लोक जीवन में निखार आया। आपने इस ज्ञान को प्रवचनों द्वारा तो वितरित किया ही था, पुस्तकों में गद्य-पद्य के माध्यम से भी प्रचारित किया। आप के प्रवचन में तत्वदर्शन के बहुरंगी विविध रत्न विकीर्ण होते थे, जिन्हें श्रोता अपनी क्षमतानुसार ग्रहण कर अन्तःकरण से आप्लावित होते जाते थे।

आचार्यश्री का जन-जागरण, नैतिक प्रचार, शैक्षणिक विकास एवं धार्मिक आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान रहा है। आपके सदुपदेशों से विभिन्न स्थलों पर धार्मिक पाठशालाएँ, छात्रालय, स्वाध्यायकेन्द्र, चिकित्सालय, धार्मिक परीक्षा बोर्ड आदि पारमार्थिक संस्थाएँ स्थापित होकर जनता जनार्दन की सेवा में संलग्न है।

आप का जीवन-कलश स्नेह सुधा से ओतप्रोत था, आप के निकट आनेवाला, स्नेहसुधा का पान कर अपने आपको धन्य एवं कृतकृत्य मानने लगता था। आप करुणा की साक्षात् मूर्ति थे। आपके व्यक्तित्व की पावनधारा में धर्म की गंगा, संस्कृति की यमुना और साहित्य की सरस्वती की त्रिवेणी का अद्भुत संगम देखते बनता था! ठीक ही कहा है।

'जिन्दगी की वो इक आला हस्ती थे,
जिन्दगी में वो फकीराना मस्ती थे,
जिन की शान में है कौम का सिजदा,
जिन्दगी में चमकती रोशनी की हस्ती थे।'

मैंने अनुभव किया जब लुधियाना में आप श्री का चातुर्मास था आप का जीवन-निर्मल, विचार-उदार और प्रकृति



सरल व सरस थी।आप की वचन गरिमा अद्भुत थी, आप की वाणी में जादू एवं भावों में हृदय को आलोकित करने की अकथनीय क्षमता थी। आप उच्च कोटि के साधक थे। पुरुषार्थ ही जीवन का लक्ष्य था अथक परिश्रम करना ही जीवन-चर्या थी। सारा दिन अध्ययन -अध्यापन लेखन में संलग्न रहते थे, विभ्रान्ति को कहीं स्थान नहीं था। आप की स्मरण शक्ति अनोखी थी - "जीह्वाग्रे वसति सरस्वती" उक्ति को चरितार्थ कर रही थी।

आप का जीवन अनेकानेक चमत्कारी घटनाओं से परिपूर्ण था। बड़े से बड़े उपसर्ग, कष्ट आने पर आप कभी घबराए नहीं, अपितु साधना-पथ की डगर पर दृढ़ता से आगे बढ़ते रहे। यही कारण है आप महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, यू. पी., सी. पी. आदि अनेक प्रान्तों में पैदल यात्रा कर के अपनी पीयूषमयी एवं प्रभावकारी वाणी से भ. महावीर की अलौकिक वाणी का प्रचार प्रसार किया। यद्यपि आप संस्कृत, हिन्दी, फारसी-महाराष्ट्री, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के विद्वान एवं ज्ञाता थे, तथापि आप की भाषाशैली अति सरल होती थी। आप अक्षयामृत के सिन्धु थे। जहाँ आप के अन्तःकरण में अथाह ज्ञान का समुद्र ठाठें मार रहा था, वहीं आपके मुखमण्डल पर अखण्ड शान्ति भी अठखेलियाँ करती थीं। आप स्वयं आनन्दमय थे, दूसरों को भी आनन्द प्रदान करने वाले थे।

आपने जीवन में साधना का ऐसा दिव्य दीप जलाया, जिसके अनुपम आलोक में अनेकों प्राणियों ने आपके सुमधुर उपदेशों को श्रवण कर अपने कषायों एवं विषयासक्ति से मुक्ति प्राप्त की। ऐसे थे हमारे परम श्रद्धेय जीवन सौरभ कमल, बहुश्रुत चरित्र चूड़ामणि शान्ति क्षमा की साक्षात् प्रतिमा। जिन्हें भयंकर काल बली की चाल ने २८ मार्च को देहरूप से यद्यपि हम से छीन लिया है। परलोक में पहुँच गए हैं, किन्तु उनके ज्ञान आत्मरश्मि का दिव्य प्रकाश विश्व के लिए सर्चलाइट देता रहेगा। अन्त में इनशब्दों से

– (तुम इस दिल से दूर नहीं हो,
सिर्फ दूर है देह तुम्हारा!
जब तक सूरज चाँद रहेगे,
चमकेगा शुभ नाम तुम्हारा।)
कोटि! कोटि!! नमन वन्दन!

■ ■

- *जो क्रोधी, अहंकारी, कटुवादी, कपटी तथा अविनीत शिष्य होते हैं, वे जल में पड़े हुए काष्ठ के समान संसार-सागर में बह जाते हैं।*
- *महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और कभी भी व्यर्थ न जाने वाला होता है।*



संघ सुमेरू आचार्यश्रीजी

■ साध्वी निर्मल

"जन-जन मन्दिर में आलोकित,
किए हजारों ज्ञान प्रदीप,
करूँ वन्दना गुरु चरणों में,
जो थे धर्म के सुन्दर द्वीप!"

आगम गगन चन्द्रिका, परम विदुषी महासती श्री कौशल्याजी म. आदि १० ठाणा, हमें उपप्रवर्तिनी महासती श्री अभयकुमारीजी . के श्री चरणों में आए हुए अभी कुछ ही दिन हुए थे। बड़े हंसते-हंसते दिन व्यतीत हो रहे थे।

उधर अकस्मात प्रभात होते ही २९ मार्च १९९२ (चैत्र कृष्णा ११) शनिवार सं. २०४८ को सूर्य अभी उदित ही नहीं हुआ था, तभी स्थानीय सेवक ने आकर बतलाया कि आपके सबसे बड़े गुरुजी का देवलोक हो गया है। यह सुनकर हमें, किसी को भी विश्वास ही नहीं हुआ, कि हां सचमुच हमारे भगवन आचार्यश्रीजी का स्वर्गवास हो गया है।

इतने में ही हमारे पास बहिन सुदेश दर्शनार्थ आई तब हमने उनसे कहा जाओ बड़े स्थानक में श्री रत्नमुनिजी म. श्री से पूछकर आइए क्या यह बात सत्य है या किसी ने असत्य ही कह दिया?

बहिन सुदेश दौड़ी-दौड़ी गई श्री चरणों में पूछा तो मालुम हुआ, कर्ण विवरों में आवाज पड़ी कि हाँ सचमुच हमारे रहबर चले गए, चले गए, हैं, चले गए, कहाँ चले गए? यह सुनते ही एकदम सभी साध्वियों में सन्नाटा सा छा गया। पाँवों तले जमीन खिसकने लगी, मानो पैरों में जान ही न हो। हाय-हाय-हाय ये कैसा कठोर वज्राघात हुआ।

घरों-घरों में, गली-गली में, मुहल्ले-मुहल्ले में, बाजारों-बाजारों में सभी स्थानों में एकदम सन्नाटा सा छा गया। ओह! ये कैसा मनहूस दिवस आया, जिसने हमारे आचार्य भगवन, हमारे तारणहार, हमारे पतवार, संघ के कर्णधार, हमारे सिरमौर, शान्ति के देवता हमें छोड़ गए हैं। और आप सदा के लिए स्वर्गों में जा विराजें।

आपश्रीजी अपने पीछे तप-त्याग का अलौकिक प्रकाश छोड़ गए हैं। जब तक नभ पर ज्योति मंडल रहेगा, तब तक इस विश्व में आपका नाम ज्योतिर्मय नक्षत्र की भाँति चमकता रहेगा।

"आपश्रीकी हित-शिक्षाएं,
सदा करेंगे हम सब याद।
जहाँ कहीं भी आप विराजें,
करें प्रदान शुभ आशीर्वाद।
प्रत्येक नर-नारी उत्साहित होकर
जैन धर्म का करे प्रचार।
यही कामना मेरी भगवन,
वन्दन करती बारम्बार।"

हे प्रभो! आप अनन्त ज्योतिर्मय सूर्य है, पूर्णतः निर्मल हैं। आपश्री में किसी भी

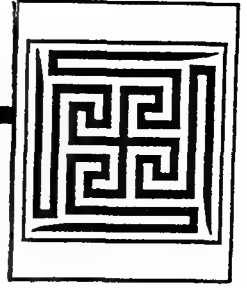
तरह की जरा भी मलिनता नहीं है। अन्धकार से परे हैं, जहाँ तू प्रकाशमान है, वहाँ अन्धकार कैसे रह सकता है। तू शिव अर्थात् कल्याण एवं आनन्द रूप है। तेरे सिवा कल्याण का अन्य मार्ग नहीं है।

अपने त्याग, वैराग्य, कंटीले मार्ग पर चलकर भयंकर से भयंकर कठिनाइयों में भी अपने को कभी डावांडोल नहीं होने दिया। हंसते मुस्कराते सभी बाधाओं को सहन किया। विकट से विकट प्रसंग में भी न्याय तथा संयम पथ से कभी भी विचलित नहीं हुए, बल्कि चट्टान की भाँति अटल रहे। कहा भी है -

"चट्टाने हिल नहीं सकती,
आँधी के खतरों से।

कि शोले बुझ नहीं सकती,
कभी शबनम के कतरों से।"

हमारे पास श्रद्धेय आचार्य श्री जी का व्यक्तित्व अत्यन्त सरल, उदार, धीर, गंभीर, एवं क्षमाशील रहा है। आप श्री की वाणी में अपूर्व माधुर्य, सरसता एवं जन-२ को आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता थी। हमारे आराध्य गुरुदेव श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म. सा. की आध्यात्मिक साधना और उनका जीवन अलौकिक चमत्कारों से परिपूर्ण था। हमारे श्रद्धास्पद आचार्य श्री का बाह्य जगत और अन्तर्जगत मीठा ही मीठा है। उसमें कटुता विषमता यानि विरसता के लिए कोई भी स्थान नहीं है। आप श्री जी की यही मिठास शान्ति - प्रियता, गुणग्राहकता, विद्वत्ता, लोकप्रियता, त्याग, वैराग्य एवं आदर्शवादिता आदि गुण सम्पदाओं से युक्त अध्यात्म जगत में विख्यात हो रही है।



आचार्यप्रवर श्री आनन्द ऋषिजी म. सा. वर्तमान युग की आध्यात्मिक विभूतियों में से एक उज्ज्वल समुज्ज्वल ज्योति थे। आप अमृत ज्ञान राशि के कोष, दैविक सम्पदा से सम्पन्न उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान गंगा बहाने वाले अमर देवता थे।

आपश्रीजी का महान व्यक्तित्व धार्मिक, सामाजिक शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त था। "सच्चं खु भगवं" आपका जीवन सूत्र था।

आप सबके थे, आपके सब थे। एक में अनेक थे "वसुधैव कुटुम्बकम्" भावना से ओतप्रोत थे।

आपने भगवान महावीर स्वामी के दिव्य सिद्धान्तों को स्वयं के जीवन में उतारा। उनका दिव्य ज्ञान देश समाज को ही नहीं, अपितु विश्व के चर-अचर जीवों को बिना किसी भी भेद-भाव के दिया।

आपकी वाणी में ओज था वचनों में सिद्धि थी। जो वचन कह दिया, वह पाषाण रेखावत था। आपश्रीजी का जीवन आचार्य सम्पदाओं से सम्पन्न था।

आचार्य भगवन्त ने अपने उपदेशों में कहा - भगवान महावीर की दिव्य वाणी को ध्यान में रखो और कहा कि दूसरों के दोष न देखो, स्वयं का आचरण शुद्ध पवित्र बनाओ।

जब तुम में स्वयं में संयमता,



संघ सुमेरू आचार्यश्रीजी

■ साध्वी निर्मल

"जन-जन मन्दिर में आलोकित,
किए हजारों ज्ञान प्रदीप,
करूँ वन्दना गुरु चरणों में,
जो थे धर्म के सुन्दर द्वीप!"

आगम गगन चन्द्रिका, परम विदुषी महासती श्री कौशल्याजी म. आदि १० ठाणा, हमें उपप्रवर्तिनी महासती श्री अभयकुमारीजी . के श्री चरणों में आए हुए अभी कुछ ही दिन हुए थे। बड़े हंसते-हंसते दिन व्यतीत हो रहे थे।

उधर अकस्मात प्रभात होते ही २९ मार्च १९९२ (चैत्र कृष्णा ११) शनिवार सं. २०४८ को सूर्य अभी उदित ही नहीं हुआ था, तभी स्थानीय सेवक ने आकर बतलाया कि आपके सबसे बड़े गुरुजी का देवलोक हो गया है। यह सुनकर हमें, किसी को भी विश्वास ही नहीं हुआ, कि हां सचमुच हमारे भगवन आचार्यश्रीजी का स्वर्गवास हो गया है।

इतने में ही हमारे पास बहिन सुदेश दर्शनार्थ आई तब हमने उनसे कहा जाओ बड़े स्थानक में श्री रत्नमुनिजी म. श्री से पूछकर आइए क्या यह बात सत्य है या किसी ने असत्य ही कह दिया?

बहिन सुदेश दौड़ी-दौड़ी गई श्री चरणों में पूछा तो मालुम हुआ, कर्ण विवरों में आवाज पड़ी कि हाँ सचमुच हमारे रहवर चले गए, चले गए, हैं, चले गए, कहाँ चले गए? यह सुनते ही एकदम सभी साध्वियों में सन्नाटा सा छा गया। पाँवों तले जमीन खिसकने लगी, मानो पैरों में जान ही न हो। हाय-हाय-हाय ये कैसा कठोर वज्राघात हुआ।

घरों-घरों में, गली-गली में, मुहल्ले-मुहल्ले में, बाजारों-बाजारों में सभी स्थानों में एकदम सन्नाटा सा छा गया। ओह! ये कैसा मनहूस दिवस आया, जिसने हमारे आचार्य भगवन, हमारे तारणहार, हमारे पतवार, संघ के कर्णधार, हमारे सिरमौर, शान्ति के देवता हमें छोड़ गए हैं। और आप सदा के लिए स्वर्गों में जा विराजें।

आपश्रीजी अपने पीछे तप-त्याग का अलौकिक प्रकाश छोड़ गए हैं। जब तक नभ पर ज्योति मंडल रहेगा, तब तक इस विश्व में आपका नाम ज्योतिर्मय नक्षत्र की भाँति चमकता रहेगा।

"आपश्रीकी हित-शिक्षाएं,
सदा करेंगे हम सब याद।
जहाँ कहीं भी आप विराजें,
करें प्रदान शुभ आशीर्वाद।
प्रत्येक नर-नारी उत्साहित होकर
जैन धर्म का करे प्रचार।
यही कामना मेरी भगवन,
वन्दन करती बारम्बार।"

हे प्रभो! आप अनन्त ज्योतिर्मय सूर्य है, पूर्णतः निर्मल हैं। आपश्री में किसी भी

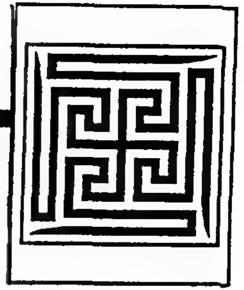
तरह की जरा भी मलिनता नहीं है। अन्धकार से परे हैं, जहाँ तू प्रकाशमान है, वहाँ अन्धकार कैसे रह सकता है। तू शिव अर्थात् कल्याण एवं आनन्द रूप है। तेरे सिवा कल्याण का अन्य मार्ग नहीं है।

अपने त्याग, वैराग्य, कंटीले मार्ग पर चलकर भयंकर से भयंकर कठिनाइयों में भी अपने को कभी डावांडोल नहीं होने दिया। हंसते मुस्कराते सभी बाधाओं को सहन किया। विकट से विकट प्रसंग में भी न्याय तथा संयम पथ से कभी भी विचलित नहीं हुए, बल्कि चट्टान की भाँति अटल रहे। कहा भी है -

"चट्टाने हिल नहीं सकती,
आँधी के खतरों से।

कि शोले बुझ नहीं सकती,
कभी शबनम के कतरों से।"

हमारे पास श्रद्धेय आचार्य श्री जी का व्यक्तित्व अत्यन्त सरल, उदार, धीर, गंभीर, एवं क्षमाशील रहा है। आप श्री की वाणी में अपूर्व माधुर्य, सरसता एवं जन-२ को आकर्षित करने की अद्‌भुत क्षमता थी। हमारे आराध्य गुरुदेव श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म. सा. की आध्यात्मिक साधना और उनका जीवन अलौकिक चमत्कारों से परिपूर्ण था। हमारे श्रद्धास्पद आचार्य श्री का बाह्य जगत और अन्तर्जगत मीठा ही मीठा है। उसमें कटुता विषमता यानि विरसता के लिए कोई भी स्थान नहीं है। आप श्री जी की यही मिठास शान्ति - प्रियता, गुणग्राहकता, विद्वत्ता, लोकप्रियता, त्याग, वैराग्य एवं आदर्शवादिता आदि गुण सम्पदाओं से युक्त अध्यात्म जगत में विख्यात हो रही है।



आचार्यप्रवर श्री आनन्द ऋषिजी म. सा. वर्तमान युग की आध्यात्मिक विभूतियों में से एक उज्ज्वल समुज्ज्वल ज्योति थे। आप अमृत ज्ञान राशि के कोष, दैविक सम्पदा से सम्पन्न उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान गंगा बहाने वाले अमर देवता थे।

आपश्रीजी का महान व्यक्तित्व धार्मिक, सामाजिक शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त था। "सच्चं खु भगवं" आपका जीवन सूत्र था।

आप सबके थे, आपके सब थे। एक में अनेक थे "वसुधैव कुटुम्बकम्" भावना से ओतप्रोत थे।

आपने भगवान महावीर स्वामी के दिव्य सिद्धान्तों को स्वयं के जीवन में उतारा। उनका दिव्य ज्ञान देश समाज को ही नहीं, अपितु विश्व के चर-अचर जीवों को बिना किसी भी भेद-भाव के दिया।

आपकी वाणी में ओज था वचनों में सिद्धि थी। जो वचन कह दिया, वह पाषाण रेखावत था। आपश्रीजी का जीवन आचार्य सम्पदाओं से सम्पन्न था।

आचार्य भगवन्त ने अपने उपदेशों में कहा - भगवान महावीर की दिव्य वाणी को ध्यान में रखो और कहा कि दूसरों के दोष न देखो, स्वयं का आचरण शुद्ध पवित्र बनाओ।

जब तुम में स्वयं में संयमता,



जितेन्द्रिय इन्द्रिय निग्रह, मननियन्त्रण होगा, तो दूसरों पर भी शुभ प्रभाव पड़ेगा। मानवता जागेगी। कहा भी है।

"मानवता बन विश्व में,
जिससे है सिर मौर।
मानवता से न बड़ा,
गुण है कोई और।"

हमारे आचार्यश्रीजी मानवता के महान अवतार थे, जिन्होंने देश-समाज को सच्ची मानवता-इन्सानियत के दर्शन कराए।

आपका लक्ष्य था कि विश्व में सच्ची मानवता की समुज्ज्वल ज्योति जगे और विश्व में बढ़ते संघर्ष का अन्त हो।

"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः" यह मानवता की सच्ची कसौटी है। जो प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के समान देखता है वही पंडित ज्ञानी, आत्म विजेता एवं सच्चा मानव है।

आचार्यश्रीजी का जन-जागरण, नैतिक प्रचार, शैक्षणिक - विकास एवं धार्मिक आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान रहा है।

आपके सदुपदेशों से विभिन्न स्थलों पर धार्मिक पाठशालाएं, छात्रालय, स्वाध्याय केन्द्र, चिकित्सालय, धार्मिक परीक्षा बोर्ड आदि परमार्थिक संस्थाएं स्थापित होकर जनता जनार्दन की सेवा में संलग्न है।

आपश्रीजी का विचरण क्षेत्र भी अति विस्तृत रहा है। जैसे कि-

मेवाड़, मारवाड़, हरियाणा, हिमाचलप्रदेश, यू. पी., पंजाब की भी चप्पाचप्पा धरती की पद यात्रा करते हुए मेरी जन्म भूमि "मलोट मंडी" को भी पावन किया। जिस दिन आप श्री जी का पदार्पण (मलोट मंडी में) हुआ, उस दिन मेरा मन ही नहीं, क्या बाल, क्या वृद्ध, क्या नर और नारी सभी मलौट निवासियों का मन गद्‌गद् हो गया।

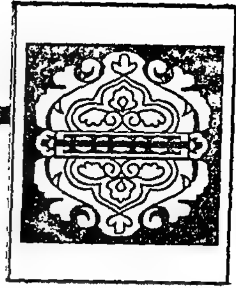
सोचा ओह? हमारे भाग्य कितने सराहनीय एवं प्रशंसनीय हैं जो स्वयं ही गंगा चलकर हमें दर्शन देने हेतु पधारी। आपके मंगलमय दर्शन एवं अमृतवाणी श्रवण करने का मुझे सुवर्णावसर प्राप्त हुआ।

अब प्रातः काल उठते ही अपने मन मन्दिर में विराजमान आचार्यदेव के चरणों में वन्दन करके यही प्रार्थना करती हूँ। प्रभो मेरा संयम मार्ग प्रशस्त हो।

(तेरे अरमां में सीने में,
तड़फ थी बेजुबानों की।
तेरे पलकों के नीचे बस,
दया की खान रहती थी।)

इन्हीं प्रार्थना स्वरों के साथ आज भी आचार्य भगवन् के श्री चरणों में अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि समर्पित करती हूँ।

जीवन को सफल किया तुमने,
हे अमन चैन के उद्‌घोषक।
हे राष्ट्र सन्त अहिंसा के पोषक?
हे आचार्य प्रवर तुम अमर रहो,
जग में युग युग तक अमर रहो?
कोटि! कोटि! वन्दन अभिवन्दन!



सदा खिला गुलाब : पू. गुरुदेव आनंदऋषि

■ साध्वी प्रगतिश्रीजी

मनुष्य की श्वास धारण क्रिया जीवन कहलाती है। पर केवल श्वास क्रिया मात्र ही जीवन नहीं है अन्यथा श्वास तो धमनी भी लेती है। पर जिसके जीवन में कुछ जिन्दादिली है वही तो जीवित है। एक की जिन्दादिली अपने तक सीमित रहती है। दूसरा कुछ आगे बढ़ता है। देह की दीवारों से ऊपर उठकर जिसने दूसरे के जीवन में आत्मीयता का प्रसार किया है। वह जीवन अगरबत्ती का जीवन है। जो स्वयं जलकर आसपास के वातावरण को सुवासित करती है।

इतिहासकार भलेही उनके इतिहास की कडियाँ खोजते रहें जो इस पृथ्वी के पटपर बडे-बडे चक्रवर्ती आए जो कहते थे मेरा एक बाण एक लाख व्यक्तियों को मृत्यु की गोद में सुला सकता है। बलशाली वासुदेव आए जो अपने सारंग धनुष्य से पृथ्वी को कंपा देते थे। पर वे जिस वेग से दुनियाँ के सामने आए दुनियाँ उनके बल और सत्ता के सामने झुकी भी पर उनके आँख मूँदते ही दुनिया ने उनकी ओर से आँखें मूँद ली। ऐसे व्यक्ति को जन साधारण कभी याद करने नहीं बैठता।

जनता उसीको याद करती है।
जिसने उसके लिए कुछ किया है।

कभी सोचा था आपने इसका रहस्य क्या है? क्यों दुनिया सम्राटों और चक्रवर्तियों को भूल जाती है और एक सन्त का नाम रटती है। उसके प्रति श्रद्धा के फूल चढ़ाती है। इसका रहस्य है - जिसने सारा जीवन जनता की सेवा में समर्पित कर दिया। कोटि-कोटि मानवों को हित और कल्याण का मार्ग बताया। जनता उसीके चरणो में श्रद्धा से मस्तक झुकाएगी। जिसकी परहिंत वृद्धि में स्वार्थ के कीचड की एक भी काली रेखा नहीं है। दुनिया उसीको हृदय समर्पण करती है। जब कुछ गुलाब पीसे जा रहे थे। अत्तारी उन्हें घोट रहा था। जो पत्थर पर पीस कर भी अपनी सौरभ छोड रहे थे। अपने मिटानेवाले को भी सुरभित किए जा रहे थे। तभी एक दार्शनिक उधर से गुजरा उसने पूछा "ऐ मोहक पुष्प! तेरा जीवन सुवासित जीवन है, फिर तुमसे ऐसा क्या अपराध बन पड़ा है कि तुम निर्दय शिला के नीचे पीसे जा रहे हो?" कुछ फूल बोले, हमारा क्या अपराध? हम तो दुनिया को खुशबू देने आए हैं। इसकी चोट में हमें किंचित भी दर्द की अनुभूति नहीं हो रही है। क्योंकि हम जानते है हमारा यह दुःख दूसरों के लिए ही है। दूसरों के लिए अपने आपको मिटा देने में हमें दुःख न होगा। हमारा जीवन सौरभ लुटाने के लिए है तो हमारी मृत्यु भी सौरभ लुटाने के लिए ही है। दूसरों के हित में अपने आपको मिटाकर भी जो हंसते रहते हैं। मौत की



आखिरी घडी तक उनके मुख की मुस्कान मिटती नहीं है। यही तो हृदय की सुवास है जो उनकी मृत्यु के बाद भी जनता के हृदय पटल पर उनकी स्मृति को सजीव रखती है।

२७ जुलै सन १९०० के शुभ तिथि के दिन इस धरती पर एक गुलाब का फूल मानव के रूप में खिला था। जिसने भारत के कोने-कोने को अपने सुगंध से सुवासित किया। जिसकी सुगंध कभी मिटनेवाली नहीं है। जिनकी हम भगवान के रूप में पूजा करते है। ऐसे जन-जन के श्रद्धा केन्द्र मेरे जीवन दाता पू. गुरुदेवने तेरह वर्ष की छोटी उम्र में दीक्षा लेकर भारतभर विचरण करके भारतभूमि को आपने पवित्र चरणस्पर्श से पावन बनाया। पू. गुरुदेव सागर जैसे गंभीर, प्रेम से भरा कोमल हृदय और बच्चों जैसे निष्पाप दृष्टि वाले थे। उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व के कारण ही वे आचार्य सम्राट्, राष्ट्रसंत बने। हरएक व्यक्ति को ऐसा मेहसूस होता है कि उनकी कृपादृष्टि मेरे प्रति अपार है। विशेष उनके कट्टर भक्त चांदा (अ.नगर) निवासी श्री कनकमलजी चुनिलालजी गांधी मेरे जन्मदाता पिता पू. गुरुदेव की कृपा से वे आज पंच परमेष्टि में'' णमो लोए सव्वसाहूणं के पद में अर्थात पू. कनकऋषिजी म.सा के नाम से प्रसिद्ध है। पू. गुरुदेव का सं. २००० में चांदा चातुर्मास हुआ तभी से गांधी कुल की गुरुदेव के प्रति असीम श्रद्धा है। एक साक्षात् दृष्टान्त पू. गुरुदेव का १९७७ में जालना-चातुर्मास हुआ। तब पू. गुरुदेव चांदा हो के जालना पधारे। उस समय मैंने अठाई की थी। पू. गुरुदेव स्वयं घर पधारे। घर की दीवारें मिट्‌टी की हैं। जिस दीवार के आधार से पू. गुरुदेव खडे थे उस मिट्टी का चमत्कार - इ.स, १९८९ में गाय पागल हो गयी। डॉ. ने कहा - इसे इंजेक्शन लगवाकर मार देने के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं। माताजी ने भैया से कहा गाय की हत्या महापाप है। मेरी माताजी ने पू. गुरुदेव का नाम लिया और उस मिट्टी को पानी में घोलकर गाय को पिला दिया। दृढ़ श्रद्धा का चमत्कार १ घंटे में गाय बिलकुल शांत हुई। पुनः डॉ. को बुलाकर गाय को चेक किया। डॉ. देखते रह गया। पूछा - आपने ऐसी कौनसी औषधि इस गाय को दी जो गाय का पागलपन बिलकुल दूर हुआ। माताजीने बताया पू. गुरुदेव के स्पर्श से पवित्र बनी मिट्टी मैंने पानी में घोलकर पिलायी। ऐसे महान उपकारी पू. गुरुदेव का पार्थिव शरीर आज हमारे बीच नहीं है किन्तु आज भी अगर हम श्रद्धा से पू. गुरुदेव का स्मरण करेंगे तो मन वांछित सुख निश्चित मिलेगा। पू. गुरुदेव का तीर्थंकर जैसे महानिर्वाण कल्याणक मनाया। ऐसी पुण्यात्मा सदा अमर है। ■ ■

- *सच्चा विद्यार्थी वही है, जिसे विद्या ग्रहण की तीव्र और सच्ची भूख हो और जो विद्या प्राप्ति के उद्देश्य में तल्लीन होकर अन्य समस्त सांसारिक सुखों को त्याग देता है।*



शब्दातीत अनुभूति

■ साध्वी सुनीता

परम श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय श्रमण संघ के संघनायक आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी महाराज के पावन दर्शनों का सौभाग्य मुझे पूना सम्मेलन में मिला। मुझे न मालूम था ये प्रथम और अन्तिम दर्शन होंगे। उनके दर्शन कर मेरा मन सच में आह्लाद से भर गया। मेरा रोम रोम खुशी से नहा उठा। मेरा हृदय श्रद्धा से आपूरित हो गया। आचार्य प्रवर के मंगल दर्शन करके मुझे जो अनुभूतियाँ हुई उन्हें मैं कहना चाहूँ तो कह नहीं सकती और लिखने की सोचूं तो सब लिखा नहीं जा सकता। क्यों कि वह अनुभूति है। अनुभूति शब्दातीत होती है। फिर भी जो कुछ मैंने देखा अनुभव किया उसके कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत करना चाहूंगी।

आचार्यदेव तन से वृद्ध थे। देखने पर लगता था जैसे योग-पुरुष अपनी समाधि में लीन हैं।

भक्तों के नयन पर वे आाशीर्वाद रूप अपने नेत्र ऊपर उठाते थे। जब आचार्य देव अपने कमलनयन ऊपर कर दर्शनार्थी को देखते तो वह निहाल हो जाता। उनके नेत्रों से सुधा निर्झर सतत प्रवाहित होता था।

उनकी वाणी अत्यन्त मधुर थी। वे बड़े धीमे से बोलते थे। पूछते "कहाँ से आये हो? ठीक हो।" उनके इस वाक्य पर हीं व्यक्ति का मन न्योछावर हो जाता था। उन्होंने मुझ से यही पूछा था। मैंने आचार्यदेव को बताया कि मैं परम श्रद्धेया महासती श्री सुन्दरीदेवी जी महाराज की बैरागन हूँ। तो वे हर्षित हुए। बोले-खूब स्वाध्याय करना। अपनी गुरुणी की सेवा करना। ऊँचा संयम पालना।

आचार्यदेव के ये शब्द आज भी मेरे कर्ण कुहरों में गुंजित हो रहे हैं।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व जन-जन की श्रद्धा का केन्द्र था। सभी की यह भावना। इच्छा रहती थी कि मैं अधिक से अधिक समय इनके चरणों में बैठूं। श्रद्धाशील जनों की तो यह स्थिति थी ही। नगर के अजैन बन्धू यहाँ तक कि रिक्शा तांगे वाले भी उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा भाव रखते थे। प्रत्येक आगन्तुक को वे पूछते-'आनन्द बाबा' के दर्शन को चलना है क्या? इन शब्दों से उनकी सहज श्रद्धा अभिव्यक्त होती है।

आचार्यसम्राट् एक जंगम कल्पवृक्ष थे जिनकी छत्रछाया में न केवल श्रमण संघ अपितु हर साधक निर्भय हो साधना-रत था। आज जन जन में चेतना भरने वाली मंगल भाव युक्त सुमधुर वाणी से जैन संघ वंचित हो गया। यहाँ आकर समूचा शासन अपने को अनाथ मजबूर अनुभव कर रहा है। किसी विचारक ने ठीक ही कहा था-

हज़ारो साल नर्गिस अपनी बे-नूरी पर



रोती है।

बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

आचार्य भगवन्त देही होकर भी देहातीत थे। वे चाक्षुश्य होकर भी साधना और तपस्या की दृष्टि से अन्तर्मुखी थे।

उदय के साथ अस्त, संयोग के साथ वियोग, जन्म के साथ मृत्यु एक शाश्वत सत्य है। श्रमण पृथ्वी पर विचरण करता है तो जन जन का मंगल करता है। जब वह संसार से विदा होता है संयम सौरभ से जनजीवन सुरभित करके जाता है।

आचार्यश्री जी भी अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण कर चले। उनका महान् व्यक्तित्व अनन्त में विलीन हो गया। उन्हें जाना ही था मगर छद्मस्थ आत्माएं शोक ग्रसित हो रही है। साथ ही आचार्य प्रवर की साधना की सार्थकता पर गर्वित भी हैं। आगमानुसार 'इहं सि उत्तमो भंते पच्छा होहिसी उत्तमो।'

आचार्य देव के पावन पाद-पद्मों में श्रद्धा स्मरण करते हुए मेरा कोटि कोटि वन्दन।



- *धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने पर ही आपकी सन्तान आचारनिष्ठ बन सकेगी तथा अपने धर्म को देदीप्यमान करती हुई उसे सुरक्षित रख सकेगी।*
- *सन्त दर्शन का महत्त्व अवर्णनीय है। निर्मल हृदय रखने वाले व्यक्ति को सन्तों के दर्शन एवं वन्दन से आत्मिक शांति का अनुभव होता है।*
- *सन्तों के समागम से ही मनुष्य का बौद्धिक एवं आत्मिक विकास होता है तथा अज्ञानान्धकार के नष्ट होने से सन्मार्ग का ज्ञान होता है।*
- *आत्म स्वरूप की जानकारी कराने वाले, दिव्य ज्ञान देने वाले सन्तजन विरले ही होते हैं तथा उनका समागम अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होता है।*
- *धन महाकष्टदायी है। अनेक अनर्थों का मूल है। ऐसे कष्ट के भण्डार धन को बारम्बार धिक्कार है।*
- *त्रिशलानन्दन भगवान महावीर की दुकान में धोखा नहीं है। यहाँ का माल नकली और नाशवान नहीं है।*
- *आत्मोन्नति के इच्छुक साधक को समरस में रहना आवश्यक है। इसी के द्वारा वह अपनी आत्मा के मैल को उत्तरोत्तर धो सकता है।*
- *जिन पुरुषों में शम भाव का अभाव है, वे मनुष्य पशु के समान ही हैं।*



समता की प्रतिमूर्ति

■ कनकमल मुनोत, पुणे

साधारणतः यह देखा गया है कि दो विरोधी व्यक्ति आगे चल कर मानो एक दूसरे के कट्टर दुश्मन हो जाते हैं, या मन में सद्भावना हो तो आगे चलकर वे निकटस्थ आत्मीय बन जाते हैं। परमपूज्य आचार्यश्री का और मेरा सम्बन्ध भी विरोध से ही शुरू हुआ।

सन १९३४ साल था वह। बी. ए. उत्तीर्ण हो कर भावी शिक्षा के लिए घर छोड़ कर पूना आ गया था। भगिनी वर्ग के प्रति विशेषकर विधवाओं के प्रति मेरे दिल में स्नेह एवं कारुण्यपूर्ण आत्मीयता के भाव थे। 'विधवा बन्धु' के नाम से मैंने अपनी इस भावना को अपने लेखों द्वारा प्रकट की थी। प्रसंगावशात् एक दारिद्र्य पीड़ित असहाय विधवा मिलने आई। दुनियाँ में उसे कहीं पर भी सहारा न मिलने से जीवन से वह ऊब गई थी। उसकी जीवन कहानी सुनकर हम सोच में पड़ गये। उसी समय एक गरजमंद विधुर हमसे मिलने आया। वह विवाह करना चाहता था। विचार विमर्श के बाद दोनों का विवाह संपन्न करना तय करके आमन्त्रण पत्रिका छपवाने के लिए हम (मैं और मेरे मित्र) जा रहे थे। रास्ते में विचार आया। विधवा विवाह करनेवाली इस जोड़ी को हम सहायता कर रहे हैं। परन्तु जब हमारा पुराणपंथी समाज उनका बहिष्कार करेगा, तब इनकी क्या हालत होगी? ऐसे लोगों का जीवन सुकर हो इस लिए उनको बल देने के लिए एखाध संस्था हो तो प्रश्न कायम के लिए हल हो सकता है। मार्ग में ही 'जैन विधवा विवाह मंडल' की निर्मिति की गई और मंडल के नाम से ही आमंत्रण पत्र छपवा कर पूना के समाज में वितरित कर दिया।

इस विवाह के कारण समाज में काफी हलचल मच गई। अहमदनगर की ओसवाल पंचायत ने मेरी इस करतूत का विचार करने के लिए सभाएँ लेकर गंभीर विचारणा शुरू की और ८-१० सभाओं के बाद सामाजिक बहिष्कार मेरे विरोध में निर्णित हुआ।

उसी समय सन्त आनंदऋषिजी (उस समय वे किसी अधिकार पद पर नहीं थे) पूना के उपनगर खड़की में विराजते थे। उपरोक्त घटना का विरोध करने की उन्होंने ठान ली। 'विधवा विवाहवादि मुख चपेटिका' नामक एक छोटी पुस्तिका खड़की के एक श्रावक के नाम प्रकाशित की गई। कालिज में मेरा विषय होने से मैंने भी जैन शास्त्रों का अध्ययन किया था। अतः उस पुस्तिका के प्रत्युत्तर में शास्त्रों से आधार ढूँढकर एक लेख लिख दिया। उस लेख का जबाब अभी तक नहीं दिया गया।

बात गई बीती हो गई। मौका पाकर



मैं मुनिश्री के दर्शनार्थ खड़की गया। विरोध के सूर सुनने के लिए मन को तैयार रखा था। परन्तु आश्चर्य घटा। एक घंटे की बातचीत में उपरोक्त घटना का बिना उल्लेख किए आत्मीयतापूर्वक मेरे अध्ययन की जानकारी प्राप्त कर ली। और पुनः आने को सूचित कर आनन्द से विदा किया। अपने लिखान में 'मुख चपेटिका' देनेवाले मुनिश्री ने आत्मीयता का खासा परिचय दिया। तात्त्विक विरोध का व्यक्तिगत सम्बन्ध पर अनिष्ट परिणाम न होने देने के मुनिश्री के बर्ताव ने मुझे जीत लिया। मेरे दिल में उनके प्रति आदरभावना का प्रादुर्भाव हुआ। सो आजतक कायम रहा है।

मेरे फुफेरे भाई तिलोकचंद गुंदेचा आचार्यश्री के बालमित्र थे। दीक्षित होने के बाद मुनिश्री निकटस्थ भक्त बन गये। तिलोकभाऊ के सात्त्विक, उदारतापूर्वक स्वभाव के कारण आचार्यश्री के कार्यों में वे सदा सहायक बन गये। प्रतिवर्ष जहाँ मुनिश्री का वर्षावास होता, हमारे भाईसाहब सपत्नीक एक मास वहाँपर घर कर के रह जाते और अभ्यागत दर्शनार्थियों के स्वागत में संलग्न हो जाते। यह सिलसिला भाई के जीवनान्त तक चलता रहा। पश्चात् उनकी धर्मपत्नी ने भी वह सिलसिला जारी रखा। भाई के मेरे प्रेमपूर्ण सम्बन्ध के कारण आचार्यश्री की कृपादृष्टि अधिक दृढ़ बनती गई।

चिंचवड के जैन विद्या प्रसारक मंडल का मैं कृतिशील सदस्य था। उस संस्था के उत्थान के लिए हम प्रयत्नशील थे ही। परन्तु महाराष्ट्र में शिक्षा प्रसार का कार्य कर रही सभी जैन संस्थाओं का प्रातिनिधिक संगठन निर्माण कर एक जैन विद्यापीठ स्थापित करने का विचार कार्यकर्ताओं के सन्मुख मैंने रखा। प्रथम सभी संस्थाओं के प्रतिनिधि चिंचवड में एकत्रित हुए। अगले साल दूसरी प्रातिनिधिक संस्था पाथर्डी में निमंत्रित थी। उस समय मुनिश्री पाथर्डी में ही बिराजते थे। धार्मिक परीक्षा बोर्ड की ओर से परीक्षाएँ ली जाती थीं। महाराज को बोर्ड को प्रगतिपथ पर ले जाना था। सभा में मुनिश्री ने परीक्षा बोर्ड का मंत्रीपद लेने का मुझे आवाहन किया। परन्तु पूना में रहकर पाथर्डी की संस्था का संचालन करना मेरे लिए संभवनीय नहीं था। उस समय परीक्षा बोर्ड ने पूना में एक विशाल घर तिलक रोड पर ले रखा था। यदि बोर्ड का कार्यालय पूना के इस भवन में ले जा सकते हों तो वह जिम्मेदारी सर पर उठाने की मैंने हामी भर ली। परन्तु पाथर्डी के कार्यकर्ताओं को संस्था का पूना जाना पसन्द न होने से बात वहीं पर समाप्त हो गई।

महाराज श्री स्वयं प्रकांड पंडित होने के कारण ज्ञानी लोगों के लिए उनके दिल में बड़ा भारी स्थान था। शिक्षा का अपना कार्य प्रगतिपथ पर ले जाने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहे थे। अपने शिष्यों की ज्ञानप्राप्ति के लिए अच्छे से अच्छे पंड़ितों



को वे सदा निमंत्रित किया करते थे। अवकाश में स्वयं भी अध्यापन का कार्य वे करते थे। संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, फारसी, हिन्दी, मराठी भाषाओं में वे विशारद थे। अपने प्रवचनों में इन विभिन्न भाषाओं के काव्यखण्ड, दोहे, अभंग, श्लोक आदि का भरपूर मात्रा में उपयोग करने के कारण महाराज के भक्त जैन, अजैन, हिंदू, मुस्लिम, क्रिश्चियन आदि विभिन्न धर्मानुयायियों में बिखरे हुए थे।

स्व. पंडित श्रीमलजी महाराज अध्ययनशील विद्वान होने के साथ साथ सुधारपूर्ण विचार एवं आचार को जीवन में उतारते थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होने के कारण आचार्यश्री उनके साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते थे। अजमेर, भीनासर, सादड़ी के श्रमण संमेलनों में उनकी बुद्धिमत्ता एवं लेखन कला को लक्ष्य में लेकर सभाओं के विवरण लिखने की जिम्मेदारी आचार्य श्री ने उन्हें सौंपी थी। स्व. श्रीमलजी महाराज और मैं घनिष्ठ मित्र थे। आचार्य श्री की आत्मीयता वृद्धिंगत होने में हमारा यह सम्बन्ध उपयोगी सिद्ध हुआ।

नासिक और घोड़नदी के संघों में श्रमण संघ का अधिवेशन महाराष्ट्र में लेने की तीव्र भावना हुई। घोड़नदी में एक प्रातिनिधिक सभा में इस बात का निर्णय किया गया। आचार्य महाराज से अनुज्ञा प्राप्त करने का भार मुझ पर सौंपा गया। युवा साधुओं को एकत्रित कर सुधारपूर्ण वातावरण निर्माण करने का यह सुन्दर मौका था। उस समय आचार्य श्री का वर्षावास पंचकूला के गुरुकुल में चल रहा था। नासिक के श्रावकों को लेकर हम लोग पंचकूला आचार्य श्री के चरणों में पहुँच गये। रात को १२/१२-३० बजे तक विचार विनिमय होता रहा। परन्तु कल्पना पसन्द होने पर भी आज्ञापत्र लिखित देने की हिचकिचाहट आचार्य श्री के मन में थी। वहाँ पंजाब के विद्वान् सन्त जैनभूषण ज्ञानमुनिजी भी विराजते थे। उन्होंने ही आचार्य श्री की संपूर्ण पंजाब यात्रा का आयोजन किया था और आचार्य श्री की संपूर्ण यात्रा में साथ में ही विचरते थे। हमने ज्ञानमुनिजी से संपर्क साधा। उनको बात जच गयी। दूसरे दिन की बैठक में हमारी वकालत ज्ञानमुनिजी ने की और हमें लिखित संमतिपत्र प्राप्त हो गया। बहादुरगढ़ में सुशीलमुनिजी (आज के आचार्य सुशीलकुमारजी) के दर्शन किये। पं. श्रीमलजी महाराज का पत्र उन्हें दिया और श्रमण संमेलन में पधारने का आग्रह किया। चंदीगढ़ में युवा सुरेशमुनिजी की सेवा में पहुँचे। वे भी महाराष्ट्र की ओर विहार करने तैयार हो गये। परन्तु महाराष्ट्र के हमारे कार्यकर्ता ढ़ीले पड़ गये और संमेलन नहीं हो पाया। फिर भी युवा मुनियों एवं कार्यकर्ताओं पर आचार्यश्री का पूरा भरौसा होने का हमें अनुभव हुवा।

महाराष्ट्र में आचार्य श्री की दीर्घकालीन पदयात्रा के बाद नागपुर में मंगल प्रवेश हुआ। चातुर्मास के लिए



प्रार्थना करने विविध संघ नागपुर पहुँचे। खासकर पूना एवं अहमदनगर इन दो संघों का अधिक दबाण था। पूना का संघ आचार्यश्री का अमृत महोत्सव मनाने के लिए लालायित था। दुपहर की सभा में मैंने अमृत महोत्सव के मौके पर सहायता संस्था विशाल पैमाने पर स्थापित करने की कल्पना प्रस्तुत की। उपस्थितों ने यह कल्पना उठा ली। आचार्यश्री भी प्रसन्न हुए और पूना का वर्षावास मंजूर हुआ। पूना में अमृत महोत्सव धडल्ले के साथ मनाना तय हुआ। स्व. चन्द्रभानजी डाकलिया के निवास पर चुनिन्दा कार्यकर्ता एकत्रित हुए और 'आनंद प्रतिष्ठान (फाऊंडेशन)' का निर्माण निर्धारित हुआ। मुझे प्रधानमंत्री बनाया गया। आनंद प्रतिष्ठान का कार्य प्रारंभ हुआ। प्रथम वर्ष में ही आठ लाख से अधिक रकम एकत्रित हुई। कार्यकर्ताओं ने अपनी शक्ति संस्था पर केंद्रित की। अहमदनगर संघ ने भी अच्छा समर्थन दिया। मद्रास संघ का साथ मिला। आचार्य श्री का नाम अमर हो गया। आज प्रतिष्ठान की पूँजी तीस लाख की सीमा पार कर चुकी है। आचार्यश्री के व्यावहारिक संकेतानुसार इस रकम पर प्राप्त व्याज ही खर्च किया जाता है। सैंकड़ो अनाथ-अपंग एवं बुद्धिमान विद्यार्थिगण संस्था की सहायता से लाभान्वित हुए हैं, हो रहे हैं।

आन्ध्र और कर्नाटक में महाप्रलय हुआ। 'प्रतिष्ठान' के कार्यकर्ता प्रत्यक्ष परिस्थिति की जानकारी प्राप्त करने वहाँ पहूँचे। अन्य संस्थाएँ भी वहाँ पहुँची थीं। सभी संस्थाओं की प्रातिनिधिक सभा में एकत्रित रूप से सहायता करना तय हुआ। मुख्यमंत्री की मुलाकात लेकर उनका सहयोग - जितना हम प्रस्तुत करेंगे उतनी ही राशि आन्ध्र सरकार उसमें देने का स्वीकृत हुआ। कृष्णा जिले में एक उध्वस्त गाँव बसाने की योजना आनन्द प्रतिष्ठान द्वारा पेश की गयी और 'आनंद पल्ली' का पुनर्निर्माण हुआ। आज 'आनंद प्रतिष्ठान' आचार्य प्रवर की करुणामयी अन्तर्भावना का जीवन्त प्रतीक बन गया है।

अन्य संप्रदायों के साधु-साध्वियों के प्रति आचार्यश्री को उतनीही आत्मीयता थी। भगवान महावीर निर्वाण शताब्दीवर्ष में दिल्ली में जैनियों के चारों संप्रदायों के आचार्य - स्थानकवासी आचार्य श्री आनंदऋषिजी, श्वेतांबर आचार्य श्री जनकविजयजी, तेरापंथी आचार्य श्री तुलसीजी, एवं दिगंबर एलाचार्य श्री विद्यानन्दजी एक मंच पर आये। महावीर निर्वाण महोत्सव समूचे भारत में मनाया गया। इन चारों आचार्यों की प्रेरणा, उत्साह एवं बुद्धि एकत्रित रूप से महोत्सव को विराट् रूप दे गयी। साथ स्व. विनोबा भावे के प्रयास एवं आचार्यों के एकत्रित मार्गदर्शनस्वरूप प्रातिनिधिक ग्रंथ - 'समणसुत्तं' का निर्माण हुआ। जैन ध्वज भी सर्वमान्य हो गया। सभी संप्रदायों के साथ एकात्मता का व्यवहार करने की आचार्यश्री की कृति ही यहाँ प्रतिबिंबित होती है।

सांवत्सरिक एकता के सम्बन्ध में भी आचार्यप्रवर का विशाल दृष्टिकोण रहा है।



चतुर्थी-पंचमी का झगड़ा निपटाने में आचार्यश्री ने काफी प्रयत्न किये। स्थानकवासी साधुओं में इस बारे में एकमत हो जाने पर भी आपने घोषित किया कि भारत जैन महामंडल के सुयश का समर्थन करने में हम भी उदारता से परिवर्तन करेंगे। कौमी एकता के लिए कितनी आतुरता?

विरोध शान्त करने में आचार्य श्री सदा शान्त भाव एवं विवेक से काम लिया करते थे। कटु वचन सा विरोध सहन करके भी वे मौन भाव से रहते थे। एक कव्युक्ति है –

क्षारंजलं वारिमुचः पिबन्ति,
तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति।
सन्तस्तथा दुर्जन दुर्वचांसि
पीत्वा च सूक्तानि समुद्गिरन्ति ॥

मेघ समुद्र का खारा जल पीते हैं और उसे मीठा बनाकर वर्षा करते हैं। उसी प्रकार सन्तों का आचरण होता है। वे दुर्जनों के दुर्वचन पचा लेते हैं और सद्वचनों का ही उच्चारण करते हैं।

आचार्य प्रवर ने अपने जीवन में यह श्लोक यथार्थ में उतारा था। यही कारण है कि उनके विरोधी भी उनकी प्रशंसाओं के पूल बाँधते थे।

क्रिश्चियन संत ने कहा है –

It is in dying, that we live eternal life.

मरने में भी हम चिरजीवन जीते हैं। आचार्य प्रवर ने देहत्याग किया, परन्तु उनका विचार धन, शान्त-दान्त स्वभाव, शिक्षा के प्रति त्याग, दीनों के प्रति करुणा-भाव सदा सभी के दिलों में चिरकाल तक रहेंगे।

प. पू. आचार्य प्रवर के प्रति मेरी यह आन्तरिक श्रद्धांजलि।

■ ■

- *आभ्यन्तर क्रियापात्र योगी पुरुष भी शम व्रत से ही, यानी विकारों को जीतने से ही शुद्ध होते हैं।*
- *प्रत्येक मानव को शमभाव रखते हुए अर्थात् निर्विकारी बनते हुए सुकृतरूपी धन को कमाने का प्रयत्न करना चाहिए।*
- *प्रत्येक श्रावक को अपने हृदय में निर्मल एवं उच्च विचारों को स्थान देना चाहिए।*
- *लोभवृत्ति प्रत्येक प्राणी के पतन का कारण बनती है, किसी की भी हित साधना में सहायक नहीं बन सकती।*
- *सन्त अज्ञानी प्राणी को पुनः पुनः चेतावनी देकर उसकी आत्मा को विशुद्ध बनाने का प्रयत्न करते हैं।*



वे आचार धर्म के पर्याय थे : वे विचार धर्म के समवाय थे !

■ विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया

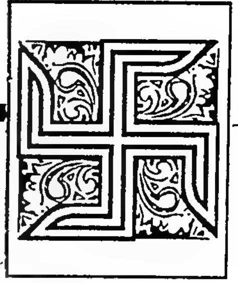
भारत संतों का जन्म स्थान है। विविध धार्मिक मान्यताओं से अनुप्राणित यहाँ नाना पंथों पर संतों का काफिला प्रारम्भ से ही चलता रहा है। वैदिक, बौद्ध धर्मो की भाँति जैन धर्म प्राचीनतम धर्म है। इसी धर्म के अनुयायियों का एक समुदाय स्थानकवासी सर्वमान्य समुदाय है। इस समुदाय के प्रकाश पुञ्ज, महामनीषी, आगमवेत्ता तथा सुधी साधक आचार्य श्री आनन्द ऋषि का शुभ नाम सदा सर्वदा स्मरण रहेगा।

आचार्यश्री आनन्द ऋषिजी महाराज यथा नाम तथा गुण उक्ति के उत्तम उदाहरण हैं। वे सचमुच सदा विहँसते आत्मिक स्वभाव-आनन्द को बिखेरते तथा अन्तः और बाह्य साधना में ऋषियों के भी ऋषि थे, वस्तुतः महर्षि थे। उन्होंने अन्य संतों की नाईं मात्र स्वयं को ही नहीं साधा अपितु साधना सन्मार्ग पर चलने वाले अनेक अद्‌भुत सन्तों को शुद्धोन्मुख किया, दीक्षित किया।

आपके कुशल निर्देशन में उपाध्याय परमेष्टी की अनेक धारायें प्रवाहित हुईं जिनसे तमाम संतों की श्रृंखलाएँ सम्पन्न हुईं हैं। श्रमण संतों की यह सुदीर्घ परम्परा और समाज को कल्याणकारी बातों का अपनी जीवन-शाला में प्रयोग कर उदाहरण प्रस्तुत करती है और कर रही है। 'सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से उसका असर राष्ट्र पर हो' की नाईं आचार्य श्री की संत परम्परा ने सफल प्रयोक्ता की भूमिका का निर्वाह किया है।

जैन संत सदा पद-यात्री होते हैं। यात्रा से जीवन में सातत्य जीने की शक्ति का संबर्द्धन होता है। यदि प्रवाह मंद और मंथर होने लगे तो उसमें अनेक प्रकार के प्रदूषण जन्म लेने लगते हैं। आचार्यश्री की विरल विशेषता यही रही है कि उन्होंने स्थूल प्रदूषण के परिहार का ही प्रयत्न नहीं किया, अपितु वैचारिक प्रदूषण को शान्त और समाप्त करने का बेजोड़ प्रयास भी किया है। उनके इस प्रयास में भीतर और बाहर उत्पन्न होने वाले समग्र द्वेष और द्वन्द्व निर्मूल हो गए और उनके चरित्र चरण अनेकान्त धर्मी प्रमाणित हो उठे।

आचार्य श्री की सम्पूर्ण चर्या अन्तर्मयी थी उसमें अनन्त मुखी सम्भावनाएँ उजागर हो उठी थीं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और अमैथुन उनके जीवन में पारिभाषिक बन कर नहीं रहे वे प्रयोगवंत होकर सामान्य जन जीवन के लिए सहज और स्वाभाविक संदर्भ सिद्ध हो गए। वे आचार धर्म के पर्याय बन गए। वे विचार धर्म के समवाय हो गए। लौकिक उपमानों



में कहा जा सकता है कि आचार्य श्री विचारों के विश्वविद्यालय थे और चारित्र के विद्यापीठ।

विश्वसन्त उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि के वातायन से मुझे आचार्य श्री का वैचारिक सामीप्य प्राप्त हुआ। और मुझे लगा कि इतने विशाल संघ का सुदीर्घ कालावधि तक सफल संचालन का मेरुदण्ड है - उनकी कथनी और करनी में इकसारता। आज की देश और विश्व व्यापी विघटनकारी तथा विनाशीक प्रवृत्तियों के प्रक्षालन के लिए आचार्य श्री की यह आर्जवी प्रबंध पटुता एक गुणी गाइड का कार्य कर सकती है।

उनकी वाणी उनके सत्चरित्र की प्रतिध्वनि है। ध्रुव सत्य को अनाग्रही और आर्जवी अंदाज में आचार्यश्री इस प्रकार व्यक्त और अभिव्यक्त करते हैं कि श्रोता, वाचक और पाठक उसे सहज में आत्मसात् कर लेता है। वे मात्र वाचनिक धर्म प्रचारक नहीं थे अपितु वे थे धर्म के प्रायोगिक साकार अनन्वय अलंकार। उन्होंने हजारों-हजारों विधर्मियों को बनाया धार्मिक, और सैकड़ों-सैकड़ों भटके और अटके धार्मिक जिज्ञासुओं को उन्मार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया। इस प्रकार वे चलते-फिरते, उठते-बैठते एक सच्चे और अच्छे धर्मायतन थे। महान थे। ऐसे जनवंद्य, उपकारक और धर्म प्रचारक, तीर्थंकर न होते हुए भी तीर्थ जैसे तथ्य के संवाहक आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को शाब्दिक किन्तु हार्दिक श्रद्धाञ्जलियाँ, शत-शत वंदनावलियाँ सादर समर्पित हैं।

इत्यलम्।



- *भाग्य के बिना कोई भी व्यक्ति, चाहे वस्तु बिना मोल दिये ही मिल रही हो, प्राप्त नहीं कर सकता।*
- *पुरुषार्थी पुरुष धीरे धीरे अपने भाग्य को भी बदल लेता है।*
- *बिना प्रयत्न और पुरुषार्थ के भाग फलता-फूलता नहीं है।*
- *निरन्तर प्रयत्न करने पर असम्भव भी सम्भव बन जाता है।*
- *पूर्वजन्म के संचित पुण्य ही तीनों लोक को वशवर्ती अथवा आज्ञानुवर्ती बना देते हैं।*
- *पुण्य के प्रभाव से ही मानव-जन्म मिलता है, पुण्य के बल पर ही उच्च कुल में जन्म और पाँचों इन्द्रियाँ परिपूर्ण मिलती हैं।*
- *पुण्य के कारण ही संसार में मान, प्रतिष्ठा, कीर्ति और सन्त समागम भी मिलता है।*



महर्षि आनन्द और उनका तत्त्वचिंतन

■ डॉ. भागचन्द्र 'भास्कर', नागपुर

मृत्यु बडी निष्पक्ष और बेरहम है। वह जितनी निश्चित है, उतनी ही अनिश्चित है। आज तक ऐसी कोई भी व्यक्ति नहीं हुअी जो मृत्यु के कराल गाल से बच सका हो। आचार्य आनन्दऋषिजी भी उसी कराल गाल में २८ मार्च को समा गये और अपने पीछे एक समृद्ध अनुयायी वर्ग छोड़ गये। अभी १० से १२ मार्च तक मैं अहमदनगर में उनके पास ही रहा और उनके व्यक्तित्व को और भी नज़दीक से देखने का अवसर मिला।

एक विश्वसन्त :

महर्षि आनन्द यद्यपि स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य थे, परन्तु उनकी सार्वभौमिक दष्टि ने उन्हें एक विश्वसन्त की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। उनकी जीवनधारा एक ओर जहां सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की त्रिवेषी का संगम है, वहीं दूसरी ओर कल्याणकारिणी सेवा और सरस्वती की समन्वित भूमिका है, विचार, आचार, और प्रचार की प्रबुद्ध कारिका है। किसी युगप्रवर्तक ऋषि के लिए महर्षि होने के लिए यह अपेक्षित संकल्प है जिसे आचार्य सम्राट् आनन्द ऋषि ने बड़ी कुशलता पूर्वक अर्जित किया।

ज्ञानज्योति के ज्योतिस्तम्भ :

चिचोंडी (अहमदनगर, महाराष्ट्र) में वि. सं. १९५९ में जन्मे बालक नेमिचंद ने १३ वर्ष की अवस्था में आनन्द के नाम से जैन दीक्षा ली और वि. सं. २०२१ में आचार्यपद को सुशोभित किया। वे ज्ञानज्योति के अजर अमर स्तम्भ थे। उन्होंने अध्यात्म - साधना के समान ज्ञान-साधना का भी बीड़ा उठाया। वे सही अर्थ में स्व-पर प्रकाशक ज्ञान के प्रतीक बन गये। एक ओर जहां उन्होंने स्वयं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी भाषाओं में विद्वत्ता प्राप्त की, वही दूसरी ओर वे अनेक शैक्षणिक और साहित्यिक संस्थाओं के प्रस्थापक भी बने। उनके द्वारा प्रस्थापित और व्यवस्थापित वीसों संस्थाओं में प्रमुख संस्थाएँ हैं-तिलोक जैन विद्यालय पाथर्डी, रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी, जैन धर्म प्रचारक संस्था नागपुर, रत्न जैन बोर्डिंग बोदवड, महावीर सार्वजनिक वाचनालय चिचोंडी, रत्न जैन श्राविकाश्रम श्रीरामपुर, प्राकृत भाषा प्रचार समिति पाथर्डी आदि।

इनमें प्राकृत भाषा प्रचार समिति आज प्राच्य शोध संस्थान का रूप ले चुका है। सुधर्मा और आनन्द दीप मासिक पत्रिकायें भी इसी संस्थान से सम्बद्ध है। इस संस्थान का एक बड़ा परिसर है जहां आचार्यश्री स्वयं काफी समय तक रहकर उसे तीर्थक्षेत्र-सा बना दिया। उनका कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र अधिक रहा। अतः वे महाराष्ट्र

की एक विशिष्ट विभूति के रूप में पहचाने जाते थे।

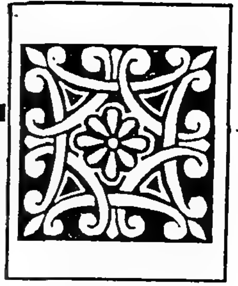
साहित्य-सर्जक

आचार्यप्रवर आनन्दऋषिजी कुशल साहित्यसर्जक और बहुभाषाविज्ञ पण्डित थे। मराठी भाषा और साहित्य के विशेष अध्येता होने के कारण उन्होंने आत्मोन्नतिचा सरळ उपाय, वैराग्यशतक, जैनदर्शन आणि जैनधर्म, जैन धर्माचे अहिंसा तत्व आदि जैसे ग्रन्थों का अनुवाद कर मराठी साहित्य को समृद्ध किया। ये ग्रन्थ भाव भाषा की दृष्टि से भी बेजोड़ हैं। भावों की अभिव्यक्ति में वहां कहीं कोई गतिरोध नहीं है। प्रवाहशीलता उनकी विशेषता है।

महर्षि आनन्द साहित्य सर्जक ही नहीं, साहित्य सर्जकों के निर्माता भी रहे। उनकी सतत प्रेरणा और संयोजना से अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। उनके प्रणीत ग्रन्थों में ऋषि संप्रदाय का इतिहास, अध्यात्म दशहरा, चित्रालंकार काव्य : एक विवेचन, ज्ञानकुंजर दीपिका प्रमुख है। उनके ही सान्निध्य में पाथर्डी से अनेक सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है।

प्रवचनकार :

महर्षि आनन्द शब्दचित्र के निर्माता, अभिव्यक्ति के धनी, वाक्पटुता के पुजारी, मृदुता और सरलता के प्रतीक थे, उनके कृतित्व और व्यक्तित्व की सभी विशेषतायें उनके प्रवचनों में झलकती हैं। उनके प्रवचनों के बारह भाग प्रकाशित हो चुके हैं जिनके अध्ययन से उनके प्रवचनों की गंभीरता का पता चलता है। अपने विषय को अनेक



उपमाओं, उदाहरणों, कथानकों और श्रोतृवर्ग को ग्राह्यशक्ति के अनुसार उपदेश देने की कुशलता आनन्द ऋषिजी की अन्यतम विशेषता है।

महर्षि आनन्द की दृष्टि सुलझी हुई थी। उनकी चिन्तन प्रखरता और प्रतिमा-विशदता उनके प्रवचन सुनने और पढ़ने पर अनुभव में आती थी। इन प्रवचनों में उनके आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक जगत के संदर्भ में व्यक्त तत्त्व चिन्तन और सभी दृष्टिकोण का उद्घाटन होता है। उसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं।

धर्मः स्वरूप और उपयोगिता

जीवन को विशुद्ध और परिष्कृत बनाने के लिए धर्म की अहम् भूमिका होती है। उसकी अमर-ज्योति ही इस संसार रूपी अरण्य में भटकते हुए जीव को सही मार्ग बता सकती है। इस लक्ष्य को उन्होंने यह कहकर स्पष्ट किया कि धर्म का तात्पर्य बाह्य आडम्बर या दिखावें से नहीं है। वरन उसका सम्बन्ध जीवन में सद्गुणों, सद्वृत्तियों और निर्विकारी जीवों को उद्दीपित करना है। वह कषाय विश्व को नाशकर जीवन के लिए परम रसायन सिद्ध होता है। इसलिए ऋषिवर ने धर्म को कल्पवृक्ष की संज्ञा दी थी और उसको ऐसा दिव्य स्रोत बताया था जिसमें अवगाहन कर प्रत्येक प्राणी अपने आत्मा की



मलिनता को धो सकता है।

धर्म का तात्पर्य है - सम्यग्ज्ञानपूर्वक विवेक को जागृत किये रखना और सांसारिक भोगों से विरक्त हो जाना। धर्म की अनुभूतिपूर्वक स्वाध्याय और शुभचिन्तन से समभाव और निरहंकारिता जागृत होगी। पुरुषार्थ, निद्रात्याग, ऊनोदर, मौन, सत्संगति, विनय, तप, सांसारिक असारता का ज्ञान स्वाध्याय से ज्ञानी का सान्निध्य और इन्द्रियविषयत्याग से सम्यग्ज्ञान की आराधना में तीव्रता आती है। ज्ञान और क्रिया का मार्मिक सम्बन्ध जीवन की सफलता का अजस्र स्रोत है।

जीवन को सफल बनाने के लिए संतों की सत्संगति एक अपरिहार्य साधन है। निर्लोभी, निर्मोही, निःस्वार्थी और सन्मार्ग दर्शक सन्त पथभ्रष्ट प्राणी को सही मार्गदर्शन देने में सक्षम होते हैं। आनन्दऋषिजी के ये शब्द हर पीढ़ी के लिए उद्‌बोधक बने हुए हैं। उन्होंने अनेक उदाहरण देकर सन्त समागम करने की बात कही है। उनकी दृष्टि में शत्रु-मित्र के प्रति समान व्यवहार, बौद्धिक विकास, क्रोधादि विकारों की शान्ति, गुणवत्ता आदि जैसे सद्‌गुणों की प्राप्ति सत्संगति से ही होती है।

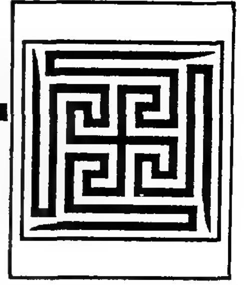
शिक्षा और शिक्षाजगत :

आचार्यश्री के तत्त्वचिन्तन की परिधि में शिक्षण और शिक्षा जगत भी समाविष्ट है। शिक्षण जगत में व्याप्त असंतोष अनुशासनहीनता और आन्दोलन का कारण उनकी दृष्टि में धार्मिक संस्कारों का अभाव है। धार्मिक संस्कारों के न होने से माता-पिता के प्रति श्रद्धा व सम्मान का भाव जागृत नहीं होता, विनम्रता नहीं रहती, चारित्र का निर्माण नहीं होता।

आचार्यश्री के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मात्र सांसारिक संसाधनों को जुटाना नहीं है बल्कि ज्ञान-चक्षुओं को उद्‌घाटित कर आत्मा को जन्म मरण के चक्कर से मुक्त करना है। इसी उद्देश्य की परिपुष्टि के लिए उन्होंने ऐसे शैक्षणिक संस्थान स्थापित किये जिनमें अध्यात्मवादी शिक्षा देने की परिपूर्ण व्यवस्था रही है। इस व्यवस्था के तहत ज्ञान के साथ चारित्र्य का अखूट सम्बन्ध भी बना रहा है।

परिवार पोषण की नीति :

आचार्यश्री की दृष्टि पारिवारिक समस्याओं पर भी घूमती रही है। आधुनिक परिवारों में व्याप्त अनिश्चितता, असंस्कारिता, चरित्रहीनता, घृणा, तिरस्कार, अशान्ति आदि के प्रतिक्षोभ व्यक्त करते हुए कहते रहे हैं कि यह सब हमारी दूषित शिक्षा प्रणाली का फल है। माता-पिता की सेवा, भक्ति तथा सम्मान से बढ़कर उनकी दृष्टि में अन्य कोई भी धर्म या शुभकृत्य नहीं है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हर परिवार अपने घर का वातावरण सुन्दर बनाये और बालकों पर प्रेरणाप्रद संस्कार डाले। इसके बिना न भक्ष्य अभक्ष्य का विवेक जाग्रत हो सकता है और न कुरीतियों से समाज मुक्त हो



सकता है। समाज को सुसंगठित करने का भी उनका महनीय कार्य अविस्मरणीय रहेगा।

आचार्यश्री के ये कतिपय सूत्र हैं जिन्हें उनके प्रकाशित प्रवचन अंगों के पन्नों पन्नों पर पढ़े जा सकते हैं। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अहिंसा का समन्वित स्थल है। सरलता, निर्मलता और तपस्तेज का प्रतीक है तथा ज्ञान, ध्यान, सेवा और विनय का प्रतिबिम्ब है। उनके प्रवचन उपदेश और तत्त्वचिन्तन के बिन्दु व्यक्ति की डूबती हुई नौका के लिए पतवार बनें रहेंगे। उनके प्रति प्रदत्त श्रद्धांजलि तभी सार्थक होगी जब हम गुरुवर द्वारा चलाये गये शैक्षणिक, सामाजिक और आध्यात्मिक संस्थानों में नये परिप्रेक्ष्य में प्राण फूंके और उन्हें जनसामान्य के नजदीक पहुंचाये।



आदर्श ऋषि

■ अमृतलाल शास्त्री, लाडनूं (राज.)

निःशेषागमबोधबन्धुरमतिर्भाषाष्टकज्ञो वशी
रागद्वेषविवर्जितोऽर्जितयशा वृद्धोऽपि
संस्फूर्तिभाक्।
आचार्य प्रवरः प्रशस्तचरितः सत्सूक्तिरत्नाकर
आनन्दः स ऋषीश्वरो विजयते
विश्वम्भराविश्रुतः।।

किसी भी व्यक्ति के विशिष्ट गुणों का सही परिचय उसके निकट सम्पर्क से ही प्राप्त हो सकता है। मैंने भी लगातार तीन वर्षों तक निकट रहकर जैन धर्म दिवाकर, राष्ट्र सन्त, आचार्यसम्राट्, अष्टभाषावित्, पूज्य श्री आनन्दऋषि जी महाराज के असाधारण विशिष्ट गुणों का परिचय प्राप्त किया।

आचार्यश्री का निर्मल यश शारदीय पूर्णिमा की चाँदनी की भांति भारतवर्ष के कोने-कोने में व्याप्त था, है और भविष्य में भी रहेगा। यत्र-तत्र-सर्वत्र उनके पवित्र गुणों की चर्चा होती रही। मैंने भी उसे सुना। फलतः उनके दर्शनों के लिए अहमदनगर (महाराष्ट्र) गया। यह बात आज (२५-४-९२) से चार वर्ष पूर्व की है। उनके दर्शनों में चुम्बक की भांति अद्‌भुत आकर्षण शक्ति विद्यमान थी। इस कारण तीन वर्षों तक वहीं रुका रहा।

सतत जागरूक - आचार्यश्री परमवृद्ध हो चुके थे। उनकी देखने और सुनने की शक्ति कम हो गयी थी। चलते समय उनके पैर अपना असामर्थ्य प्रकट कर देते थे- दूसरों के सहारे से ही वे आगे बढ़ पाते थे। आहार की मात्रा बहुत कम हो गयी थी। रात में भी उन्हें नींद कम आती थी। 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'



समस्त प्राणियों के लिए जो रात्रि है, उसमें भी संयमी जागरूक रहता है' इस उक्ति के आप निदर्शन थे।

जिस दिन उन्हें तीव्र ज्वर आ जाता था, उस दिन उनका सौम्य गोल गोरा चेहरा लालवर्ण का होकर उदित सूर्य की भांति प्रतीत होने लगता था। ऐसे समय में भी उनके श्रीमुख से आगमों के पद्य निकलते रहते थे।

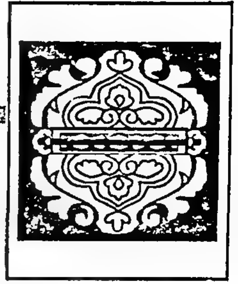
व्यस्त दिनचर्या - आचार्यश्री की दिनचर्या अत्यन्त व्यस्त रहती थी- सूर्योदय से पहले ही उठकर आप ४ बजे से रात्रि के १० बजे तक एक-के-बाद दूसरे कार्य में संलग्न रहा करते थे।

आपका पहला प्रवचन सबेरे साढ़े सात बजे और दूसरा साढ़े ग्यारह बजे होता रहा। दिन के १० बजे से किसी एक आगम का आप स्वाध्याय करते थे, जिसमें सभी ऋषि, महासतियाँ और श्रावक-श्राविकाएँ भी उपस्थित रहती थीं। दोपहर को आहार लेने के बाद आप अपने शिष्यों को व्याकरण, न्याय, दर्शन या आगम के पाठ पढ़ाया करते थे, और पाठ पूछते भी रहे। आपका स्वर अत्यन्त मधुर रहा। वृद्धावस्था के कारण उनका स्वर धीमा पड़ गया था, पर कौन पद्य कैसे पढ़ा जाता है- यह शिक्षा भी आप अपने शिष्यों को देते थे और कण्ठस्थ भी करा देते थे। सभी कण्ठस्थ करते थे, पर आपके अत्यन्त मेधावी शिष्य श्री महेन्द्रऋषि जी म. को अन्यों की अपेक्षा अधिक पद्य याद हो गये थे, जिनकी संख्या कई हजार थी।

ध्यान - प्रतिक्रनण के पश्चात् आप १० बजे तक प्रति दिन ध्यानमग्न रहते थे, इसके उपरान्त ही वे लेटते थे और लेटे लेटे चिन्तन करते रहे।

शिक्षा का प्रचार-प्रसार - आचार्यश्री ने अपने गुरु श्री रत्नऋषिजी महाराज से आगम आदि समस्त जैन वाङ्मय का और एक विशिष्ट ब्राह्मण विद्वान पं. राजधारी शास्त्री त्रिपाठी से-जिनके विद्वान पुत्र पण्डित श्री चन्द्रभूषणजीमणि त्रिपाठी, अहमदनगर में परीक्षाधिकारी के पद पर प्रतिष्ठित है-न्याय-व्याकरण आदि विविध विषयों का अध्ययन किया था। जैन समाज के बच्चों को उत्तम शिक्षा देने की कोई उचित व्यवस्था उस समय नहीं थी-ऐसी स्थिति में आपने उपदेश देकर २५-१२-१९३६ को श्री तिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना करवा दी और जगह-जगह शिक्षा संस्थाओं की। इस परीक्षा बोर्ड की परीक्षा में प्रारम्भ से आचार्य तक की विविध परीक्षाओं में प्रतिवर्ष हजारों परीक्षार्थी बैठते हैं। फलतः यह बोर्ड शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भारी सहायक सिद्ध हुआ।

पाठ्यग्रन्थों का प्रकाशन - पाठ्यक्रम के जो ग्रन्थ अलभ्य थे, वे आचार्य श्री के उपदेश से प्रकाशित किये गये। कुछ पाठ्यग्रन्थों के तो अनेक संस्करण प्राशित हुए हैं।



आचार्यश्री के प्रवचनों का प्रकाशन - आचार्यश्री के ग्रन्थों के साथ उनके प्रवचनों के भी बृहत्काय जिल्दों में आठ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। इनके स्वाध्याय से प्रबुद्ध पाठकों का ज्ञानवर्धन हो रहा है।

योग्य शिष्य-शिष्याएँ - आचार्यश्री के द्वारा तैयार किये गये सैकड़ों शिष्योंमें-ऋषियों में कुछ आचार्य हैं, कुछ एम. ए. हैं और कुछ पीएच.डी. भी। इन में कुछ अच्छे वक्ता हैं, उत्तम लेखक हैं और कुछ कवि भी। ये अनेक ग्रुपों में यत्र-तत्र जनता को उद्‌बोधित कर रहे हैं।

आचार्यश्री के शिष्यों की अपेक्षा शिष्याओं-महासतियों की संख्या अधिक है। कई ग्रुपों में तो महासतियों की संख्या बीस से भी अधिक है। इन में भी अनेक आचार्य हैं, एम. ए. हैं और पीएच. डी. भी। अनेकों में बोलने की विलक्षण शक्ति है। इनके प्रवचनों में श्रोताओं की भारी भीड़ रहती है।

आचार्यश्री - आनन्दजी अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे, पर पूर्व जन्म के संस्कारों के प्रभाव से वे अत्यन्त विरक्त थे। ज्योतिषियों ने जन्मकुण्डली, और सामुद्रिकशास्त्रवेत्ताओं ने तलवे में मछली का स्पष्ट चिन्ह देखकर आपके अत्यन्त उज्ज्वल भविष्य की सूचना दी थी। ऐसे होनहार पुत्र को कौन छोड़ सकता है? पर जो होना होता है, उसे कौन टाल सकता है? फलतः आनन्द ने बाल्यकाल में ही परिवारजनों से कथमपि अनुमति लेकर गुरुवर्य श्री रत्नऋषि जी महाराज से जिन दीक्षा ले ली। अब वे आनन्द से आनन्द ऋषि हो गये। प्रबल प्रतिभा के बल से आपने अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। अनेक प्रदेशों के भिन्न भाषा भाषियों का उन्हीं की भाषा में तत्त्व समझा सकने की दृष्टि से आपने अनेक भाषाओं का अभ्यास किया। उनमें से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती और मराठी पर तो आपको पूरा अधिकार प्राप्त हो गया।

आपने भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तों में लगातार साठ वर्षोंतक पैदल विहार किया। शास्त्रीय ज्ञान, विविध भाषाओं का ज्ञान और स्वर में मधुरता के कारण आपके प्रवचनों को जनता मन्त्र मुग्ध-सी होकर सुनती रही। यही कारण है कि कुछ स्थानों में आपके तीन-तीन चातुर्मास हुए। पूना के चातुर्मास में मैं भी उपस्थित था। वहाँ आपके प्रववनों के लिए बड़ा भारी पण्डाल बनवाया गया था तो भी वह पर्व के दिनों में छोटा-सा प्रतीत होने लगा था। पूना बहुत बड़ा शहर है। चातुर्मास चार माह का ही होता है, पर पूना के भक्त श्रावकों ने उसे एक वर्ष का बना दिया। भक्तों के आग्रह से आचार्यश्री को पूना के भिन्न-भिन्न मोहल्लों में ठहरना पड़ा। इसी में एक वर्ष का समय निकल गया।

आचार्यश्री के साथ उनके सभी विद्वान् भी रहते रहे, पूना में भी थे। सौजन्य मूर्ति श्री अमरचन्द्रजी गांधी की



कृपा से आचार्यश्री के विद्वानों को जो सन्मान और सुविधाएँ प्राप्त हुई थीं उन्हें वे विद्वान् यत्न करने पर भी कभी भुला नहीं सकेंगे।

अगाध भक्ति - आचार्यसम्राट् आनन्दऋषिजी महाराज के प्रति जगत् की जनता के हृदय मे अगाध भक्ति रही। इसे मैंने अहमदनगर, पूना और उसके आसपास के शहरों और ग्रामों में देखा। आचार्यश्री के जन्म स्थान के सैकड़ों लोग प्रायः प्रतिदिन उनके दर्शनों के लिए आया करते थे। पूछने पर उनसे ज्ञात हुआ कि उनके गाँव के लोग आचार्यश्री को 'आनन्दबाबा' कहते हैं और उनके प्रभाव से सभी ग्रामवासी जैन धर्म का पालन करते हैं। यदि उस गांव में कोई बीमार होता है तो आनन्दबाबा के मकान की धूलि लगाने से स्वस्थ हो जाता है।

सरकारी कानून कितने ही हों पर सन्तों के द्वारा डाले गये अच्छे संस्कारों से ही जनता सुचरित बनती है। इसी लिए सन्तों की जैसी आवश्यकता पहले थी वैसी आज है और आगे भी बनी रहेगी।

आचार्यसम्राट् आनन्दऋषिजी म. का लम्बे समय तक चला शासन अत्यन्त सफल रहा। अतः उनकी याद युगों-युगों तक आती रहेगी। सचमुच उनका कोई उपमान नहीं रहा। अतः कहना चाहिए-



पदे पदे यद्यपि सन्ति साधवस्तथापि
नानन्दसमोऽस्ति कश्चन
विशिष्टता पुण्यगुणानुगामिनी समा
समेषां न नृणां प्रजायते ॥
नाना गुणगणनिलये भगवति याते
परत्र ऋषिराजे।
आनन्दे जिनकल्पेऽशरणाः सर्वे गुणा
जाताः ॥

उन्हें मेरा शत-शत वन्दन ।

■ ■

- *मानव की आत्म-चेतना की जागृति और विकास में सदुपदेशों का महान प्रभाव होता है।*
- *उपदेश के द्वारा आत्मा जागृत हो जाती है।*
- *अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाले प्राणी को सद्गुण की खोज करके पूर्ण श्रद्धा, अखण्ड भक्ति और विनय के साथ ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करना चाहिए।*
- *जीवन और जगत का ज्ञान हमें जिन ज्ञानरूपी नेत्रों से होता है, उन ज्ञान-नेत्रों को खोलने वाले गुरु ही होते हैं।*
- *अज्ञान के तिमिर से अन्ध बने हुए चक्षुओं को ज्ञानांजन की शलाका से जो उन्मीलित कर देते हैं-वे गुरु सदैव नमस्कार के योग्य हैं।*



उनके उपदेश-वाक्य स्वर्णाक्षर बन गये हैं

■ डॉ. रामनिरंजन पाण्डेय

आचार्यश्री आनन्दऋषि जी का वरद हस्त अब हमें प्राप्त नहीं हो रहा है; पर उनके वरद उपदेश हमें आज भी प्रशस्त जीवन पथ पर चला रहे है! अपने उपदेशों के रूप में स्वर्गीय ऋषि जी अमर हैं। नश्वर काया तो छोड़नी ही पड़ती है; पर जो आत्माएँ जगत के जीवों के लिये अमर उपदेश छोड़ जाती हैं वे विश्व की स्मृति में सदा मूर्तिमती बन कर बैठी रहती हैं।

उन्हीं उपदेशों में बल रहता है, जो अपने उपदेशक के जीवन में क्रिया बन कर बैठ जाते हैं। स्वर्गीय आचायश्री के सैकड़ों उपदेश-वाक्य स्वर्णाक्षर बन गये हैं। वे सब वाक्य उनके जीवन का अंग बन गये थे। इसीलिये उनमें तेज है। मनुष्य के जीवन को उज्ज्वल बना देने की उनमें शक्ति है।

जिन लोगों ने आचार्यश्री का प्रत्यक्ष दर्शन किया है उनका भाग्य सराहनीय है। उन्हें जीवन भर के लिये प्रकाश मिल चुका है। पर जिन लोगों को उनका दर्शन नहीं हुआ है, उनके लिये उस स्वर्गीय आत्मा के अमर उपदेश धर्म-पथ पर अग्रसर करते रहेंगे।

स्वर्गीय ऋषि जी इस संसार में ब्यानवे वर्ष तक रहे। बचपन से ही उनका जीवन धर्म के प्रकाश से आलोकित रहा और विश्व को वह पावन प्रकाश मिलने लगा। कालान्तर में आचार्य श्री और धर्म दोनों पर्यायवाची बन गये।

उस स्वर्गीय आत्मा के लिये मेरे अनन्त प्रणाम !

■ ■

- *पुण्य का संचय होने से मनुष्य को प्रत्येक प्रकार के उत्तम संयोग मिलते हैं तथा पापों का उदय होने से उत्तम संयोग भी बदलकर दुखदायी बन जाते हैं।*
- *तीव्रातितीव्र पुण्य एवं पाप का फल यहाँ पर ही मिल जाया करता है।*
- *पुण्य के प्रभाव से हृदय की समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं, बिगड़ते हुए कार्य बन जाते हैं।*
- *पाप का उदय होने पर बनते हुए कार्य भी बिगड़ जाते हैं और कोई भी तमन्ना पूरी नहीं हो पाती।*
- *पाप पत्थर के समान है जिनके कारण आत्मा संसार-सागर में डूबी रहती है।*



आचार्यश्री : पावन स्मृतियाँ

■ तेजराज जैन

सिकन्दराबाद चातुर्मास (सन १९७९) के दौरान करीब पांच-छ माह तक मुझे आचार्यश्री आनन्दऋषिजी के दर्शन एवं प्रवचन का पूरा लाभ मिला। यद्यपि ५-६ माह तक वे हमारे नगर में रहे, पर उनसे कभी वार्तालाप करने का अवसर नहीं मिला। प्रवचन के पश्चात् उनके आसपास भीड़ लगी रहती थी और मैंने भी उनसे व्यक्तिगत रूप से मिलने में रुचि नहीं ली। उस समय मुझे एक शौक था ऑटोग्राफ इकट्ठे करने का। एक बार उनके एक शिष्य श्री आदर्शऋषिजी से आग्रह किया कि वे बुक में आचार्यश्री के ऑटोग्राफ करवा दें। दो-तीन दिन पश्चात् आचार्यश्री से ऑटोग्राफ लेकर उन्होंने बुक लौटा दी। अपने हस्ताक्षर के साथ आचार्यश्री ने उसमें निम्न सन्देश भी लिख दिया-

'धम्मो य ताणं सरणं गई य'

अर्थात धर्म ही रक्षक है, शरणभूत है और धर्म ही सद्‌गति देनेवाला है।

आचार्यश्री का वह पावन सन्देश आज भी मेरे पास सुरक्षित है। कालान्तर में मुझे आचार्यश्री के साहित्य को पढ़ने का अवसर मिला, जिससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। 'आनन्द-प्रवचन' के बारहों भाग मैंने पढ़ डालें। पढ़ने के बाद मुझे लगा कि इन पुस्तकों में से विशिष्ट सामग्री एकत्रित कर एक पुस्तक तैयार करनी चाहिए, जो जैनेतर लोगों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो। मैं सम्पादन कार्य में जुट गया। सन १९८७-८८ में आचार्यश्री के दीक्षा अमृत महोत्सव पर 'आचार्यश्री आनन्दऋषिजी : व्यक्तित्व और विचार' नाम से वह पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका विमोचन आंध्रप्रदेश की तत्कालीन राज्यपाल श्रीमती कुमुदबहन जोशी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। वह पुस्तक आचार्यश्री के कर कमलों में समर्पित करने के लिए मैं अहमदनगर गया। उस समय आचार्यश्री ने मन्द स्वर में कुछ आशीर्वचन फ़रमाये, जिन्हें पूरी तरह सुन पाने में मैं असमर्थ रहा, पर एक वाक्य जो मैं ठीक से सुन सका, वह था,- 'साहित्य सेवा करते रहें।'

सुनते हैं कि महापुरुषों के वचनों में एक सिद्धि होती है। अगले वर्ष आचार्यश्री का ९० वाँ जन्म-दिवस आनेवाला था। मन में विचार उत्पन्न हुआ कि इस अवसर पर 'आनन्द-प्रवचन' में से ९० बोधकथाओं का चयन कर एक पुस्तक तैयार करनी चाहिए। मैंने कार्य प्रारम्भ कर दिया। उनके ९० वें जन्म-दिवस पर 'दिशाबोध' नाम से वह पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका विमोचन वरिष्ठ साहित्यकार डा. रामनिरंजन पाण्डेय द्वारा सम्पन्न हुआ। साहित्य जगत में इसका

अच्छा सम्मान हुआ और पाठकों द्वारा भी वह काफी सराही गयी। पिछले एक वर्ष से स्थानीय पत्र 'हिन्दी मिलाप' में प्रति रविवार को आचार्यश्री की एक कथा प्रकाशित हो रही है।

इस अवसर पर हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद को आचार्य आनन्दऋषि स्वर्णपदक भी प्रदान किया गया था, इस अनुरोध के साथ कि सर्वोच्च परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करनेवाले छात्र को प्रतिवर्ष यह पदक प्रदान किया जाय। इसकी व्यवस्था के लिए श्री आनन्द आध्यात्मिक जैन शिक्षण संघ की ओर से दस हजार रुपये का एक चेक भी सभा को प्रदान किया गया।

इसके पश्चात आचार्यश्री के ९२ वें जन्म-दिवस पर उनकी सूक्तियों का एक संकलन 'आशीर्वचन' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसकी विमोचन-विधि न्यायमूर्ति श्री गोपालराव एकबोटे के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई।

उपरोक्त तीनों पुस्तकें आचार्यश्री के करकमलों में समर्पित करने का अवसर मुझे मिला, जिसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ।

एक बार मैं आचार्यश्री के दर्शनार्थ अहमदनगर गया था। वहाँ श्री प्रवीणऋषिजी ने ४०-५० वर्ष पुराने आचार्यश्री के पत्र व्यवहार की हस्तलिखित प्रतिलिपियां मुझे दिखलायी। देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि इतनी व्यस्तता के बावजूद आचार्यश्री को इन्हें लिखने के



लिए कैसे समय मिला होगा। पत्र कब लिख गये, किन्हें लिखे गये, कहाँ लिखे गये- ये सारी बातें सुव्यवस्थित रूप से कापियों में नोट की हुई थीं। विभिन्न समस्याओं का किस प्रकार समाधान निकाला जा सकता है, इसे पत्रों को पढ़कर अच्छी तरह जाना जा सकता है। उनकी एक नोटबुक में से कुछेक सुवाक्य मैंने नोट किये थे, जो इस प्रकार हैं-

ज्ञान के पाचन के लिए मनन करना आवश्यक है।

जितना वाणी के उपर संयम रहेगा, उतनी ही वाणी की कद्र होगी।

प्रयत्न करना अपना कर्तव्य है।

हिम्मत रखने से ही काम हो सकते हैं।

पत्रों का जवाब देने से उत्साह बढ़ता है।

जिसका यश पीछे कायम है, वह मुर्दा होते हुए भी जिंदा है और जिसका बदनाम पीछे रह गया, वह जिंदा होते हुए भी मुर्दा है।

गुणवान लोगों के संसर्ग से साधारण छोटी वस्तु भी गौरव को प्राप्त होती है, जैसे फूलों की माला के संबंध से सूत मस्तक पर धारण किया जाता है।

इस प्रकार सारी कापियों में से इस तरह के सुवाक्य इकट्ठे किये जाएँ तो एक अच्छा संकलन तैयार हो सकता है।

कुछ माह पूर्व मन में विचार उत्पन्न



हुआ कि आचार्यश्री के पावन नाम पर एक पुरस्कार हिन्दी में श्रेष्ठ लेखन के लिए प्रतिवर्ष साहित्यकार को प्रदान किया जाना चाहिए। हमने अपने साथियों से विचार-विमर्श कर निर्णय ले लिया कि इस कार्य को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करें। आचार्यश्री के जन्म-दिवस को आठ नौ माह शेष थे। पर करीब दो माह बाद आचार्यश्री का ७९ वाँ दीक्षा दिवस आनेवाला था। इस अवसर को हमने उपयुक्त समझा और तैयारियां प्रारंभ कर दीं। १५ दिसम्बर १९९१ को स्थानीय रवीन्द्रभारती सभागृह में पहला 'आचार्य आनन्दऋषि साहित्य पुरस्कार' हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार डा. रामनिरंजन पाण्डेय को उनकी कृति 'रामायण तुलसी-दल' के लिए प्रदान किया गया। कालान्तर में यह पुरस्कार प्रतिवर्ष आचार्यश्री के जन्म-दिवस पर प्रदान किया जाएगा।

आचार्यश्री का एक कथन है कि 'काल किसी की परवाह नहीं करता, इसलिए हमें चाहिए कि जिस क्षण मन में शुभ संकल्प आएँ, उसी क्षण से उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास करें।

आज सोचता हूँ कि इस कार्य के लिए हम थोड़ासा भी प्रमाद करते तो सुनहरा अवसर खो चुके होते, क्योंकि इस दीक्षा-दिवस के बाद आचार्यश्री का जन्म-दिवस हमें कभी मिलनेवाला न था। २८ मार्च १९९२ को उनका परिनिर्वाण हो गया। ३० मार्च को उनकी अन्त्येष्टि सम्पन्न हुई, जिसमें लाखों लोगों के साथ मैं भी सम्मिलित हुआ था।

इस तरह आचार्यश्री से जुड़ी कुछ पावन स्मृतियाँ शेष रह गयी हैं, जिनकी गिनती मैं अपने जीवन के अति मूल्यवान क्षणों में करता हूँ और जिनके लिए स्वयं को भाग्यशाली मानता हूँ।



- *पुण्य जहाज के समान है जिसका आधार लेकर भव-सागर को पार किया जा सकता है।*
- *पुण्यवान पुरुष थोड़ा कार्य करके भी यश का उपार्जन अधिक कर लेता है।*
- *जीवन का ध्येय इस जीवन से मुक्ति प्राप्त करना ही है।*
- *आत्मा के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु नष्ट होने वाली है।*
- *सांसारिक समृद्धि से और भौतिक समृद्धि से कभी सच्चा सुख हासिल नहीं हो सकता। संग्रह और परिग्रह लोभ को बढ़ाते हैं।*



आनन्द दर्शन यात्रा

■ प्रस्तुतकर्ता : राजमल बोरा

(३ फरवरी १९९२ को गणेश नगर में पुण्यतिथि का समारोह हुआ। उसके तुरन्त बाद फरवरी में ही तपस्वी मुनिश्री मिश्रीलालजी महाराज साहब, जिन्हें हम आदर से बापजी कहते हैं, आनन्द-दर्शन की पदयात्रा पर गये। २३ फरवरी १९९२ को प्रस्थान किया और १ मार्च १९९२ को अहमदनगर में मिलन हुआ। उक्त अद्भुत और अभूतपूर्व घटना का विवरण स्वयं बापजी ने बतलाया। उन्हीं के श्रीमुख से सुनकर उक्त यात्रा का वर्णन उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है।)

चतुर्विध संघ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका पदयात्रा - आनन्द-दर्शन यात्रा का निर्णय हुआ। सुवालालजी छल्लाणी की प्रेरणा रही। कहा - "आचार्य भगवन् के दर्शन की हमारी इच्छा है। आप दोनों का मिलन हो!" इस प्रेरणा स्वरूप साधु की भाषा से जाने का निर्णय हुआ। सारी योजना बनानेवालों में सुवालालजी छल्लाणी, खिंवराजजी गादिया, चम्पालालजी देसरडा, प्रकाशचंदजी रुणवाल आदि प्रमुख हैं। २३ फरवरी १९९२ के दिन प्रस्थान करने की योजना बनी। पत्रिका छपवाई गई। औरंगाबाद नगर में वितरित हुई। श्रावक-श्राविकाओं ने अपनी भावना प्रदर्शित की। हम लोग ठाणा २, महासतीजी धीरजकंवरजी, पंडिता प्रभाकंवरजी आदि ठाणा १०, यहाँ से २३ फरवरी १९९२ को प्रस्थान किया। डेढ़-सौ / दो-सौ श्रावक-श्राविका एकत्रित हो गये थे। जैनेतर लोग भी साथ में आए। प्रमुख नाम जाजू माहेश्वरी, आसोपा, नंदू शर्मा, मालाणी, जोशी आदि साथ में थे। प्रातःकाल के समय यहाँ से विहार करके कुछ समय बाद पंढरपुर पहुँचे। बाद में वहीं पर मुकाम हुआ।

चौबीस फरवरी १९९२ को विहार करके खिंवराजजी गादिया के फर्म में सबेरे का नाश्ता हुआ। वहाँ से विहार कर ढोरे गांव में मुकाम हुआ। लासूरवाले मोतीलालजी चंडालिया ने भोजन की व्यवस्था की। २५ फरवरी को भेंडाला में सबेरे का जलपान हुआ। वहाँ से विहार कर प्रवरा संगम की ओर बढ़े। प्रवरा संगम के श्री संघने सबका स्वागत किया। वहीं पर व्याख्यान हुआ। मुकाम भी हुआ। २६ फरवरी को वहाँ से विहार कर नेवासा फाटे पर चिचाणीजी के बंगले पर ठहरे। भोजन की व्यवस्था चिचाणीजी और जितेन्द्रकुमार मुथा ने की। वहाँ से विहार कर सायंकाल के समय बाबुलवेढ़ा हाईस्कूल में मुकाम किया। वहाँ पर अहमदनगर के नारायणदासजी लोढ़ा और अन्य श्रावकगण आये। बिनती की। सत्ताईस फरवरी को विहार किया और वडाला पहुँचे। वहाँ पर नाश्ता-पानी हुआ। सायंकाल में घोडेगांव पहुँचे। वहाँ के



श्रावकों ने स्वागत किया। वहीं पर मुकाम हुआ।

अट्ठाईस फरवरी को सबेरे घोडेगांव से प्रस्थान कर पांढरीपुल पहुँचे। वहाँ पर अहमदनगर से प्रवर्तक कुन्दनऋषिजी ठाणा २, स्वागत हेतु पधारे। मिलन हुआ। वहाँ पर आहार-पानी लिया। फिर वहाँ से जेऊर पहुँचे। वहाँ पर साध्वी अर्चनाजी आदि ठाणा ३, साध्वी उज्ज्वलकंवरजी आदि ठाणा २, स्वागत हेतु पधारे। श्रीसंघ की ओर से वहाँ पर भोजन की व्यवस्था हुई। वहाँ से २९ फरवरी को अहमदनगर के बाहर यशवन्त कालोनी में पहुँचे। डॉक्टर बोरा के बंगले पर ठहरे। नगर के श्रावक-श्राविका बड़ी संख्या में आए। साध्वी प्रमोदसुधाजी, साध्वी सुशीलकंवरजी, साध्वी इन्द्रकंवरजी आदि साध्वी वृंद भी स्वागत हेतु आए।

१ मार्च १९९२ को मिलन हेतु विहार करना था। उस समय जालना से तीन बसें, औरंगाबाद से १४ बसें, १८ मेटाडोर, ४० से ५० तक कारें आदि नगर में पहुँच गई थीं। काफी संख्या में श्रावक-श्राविका आए। वैजापुर से भी बस तथा गाडियाँ आईं। सवेरे साढ़े नौ बजे मिलन हेतु प्रस्थान हुआ। साध्वी वृन्द ठाणा १०० एवं साधुसंत १५ ठाणा उस आनंद दर्शन यात्रा में सम्मिलित थे। मार्ग में और लोग सम्मिलित होते गए। नगर के प्रतिष्ठित नागरिक भी आए।

नगर में उस समय महासतीजी शान्तिकँवरजी के संथारे का ३२ वाँ दि[न] चल रहा था। औरंगाबाद से विहार कर[ने] के पहले ही मैंने साध्वी मंगलप्रभाजी, ज[ो] उस समय नगर की ओर विहार कर रह[ी] थीं - से कहा था - 'हमारे पहुँचे बिना संथार[ा] सीझेगा (पूर्णता को प्राप्त होना) नहीं। और बात ठीक हुई। हम लोग मिलन की पदयात्रा में चलते समय महासतीजी को दर्शन देने, मार्ग में ही, महासतीजी के पास पहले गये। दर्शन दिया। मंगलिक सुनाई। वहाँ से फिर पाथर्डी बोर्ड की ओर गये।

अहमदनगर के प्रमुख मार्गों से पदयात्रा करते हुए हमारा समूह पाथर्डी बोर्ड पहुँचा। आचार्य भगवन्, कल्याणऋषिजी आदि सब सन्तों का मिलन हुआ। वंदन हुआ। दर्शन हुआ। आचार्य श्री की आँखों में हर्ष के बिन्दु छलक आए। वंदन करके सब विराजमान हुए। उसी समय उपस्थित साधु समुदाय, साध्वी समुदाय, श्रावक समुदाय, श्राविकाओं का समुदाय के समूह में आचार्यश्री ने शाल तथा चादर ओढाकर 'शासन प्रभावक तपोरत्न' की पदवी प्रदान की।

उसी आयोजित मिलन के अवसर पर ही साध्वी प्रीतिसुधाजी, साध्वी अर्चनाजी, साध्वी प्रमोदसुधाजी - ने मिलकर साध्वी प्रभाकँवरजी को भी चादर ओढ़ाई और उनका सम्मान किया। सम्मिलित रूप से गुण-स्तवन हुआ।

उक्त अवसर पर प्रवर्तक कुन्दनऋषिजी, कल्याणऋषिजी के भाषण हुए। अन्त में मेरा भाषण हुआ।



जिस समय आचार्य भगवन् का मिलन हुआ, उस समय के उत्साहपूर्ण दृश्य का वर्णन करने में असमर्थ हूँ। स्वर्गीय गुरुदेव गणेशलालजी महाराज साहब से मिलन न हुआ। अन्तिम दूसरी पीढ़ी में हर्षित का मिलन हुआ।

श्रावकों ने साध्वियों ने भाषण दिए। करीबन दो बजे तक सभा चलती रही। औरंगाबाद के डॉ. दवे, महापौर मनमोहनसिंग आदि भी आए। भाषण दिए। दो बजे भाषणों की समाप्ति हुई। उमंग से नगर के श्रीसंघ ने सबका स्वागत किया। लोगों के मुखारविंद से शब्द निकल न रहे थे - 'ऐसा अभूतपूर्व मिलन न हुआ, न होगा।'

दूसरे दिन साध्वी प्रभाकंवरजी ने साध्वी प्रमोदसुधाजी को चादर ओढाकर 'सेवा सौदामिनी' की पदवी प्रदान की।

मैंने एक मार्च को ही महासतीजी शान्तिकंवरजी को ३२ वें दिन (संथारे के) कहा था कि तीन दिन के भीतर संथारा सीझ जाएगा। दूसरे दिन दो मार्च को सबेरे संथारे के अन्तिम समय में पुनः दर्शन दिए। मंगलिक सुनाई। चेतावनी दी - 'आपका समय आ गया है।' मंगलिक सुनाकर हम लोग व्याख्यान में विराजमान हुए। व्याख्यान जारी था। ग्यारह बजे सन्देश मिला कि अन्तिम संथारा सीझ गया है। बड़ी संख्या में अन्तिमयात्रा आनन्द के साथ सम्पन्न हुई।

एक मार्च से सात मार्च तक अहमदनगर में रहे। वहीं पर आचार्यश्री को देखते हुए लग रहा था कि 'समय आ गया है।' इसीलिए मैंने बार बार नारायणदासजी लोढ़ा से कहा भी था - 'चांदी की बैकुंठी तैयार करवाओ।'

नगर में सात दिन के मुकाम में श्रीरामपुर का संघ आया। होली चातुर्मास की बिनती की। नगर के लोगों की बिनती भी थी किन्तु स्वीकृति श्रीरामपुर को दी।

सात मार्च शनिवार को आचार्यश्री से मंगलिक सुनकर हम लोगों ने श्रीरामपुर की ओर प्रस्थान किया। संतलोग साथ में थे। नगर से एम. आई. डी. सी. की ओर चले। वहाँ से वांबोरी पहुँचे। वहीं पर मुकाम किया। वहाँ से राहुरी फैक्ट्री आए। पुनः मुकाम किया। अगले दिन देवलाली में मुकाम किया। वहां व्याख्यान हुआ। वहाँ से विहार कर बेलापुर गये। बेलापुर में दो दिन मुकाम रहा। बेलापुर से श्रीरामपुर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में नब्बे वर्ष की वृद्धा को संथारा दिया। उक्त संथारा तीन दिन में सीझ गया। श्रीरामपुर में होली चातुर्मास ठाट-बाट से हुआ। वहाँ से श्रीसंघ ने गणेशनगर में शेड बनाने के लिए ५० टिन की पेटी का योगदान दिया। १९ फरवरी को श्रीरामपुर से विहार किया। नेवासा, प्रवरा-संगम, वालूज, पंढरपुर, छावनी, अंजली टाकीज होते हुए महावीर भवन आए। महावीर भवन से पुनः गणेशनगर पहुँचे। हमारी आनंद दर्शन यात्रा इस तरह आनन्द से सम्पन्न हुई। २६ मार्च को हम लोग गणेशनगर में थे।





आनन्द की प्रतिमूर्ति

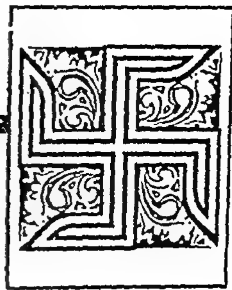
■ गिरिजाशंकर शर्मा 'गिरीश'

तेरह वर्ष की अल्पावस्था में दीक्षा ग्रहण करके तपोनिष्ठ जीवन प्रारम्भ किया, महाराष्ट्र के चिचोंड़ी ग्राम में श्रावण शुक्ला प्रतिपदा वि. सं. १९५७ को उत्पन्न बालक नेमिचंद ने जो कि दीक्षित होने पर आनंदऋषि के नाम से जाने गये। इस कोमल वय में साधनापूर्ण जीवन, शास्त्रीय अध्ययन के साथ-साथ संस्कृत, प्राकृत, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन क्रम भी जारी रहा। चिन्तन-मनन और ग्रन्थों के अध्ययन ने एक नयी दिशा प्रदान की, ज्ञान की तीव्रता, एक तेज धार। और लेखनी गतिमान हो उठी, जिससे भावनायोग, स्याद्वाद आनन्द प्रवचन (बारह भागों में), तिलोक काव्य तरु, अध्यात्म पर्व, दशहरा जैसे ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ। अनेक भाषाओं के अध्ययन ने रुचिकर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को अनुवादित करने की प्रेरणा प्रदान की और आठ ग्रन्थों को अनुवादित करने की प्रेरणा प्रदान की और आठ ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाश में आया।

यह तो था उनके लेखकीय व्यक्तित्व का एक सामान्य परिचय, अब उनके साधना पक्ष की ओर दृष्टिपात करें। १९८८ तक वे देश के विभिन्न नगरों में पचहत्तर चातुर्मास कर चुके थे। तप कर साधना द्वारा ज्ञानज्योति प्राप्त कर किसी एकान्त कन्दरा में बैठकर आत्मलीन हो जाना किसी साधक की चरम आत्मोन्नति है, किन्तु वही साधक स्थान-स्थान पर जन-जन के मानस में उस ज्योति के प्रकाश की किरणें फैलाएँ स्वयं तो सन्मार्ग पर है ही, सभी को अपने साथ ले चलने का प्रयत्न करे तो वह अत्यंत महान् है, वन्दनीय है। आचार्यश्री इसी कोटि के आचार्य थे।

प्रभावशाली वक्ता के रूप में उनका स्वरूप इस प्रकार का था कि जो भी उनकी मृदु वाणी सुन लेता वह उनकी ओर खींचा चला आता। एक जादू सा सम्मोहन छा जाता श्रोताओं पर और वे उस समय अपना अस्तित्व तक विस्मृत कर बैठते। अपने प्रवचनों में वे लघु बोध-कथाएँ समय समय पर प्रस्तुत करते, जो कि विषय के प्रति रुचि जागृत करने में सक्षम होती हैं। केवल शास्त्रीय विवेचन कुछ समयोपरान्त साधारण श्रोताओं को नीरस एवं उबाऊ प्रतीत हो सकता है, आज की भाषा में बोर, किन्तु आचार्यश्री के धाराप्रवाह प्रवचन में काल की गति स्थिर हो जाती, श्रोताओं को इसका भान तक नहीं होता, इच्छा रहती कि सुनते रहें, सुनते रहें।

आचार्यश्री के साहित्य की विशिष्टता



यह भी है कि उन्होंने अपने कथन की पुष्टि हेतु केवल जैन-ग्रन्थों का आश्रय ही नहीं लिया, अपितु विभिन्न मतावलम्बियों, सन्तों एवं कवियों के विचारों को भी मुक्त रूप से हृदयंगम करके उस पर चिन्तन-मनन करके, जीवनानुभूति से छान कर प्रस्तुत किया है। मधुमक्षिका की भाँती उन्होंने मधु संचय किया है। मधुमक्षिका विभिन्न जाति के पुष्पों से पराग एकत्रित कर मधु के रूप में परिवर्तित करती है, समस्त जाति के पुष्पों के पराग को समरस करके, वह केवल एक जाति के ही पुष्पों के पराग का संचय नहीं करती, आचार्यश्री के साहित्य में भी यही बात है, धार्मिक कट्टरता के दर्शन उसमें नहीं होते।

यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, तथापि उनके साहित्य के अवलोकन मात्र से उनके व्यक्तित्वं का पूर्ण परिचय प्राप्त हो गया। क्रोध पर विजय और सहनशीलता के उदाहरण उनके जीवन के अनेक प्रसंगों में चित्रित हैं। समाज में व्याप्त अनाचार, समाज की विशृंखलता उनके हृदय को कचोटती थी और इसके निवारण हेतु वे सदैव क्रियाशील थे। उनके कथनानुसार समस्या को सुलझाने हेतु विवेक और साहस की आवश्यकता है, ठीक वैसे, जैसे रोग-निवारण के लिए चिकित्सक और औषधि की। विवेक चिकित्सक है और साहस औषधि।

व्यक्तित्व की सरलता, सौम्यता, मृदुता, कथनी और करनी में अन्तर न होने से वे लाखों लाखों जनों के प्रणम्य थे, आत्मानंद में मग्न, सभी को आनन्द की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देते हुए, खींचते हुए। ऐसे मनीषी ऋषि आचार्यश्री आनन्दऋषिजी के चरण-कमलों में हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।



- *सारे संसार की समृद्धि भी यदि एकत्र कर ली जाय, तब भी लोभी को सन्तोष नहीं होगा।*
- *यदि कैलास पर्वत के समान सोने और चाँदी के असंख्य पर्वत भी हो जाय तो भी मनुष्य को सन्तोष नहीं होगा। क्योंकि इच्छा तो आकाश की तरह अनन्त है।*
- *अगर तुम सच्चा सुख चाहते हो तो जो कुछ भी तुम्हारे पास है, सब अन्य को अर्पण कर दो, आवश्यकता हो तो शरीर भी अर्पण कर दो।*
- *अगर हम अपनी आत्मा के सहज-शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें त्याग-मार्ग पर चलना होगा।*
- *शरीर को धर्म-साधना का सहायक मात्र मानना चाहिए।*



श्रमण संघ के नायक स्व. आचार्यश्री आनंदऋषिजी

■ चंदनमल 'चांद'

ऋषि, मुनि एवं संतों का व्यक्तित्व और कर्तृत्व सदा प्रेरणादायी एवं सामान्य जन से विशिष्ट होता है। उनकी विद्वत्ता नम्रता से शोभित होती है, उनका तप त्याग उनकी सहज सरलता से निखरता है और उनका प्रत्येक कार्य मंगलकारी होता है। हजारों वर्षों से हमारे देश में ऐसे संत-सतियां होते रहे हैं और वर्तमान में भी हैं।

श्रमण संघ के स्व. आचार्य पूज्यश्री आनंदऋषि जी संत परम्परा की उसी गौरवमयी शृंखला में थे। आपका बाल्यावस्था में जैन दीक्षा स्वीकार करना एवं विशाल स्थानकवासी श्रमण संघ को कुशल नेतृत्व देना विशेष उपलब्धि थी। ७९ वर्ष के दीक्षा पर्यायी आचार्यश्री ने ९२ वर्ष की उम्र में संथारे सहित शरीर त्यागा। २८ मार्च को आप स्वर्गवासी हुए और ३० मार्च को जब आपकी अंतिम यात्रा निकली तो लगभग दो लाख जैन-जैनेतर अश्रुपूरित नयनों से उन्हें अंतिम वंदन करने देशभर से पहुँचे थे। जैन ही नहीं बल्कि जैनेतर जनता भी थी। नेताओं में देश के रक्षामंत्री श्री शरद पवार, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री सुधाकरराव नाईक, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सुन्दरलाल पटवा, श्री चन्द्रास्वामी, श्री सुशीलकुमारजी, महाराष्ट्र के अनेक मंत्रीगण आदि पहुंचे। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव का विशेष संदेश रक्षामंत्री ने पढ़कर सुनाया। इन पंक्तियों के लेखक को भी उस अंतिम यात्रा में भाग लेने का शुभ अवसर मिला। अहमदनगर का वह दृश्य अविस्मरणीय है।

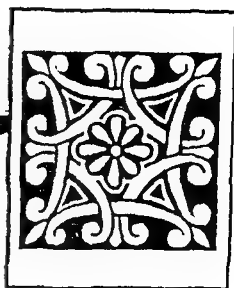
उन्हें श्रद्धांजली अर्पित करते समय दो-तीन प्रसंग याद आ रहे हैं। एक-एक क्षण स्वाध्याय एवं साधना में व्यतीत करने वाले आचार्यश्री के मैंने जब-जब दर्शन किये उनके हाथ में कोई पुस्तक देखी अथवा चरणों में विराजमान साधु-साध्वियों को अध्ययन कराते देखा। आचार्यप्रवर के प्रवचनों का संकलन "आनंद प्रवचन" शीर्षक से प्रकाशित हुआ। संभवतः उसके बारह भाग प्रकाशित हो चुके हैं। मैंने पूना में आचार्यश्री के प्रवचनों की सरसता एवं सरलता के लिए प्रशंसा की तो उल्टे मुझसे बोले - "प्रवचनों के सम्पादन प्रकाशन में कही भूलें तो नहीं हैं।"

मैं सकुचाया और बोला - "महाराज! आप जैसे महान विद्वान आचार्य की भूलें मैं कहां ढूंढ सकता हूं।"

आचार्यश्रीने सहजता से कहा - "मैं भी छद्मस्थ ही हूं और ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। आप विद्वान हैं अतः भूलें देखें तो अवश्य बतायें ताकि सुधार हो सके।"

एक महान आचार्य की इस विनम्रता, सहजता और स्पष्टता से मैं मुग्ध हो उठा।





इसके पूर्व भी कई बार जब-जब दर्शनों का संयोग मिलता तो अत्यंत वात्सल्य से "चांद बाबू" का संबोधन कर "दया पालो" कहकर आशीर्वाद देते रहे।

दूसरे धर्मों एवं जैन समाज के अन्य सम्प्रदायों के पूज्य आचार्यो एवं साधु-साध्वियों के प्रति भी स्नेह और आदरभाव आप रखते तथा समय-समय पर सार्वजनिक रूप से व्यक्त करते रहे। कभी कभी तो स्वयं आगे बढ़कर दूसरे सम्प्रदाय के सामान्य मुनि के स्वागत के लिए भी पधारे और अपनी उदारता, विनम्रता आदि से सबको मुग्ध कर दिया था। उम्र का प्रभाव उनके शरीर एवं इंद्रियों पर जरूर पड़ा किन्तु अंतर की जागरुकता एवं समाधि में कहीं कोई कमी नहीं थी। सबके प्रति मैत्रीभाव, सबकी कल्याणकामना करने वाला यह ऋषिकुल का ऋषिराज अपने अंतर में अवस्थित रहता। मैंने एक दिन अनुशासन के प्रसंग पर छोटे मुंह बड़ी बात के रूप में कठोरता के लिए आपको परामर्श दिया तो मुस्कुराये और बोले - "साधना और साधुता डंडे से पालन नहीं कराई जा सकती। इसके लिए तो आत्मानुशासन ही ज्यादा जरूरी है।"

सन १९८६ के अगस्त माह में भारत जैन महामंडल के ४५ वें अधिवेशन के पूर्व जैन पर्वों की तिथियों की एकता के लिए मंडल के नेतागण पूना पहुँचे तो आपने सहज रूप से कहा - "जैन एकता के लिए मैं सदा तत्पर हूं और मेरा कोई आग्रह नहीं है। भारत जैन महामंडल को मेरा पूर्ण आशीर्वाद है।" उसी प्रसंग में अचानक जाने आपश्री के मन में क्या विचार आया और मेरी ओर स्नेहदृष्टि से देखते हुए फरमाया-"चांद बाबू! तुम कवि हो इसलिए मुझे एक कविता सुनाओ।" मैं रोमांचित हो उठा। श्रमण संघ के महान आचार्यश्री आनंदऋषिजी को श्रोता रूप में पाना बड़े सौभाग्य की बात थी। मैंने "चांद" के संबंध में अपनी एक कविता उन्हें सुनाई और आशीर्वाद पाया।

छोटे-छोटे कार्यकर्ता, कवि, साहित्यकार सबको इसी प्रकार स्नेह का सम्बल देकर आगे बढ़ाना उनकी सहज प्रकृति थी। लघु बनकर ही विराटता कैसे पायी जाती है यह आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं विचारों से जाना जा सकता था। बालक जैसी सरलता और निश्छलता आपकी अनूठी विशेषता थी। कोमलता और कठोरता दोनों ही उनमें थी। स्वयं की साधना के प्रति कठोरता और दूसरों के प्रति करुणा, वात्सल्य एवं कोमलता थी। पिछले जन्म दिवस पर मैं पहुँचा। भारी भीड़ थी। कार्यक्रम में संत उन्हें जब मंच पर लाये तो जनता जय-जयकार करने लगी। जब उन्होंने धीरे धीरे रुक-रुककर मांगलिक सुनानी प्रारम्भ की तो सड़कों पर चलने वाले वाहन, जैन-जैनेतर सब सावधान की मुद्रा में खड़े होकर एक-एक शब्द को सुनने नहीं मानो पीने लगे हो। बड़ा ही भव्य दृश्य था वह। अनेक घटनाएं, अनेक प्रसंग हैं जो अब इतिहास बन गये हैं।



उनका मुझ पर सदा वात्सल्य भाव रहा और उनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद पाने वाले भाग्यशालियों में मैं भी हूं। आचार्यश्री को ऋषिराज कहते हुए मुझे शब्द की सार्थकता का अनुभव होता है। आप वयोवृद्ध, दीक्षा वृद्ध, ज्ञानवृद्ध होने के साथ-साथ अत्यंत सरल, उदार और गुणानुरागी संत थे। ऐसे महान व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को भावभरी श्रद्धांजली।

■ ■

पथ प्रदर्शक हो हमें आगे बढ़ाने के लिए

■ सुहास हरि जोशी 'किशोर'

श्री आनंदऋषिजी महाराजसाहब याने तेजोमय दीपस्तंभ। बहुत हो गये हैं, आज भी अनेक हैं, कल भी अनेक होंगे किन्तु इनके समान वे ही, एकमेव। (मराठी में ऐसी कहावत है - झाले बहू होतिल बहू परंतु यासम हा!) उनको तुलना नहीं है। सागर में नाना प्रकार के विघ्न रहते हैं, उन विघ्नों से बच जाने के लिए सागर में स्थित तेजोमय दीपस्तंभ नौकाओं का मार्गदर्शन करता है, उनको पार जाने में सहायता करता है। उसी प्रकार यह संसार सागर बडा ही दुस्तर है, उसमें तरह-तरह के धोखे हैं, और इसमें असंख्य जीवन नौकाएं प्रवास कर रही हैं, उनका प्रवास अच्छा हो, वे ध्येय के उद्दिष्ट तक सहज ही जायें इसलिए इन महात्माओं जैसे तेजोमय दीपस्तंभ बड़ी ही सहायता करते हैं।

श्री आनन्दऋषिजी महाराजसाहब याने चारित्र्य का एक अतिमहान लोकोत्तर आदर्श। संस्कृत वाङ्मय में ऐसे श्रेष्ठ चारित्र्यसंपन्न व्यक्तियों को चारित्र्य का ध्वजदण्ड, चारित्र्य का मापदण्ड कहा जाता है जैसे लक्ष्मण आदि महापुरुष। आचार्यश्री इस युग के महान धवल चारित्र्य के मापदण्ड, ध्वजदण्ड थे। आज सर्वाधिक आवश्यकता है चारित्र्य की, शील की। मराठी में कहा है न -

शीलधना नाही मोल।
रत्नांच्या राशी फोल।।

अर्थात् शीलरूपी धन को मोल नहीं, रत्नों के ढेर भी उसके सामने व्यर्थ हैं। आज स्त्री जाति की अवस्था बहुत ही कठिन हो गयी है, उनपर अत्याचार हो रहे हैं। इसका कारण है संस्कारों का अभाव, चारित्र्य का अभाव, महाराज साहब जैसे महामहिमों के चारित्र्य का अनुकरण अत्यंत आवश्यक है। वह देश को संकटों से बचायेगा।

अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह इन तत्त्वों के तो वे साक्षात मूर्ति थे। ये सब तत्त्व उनके जीवन में सार्थ यथार्थ

कृतार्थ हो गये थे। ऐसे महाव्यक्ति क्वचित ही जन्म लेते हैं। हम जैसे जडजीवों का उद्धार करने के लिए ही उनका अवतरण था। श्री समर्थ रामदासस्वामी कहते हैं

आधी केले। मग सांगितले।

इसका अर्थ यह है कि पहले करना और बाद में कहना, उपदेश करना। इस उक्ति को कहीं साक्षात् देखना है तो आचार्यश्री का जीवन देखें। उनके जीवन का अंशमात्र अनुकरण भी हमको जीवन में धन्य करेगा, हमारा जीवन सफल करेगा। हम प्रार्थना करते हैं कि

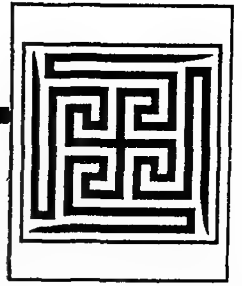
पथ प्रदर्शक हो हमें
आगे बढाने के लिए।

वीर आनंद आये थे। वीर आनंद आये थे

वीर आनंद आये थे
हमको जगाने के लिए
हतभाग्य भारत रा़ष्ट्र को
फिर से सजाने के लिए

मराठी में और एक उक्ति है, दया क्षमा शान्ति तेथे देवाची वसती। अर्थात 'जहाँ दया क्षमा शान्ति है वहाँ श्रीपरमेश्वर का निवास है।

इस युग में आपको इस वाक्य को यथार्थ रूप में देखना है तो श्री आचार्यश्री का जीवन देखें। वे साक्षात् दया क्षमा शान्ति की प्रतिमूर्ति थे। आज इस त्रस्त, ग्रस्त, पीडित जगत् में हम मनःशान्ति खो बैठे हैं। असंख्यों का अनुभव है कि आचार्यश्री के दर्शन, चिन्तन, मनन उनके सद्गुणों का जीवन का अनुकरण याने साक्षात् मनःशान्ति।



उनके स्मरणसे ही त्रस्त मन शान्त हो जाएगा। मनःशान्ति 'दवा'से नहीं मिलेगी, उनकी 'दुवा' से मिलेगी। आज इस क्रूरतापूर्ण जगत् में आचार्यश्री ने सिखायी दया और क्षमा अत्यावश्यक है। इन सद्गुणों के अभाव से नन्दनवनरूपी संसार उजाड हो जाने की संभावना है।

कर्मयोग के तो आचार्यश्री आधुनिक अवतार हैं। अखण्ड सातत्यपूर्णता कहीं देखनी है तो श्री प. पू. आचार्यश्री का जीवन अभ्यासना चाहिये। आज बहुत से लोग अकर्मण्य निष्क्रियतावादी, उदासीन, अलसी हो गये हैं। आचार्यजी के जीवन में कर्मयोग का मानो यज्ञ ही धधक रहा था, सदैव प्रज्वलित था। 'सततं कर्म कुरु त्वम्।' इस श्रीमद् भगवद्गीता की उक्ति उन्होंने सार्थ की। आज हमें सर्वाधिक आवश्यकता है 'कर्म' की, 'कर्मयोग' की। अंग्रेजी में कहा है Work is worship.

श्री ज्ञानेश्वरी में कहा है-

तथा सर्वात्मका ईश्वरा।
स्वकर्मकुसुमांची वीरा।
पूजा केली होय अपारा। तोषा लागी।।

अर्थात् "उस सर्वात्मक परमेश्वर को कर्मरूपी फूलों से की गयी पूजा सर्वाधिक प्रिय है।

कर्म याने सत्कर्म, कर्म या सत्कर्म। कर्म याने स्वकर्तव्याचरण। आचार्यश्री ने



उदाहरण से प्रस्तुत किया।

Duty First

कर्तव्य सर्वोपरि है।

बहुत बार नाम रखे जाते हैं। किन्तु वैसा आचरण नहीं होता। किन्तु आचार्यश्री का नाम और कृति एक ही थी। वे मूर्तिमन्त आनन्द थे। आज आवश्यकता है आनन्द की, प्रसन्नता की, सदैव हर्षपूर्ण अन्तःकरण की।

सन्त तुकाराम महाराज संत श्री आनन्दऋषिजी को बहुत ही पसंद थे। श्री तुकाराम महाराज कहते हैं-

'मन करा रे प्रसन्न।

सर्व सिद्धींचे कारण।

आपके मन को प्रसन्न बनाओ फिर सब यश आपको मिल जायगा।

सन्त श्री नरहरी महाराज देवी की आरती में गाते हैं -

प्रसन्न वदने प्रसन्न होसी निजदासा।

जो प्रसन्नवदन है उसको ही देवता प्रसन्न होते हैं, उसपर कृपा करते हैं।

श्री गीता में भी सुप्रसिद्ध वचन है -

मनःप्रसादः सौम्यत्वम्।

गीताई में कहा है

'प्रसन्नतेमुळे सर्व दुःखांचा नाश होतसे।

अर्थात प्रसन्नता वृत्ति के कारण सब दुःखों का विलय हो जाता है।

जो कोई भक्त श्री आचार्यसम्राट् आनन्दऋषिजी महाराज के चरित्र का ध्यान चिन्तन, मनन करेगा उसको आनन्द ही आनन्द और उनके साथ यश और शान्ति ये अमोल वर मिल जायेंगे।

भगवान श्री महावीर स्वामीजी का कथन है, आपको सुख चाहिये न, तो अन्य लोगों को सुखी बनाओ। आचार्यश्री ने जीवन भर लोगों के सौख्य, शान्ति, कल्याण का ही विचार किया। 'स्वयं के' विचारों को तो वहां स्थान ही नहीं था। वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते वे दूसरों को फल देते हैं। नदियाँ अपने लिए नहीं लोगों के लिए बहती हैं। वृक्ष पान्थस्थों को छाया देते हैं स्वयम् आतप में खडे रहते हैं।

आचार्यश्री का जीवन बिलकुल ऐसा ही था।

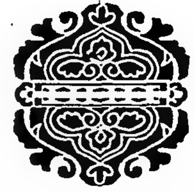
आचार्यश्री कहते हैं दान की भावना चारों भावनाओं में श्रेष्ठ है। धन, सत्कार्य में लगा दो। तथा वाणी के महत्त्व को भी जान लो। जिस व्यक्ति के मन और वचन में मधुरता होती है वह अपने शरीर से भी किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता।

आचार्यप्रवर, आगे जाने के लिए सत्प्रगति करने के लिए हमको आपके सुमंगल आशीर्वादों की अतीव आवश्यकता है -

पथप्रदर्शक हो हमें

आगे बढ़ाने के लिए।





समग्र मानव समाज के धर्माचार्य

■ बालचन्द अग्रवाल

आचार्यश्री आनन्दऋषिजी की कुछ पुस्तकें पिछले दिनों पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। पढ़कर ऐसा लगा कि वे किसी धर्म-विशेष के आचार्य नहीं, अपितु समग्र मानव-समाज के धर्माचार्य हैं। अपने लेखों एवं प्रवचनों द्वारा उन्होंने अनेक जीवन-दीपों को प्रज्ज्वलित किया है और पंच विषयों में लिप्त लोगों को वचनामृत पिलाकर नया जीवन दिया है।

सिद्धान्त जब तक जीवन में नहीं उतरते, उनका कोई मूल्य नहीं होता। आज हम बड़ी-बड़ी बातों और वादों की चर्चा करते हैं। ईश्वरवाद, भौतिकवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद आदि वादों के सिद्धान्त सामान्य लोगों के गले नहीं उतरते। उन्हें सरल बनाकर ही जन-साधारण तक पहुँचाया जा सकता है। आचार्यश्रीने, १३ वर्ष की अल्पायु में दीक्षा ग्रहण करके, जीवनपर्यंत कथाओं के माध्यम से सरल भाषा का प्रयोग करके जनमानस के कलुषित मानस-पटल को निर्मल बनाया है। दैनिक चर्या में आनेवाली समस्याओं से लेकर भावनायोग जैसे गहन विषय पर अधिकारपूर्वक प्रवचनों द्वारा जीवन से ऊबे हुए, उद्विग्न, निराश और हताश जनों में उत्साह, विश्वास और आशा का संचार आनन्दऋषि जैसा आचार्य ही कर सकता है।

मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव - ऐसी भावना-भक्ति से परिपूर्ण भव्य भारतीय संस्कृति विश्व की अन्य संस्कृतियों से महान है। इस देश में सैंकड़ों ऐसे ऋषि हुए हैं, जिन्होंने अत्यन्त तेजस्वी जीवन जिया है, उन्हीं में एक हैं आचार्य आनन्दऋषिजी। आचार्यश्री ने निरपेक्ष भाव से समाज व राष्ट्र को विचार-प्रणाली दी है। हम उनके ऋणी हैं। इस ऋण से उऋण होने के लिए उनके विचारों को आचरण में उतारें और प्रचार करें, यही वास्तविक श्रद्धांजलि होगी।

उनके दर्शन करने की मेरी हार्दिक इच्छा थी। पर काल की गति को कौन जान सकता है? जन-जन को जागृत कर २८ मार्च '९२ को वे पंचभूत में विलीन हो गए।

उस महान् विभूति को मेरा कोटिशः प्रणाम। ■ ■

- *मानव शरीर के लिए अभिमान करना तथा इसी की सार-सम्भाल में अपना अमूल्य समय नष्ट करना वृथा है। न तो यह यहीं पर स्थायी रहता है, और न आत्मा के साथ ही चलता है।*
- *कर्म की गति अति ही गहन अर्थात् अगम्य हुआ करती है।*



समृद्ध विरासत

■ मुनीन्द्र (सम्पादक-दक्षिण समाचार, हैदराबाद)

आचार्यश्री आनन्दऋषिजी नहीं रहे। उनकी पंचभूत काया पंचतत्त्व में जा मिली। किन्तु वे हमारे लिए एक समृद्ध विरासत छोड़ गये हैं। अपने सुदीर्घ जीवन-काल में अध्ययन, विवेचन, आचार, दिशाबोध की जो मूल्यवान सम्पदा उन्होंने अर्जित की, वह सब कुछ अपने बाद की पीढ़ियों के लिए छोड़ गये हैं। अब हमें सिद्ध करना है कि हम उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी हैं।

आनन्दऋषिजी एक धार्मिक सम्प्रदाय के आचार्य थे, किन्तु उन्होंने अन्य सम्प्रदायों के प्रति कभी दुराव या अलगाव का बोध नहीं होने दिया। विभिन्न धर्म अथवा सम्प्रदाय सभ्यता की विकास-यात्रा के विभिन्न चरणों तथा विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों की देन होते हैं। उनके बलाघात में अन्तर हो सकता है, लेकिन मूल तत्त्व प्रायः समान होते हैं।

असमानता, शोषण, असहिष्णुता, हिंसा से ग्रस्त आज के मानव-समाज में महावीर का बताया मार्ग त्राणदायक हो सकता है, यह बात आनन्दऋषिजी ने बहुत ही व्यावहारिक स्तर पर अपने लेखों और प्रवचनों में कही है। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनकी कही बातों को अपने आचार में उतारने का संकल्प करें।

■ ■

- *आत्मा को निर्दोष एवं निष्कलुष बनाने के लिए एकमात्र मानव शरीर ही उपयुक्त है।*
- *अनन्त पुण्य के संग्रह से जो मनुष्य पर्याय मिली है, इसका एक क्षण भी व्यर्थ न चला जाए।*
- *सुख और दुख किसके प्रभाव से मिलता है? एक मात्र 'कर्म' के।*
- *कर्म-रूप मदारी के इंगित पर जीव कभी रोता और कभी हँसता रहता है।*
- *जिस जीव ने जैसे कर्मों का बन्धन किया है उन्हें भोगे विना उसे कदापि छुटकारा नहीं मिल सकता।*
- *"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।" जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।*



जीवन-निर्माता

■ पुष्पा जैन

गुरुवर! आपकी याद दिलसे भुलाई नहीं जाती।

हमसे आपकी यह जुदाई सही नहीं जाती।।

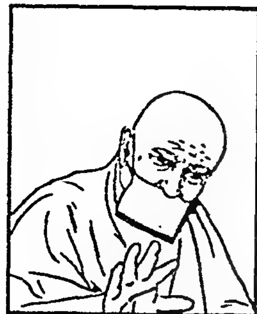
वेदना के उफनते वेग में सारा ज्ञान बह गया। विह्वलता की आंधी में धैर्य धराशायी हो गया। हृदय रो रहा है, मन में उदासीनता, वातावरण में शून्यता, मानस पर स्मृतियों के मेघ छा गये है। इन आँखों को कैसे समझाएँ जो दिव्य-दर्शन के लिए, उस भव्याकृति को देखने के लिए तरस रही हैं, पवित्र पावन प्रतिमा को इधर-उधर ढूँढ रही है। कानों की उत्सुकता कैसे मिटे जो गुरुवर की अमृत वाणी का श्रवण करने के लिए आतुर हैं। पावों को कैसे रोके जो गुरुवर के सान्निध्य में जाने के लिए दौड रहे हैं। कितना स्वाभिमान था आनंद गुरु की शरण में रहने का।

लेकिन नियति की कैसी विडम्बना! अनाथों के नाथ, भक्तों के भगवान, शासन की शान, श्रमण संघ के प्राण गुरुवर को हमारे आँखों से ओझल कर दिया।

आपश्री ने स्वयं ही स्वजीवन का निर्माण किया। गुरु की छत्रछाया बहुत कम रही। बडी मेहनत एवं प्रयत्न से संघर्षमय विषम विभिन्न परिस्थितियों में जीवन का निर्माण किया। अनेकों ने प्रलोभन देकर परीक्षण करने का प्रयास किया। स्वयं साधना के उच्च शिखर पर पहुँच कर अनेक साधकों की साधना में प्रेरक तथा सहयोगी बने।

पूज्य गुरुदेव ज्ञानयोगी, ज्ञानप्रेमी थे। स्वयं को तो ज्ञान से आलोकित करते रहे, लेकिन ज्ञान को अपने तक ही सीमित नहीं रखा। ज्ञान की गंगा बहाते रहे, खजाना लुटाते रहे। ज्ञान के साथ क्रिया तथा नियमों के प्रति भी जागरूक थे। ज्ञान, क्रिया, आचार-विचार विवेक, व्यवहार, कथनी, करनी की एकरूपता से जीवन समलंकृत और संयम से निखरा हुआ था। ज्ञान, दर्शन, चारित्र का त्रिवेणी संगम था। सरल प्रकृति, भव्याकृति, निष्पाप, छलकपट रहित जीवन। जीवन पुस्तक का हर एक पृष्ठ खुला था, कोई भी उसे पढ़ सकता था।

आपश्री भीड में रहते हुए भी निःसंग थे। महामानव थे। आप सिन्धु थे, लेकिन सिन्धु नहीं बिन्दु बनकर रहे। आप सर्वोच्च थे, लेकिन न सर्वोच्चता का अहंकार न दूसरों का तिरस्कार। न स्वयं को उच्च समझा न दूसरों को तुच्छ समझा। पूज्यवर जहां जहां विचरे वह भूमि पावन हो गयी। जिन लोगों के बीच में रहे उनके रोम रोम में रम गये। जिसने एक बार दर्शन किये वह भक्त बन गया। जिसे गुरुवर्य के



चरण-शरण में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उसका तो जीवन ही सफल हो गया।

१९७४ में गुरुदेव का नाम सुनकर आपश्री के पास अध्ययन करने का विचार मन में उदित हुआ। भाई के सामने भावना रखी। भाईने कहा - 'उनके पास तो लोगों की बहुत भीड़ होती है, वे कैसे पढाएँगे? यहाँ विराजित साध्वीजी के पास पढो।' लेकिन मेरी तो एक ही रट - मैं तो गुरुदेव के पास ही पढ़ूँगी। बहुत जिद की। आखिर भाई को मानना पड़ा। विजयादशमी के दिन गुरु चरणों में पहुँची और मनोगत प्रकट किया। पूज्य गुरुदेव ने पूछा - 'थाने कई आवे?' घबराते हुए जबाब दिया - 'नवकार मंत्र और तिक्खुत्तो।' गुरुदेव ने पढ़ाने की स्वीकृति दी। दूसरे दिन आगे का पाठ दिया। गुरुदेव के शुद्ध, स्पष्ट, उच्चारण, कहाँ रुकना, कहाँ नहीं रुकना, न्हस्व-दीर्घ की भी गलती नहीं होनी चाहिए, इन सभी बातों से मैं अत्यन्त प्रभावित हुई। गुरुदेव अध्ययन का उत्साह बढाते रहे लेकिन कभी नहीं कहा, 'दीक्षा लो।' पाठ लेते समय कोई दर्शनार्थी पूछते - 'ये वैरागन है?' गुरुवर जवाब देते - 'नहीं, पढते हैं, इनको मैंने कभी नहीं कहा- 'दीक्षा लो,' उनकी भावना हो तो अपने आप लेंगे।' कितनी उदारता, कितना विशाल हृदय था गुरुवर का!

कितनी भीड हो, अस्वस्थ हो, पाठ की छुट्टी नहीं। गुरुदेव का सिद्धान्त था, 'थोडा पढो लेकिन पक्का, प्राप्त की रक्षा करते हुए नये का अर्जन । गुरुदेव के वात्सल्य और प्रेम के कारण घर की याद को अवकाश ही कहाँ? इतनी व्यस्तता के बावजूद भी गुरुदेव पूरा ध्यान रखते। इसका एहसास तो मुझे प्रस्तुत घटना से हुआ।

पूना में चातुर्मास था। गुरुदेव का जनम-दिन था। किसी कारण वश मुझे कुछ घंटों के लिए नगर आना था। जन्मोत्सव संपन्न हुआ। गुरुदेव को पूछना, लेकिन इतनी दर्शनार्थी की भीड़! कैसे पूछूँ? कल सबेरे तो आना है, ऐसा सोचकर बिना पूछे नगर आयी। दूसरे दिन सबेरे ९ बजे गुरुदेव के चरणों में पहुँची और क्या आश्चर्य! वन्दना करते ही गुरुदेव का प्रश्न - 'काले थे नहीं दिख्या?' मैंने सारी वात बतायी। पूछा - 'आपको इतनी भीड़ में कैसे ध्यान में आया?' गुरुदेव का जवाब था - 'म्हे बराबर ध्यान रखू। थे म्हारा भरोसे अठे रेवो। म्हारा बिना थानो कुण ध्यान रखेला।' कर्तव्य के प्रति पूरी निष्ठा थी। गुरुदेव मर्यादाप्रिय थे। कहते - 'आपे मर्यादा में रेवा तो अपनी शोभा रहे।'

तीन साल पहले मेरे पीठ में बहुत दर्द हुआ। डॉक्टर ने दवाई दी, लेकिन दर्द कम नहीं। सोना भी मुश्किल हो गया। डॉक्टर ने सलाह दी, 'एक्स रे निकालना पड़ेगा।' मैं तो घबरा गयी। न मालूम क्या बिमारी निकलेगी। मैंने गुरुदेव से कहा - पीठ में दर्द है, एक्स रे निकालना पड़ेगा। गुरुदेव ने कहा - 'एक्स रे निकालनो पड़ेला?'



क्या चमत्कार! उसी दिन पीठ का दर्द गायब हो गया। यह है गुरुदेव का अतिशय, निर्दोष संयम का प्रभाव। ऐसी तो कई घटनाएँ घटी। स्मृति में संजोए सभी संस्मरणों को प्रस्तुत करना संभव नहीं।

'ओ जीवनदाता! जीवन निर्माता गुरुदेव!

हो जाए आपका इशारा
उसी ओर बहेगी मेरी विचारधारा।
आनन्द गुरु-चरणों में समर्पित हूँ,
मेरे भाग्याकाश में उदित कर दो ज्ञान सितारा।'

आपके चरणों में बीते वो मधुर क्षण, वे अविस्मृत घड़ियाँ मेरी स्मृति-मंजूषा में मधुरिम-स्मृतियाँ बनकर हमेशा के लिए अमिट हो गई।

जिस भावना से, जिस लक्ष्य को सामने रखकर मेरे जीवन का निर्माण किया है, उस भावना को साकार करने के लिए, उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए वह महाज्योति मुझे निरंतर शक्ति, प्रेरणा एवं संकेत देती रहे। आपश्री जहाँ भी हो वहाँ से आशीर्वाद प्राप्त होते रहे।

अन्त में जीवन और मृत्यु से परे, सदा आनन्दमय चिन्मय दिव्य आत्मा को मेरा वन्दन - अभिवन्दन!



- *अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।*
- *भावना ही मार सकती है या जिला सकती है।*
- *जीवात्मा जिस तरह का काम करती है, उसी तरह का उसे फल मिलता है।*
- *अपने कर्मों के अनुसार यह जीव कभी देवलोक में, कभी नरक में और कभी असुरकाय में उत्पन्न होता है।*
- *कर्म-फल भोगे बिना छुटकारा किसी भी प्रकार से नहीं मिल सकता। चाहे व्यक्ति लाख कोशिश क्यों न करे।*
- *कर्म-विडम्बना का शिकार व्यक्ति कोटि प्रयत्न करने पर भी इसके चंगुल से छुटकारा नहीं पा सकता।*
- *अशुभ कर्मों के उपार्जन से बचो।*
- *सिद्धि हासिल करना खेल नहीं है।*
- *अनेक जन्मों में जाकर आत्मा को सिद्धि प्राप्त होती है।*



आनन्द का अक्षयस्रोत : आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी महाराज

■ दीक्षित डॉ. सुशील जैन 'शशि'

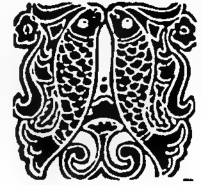
भारत की यह पावन संस्कृति सदैव महापुरुषों के प्रति श्रद्धाशील रही है। प्रत्येक व्यक्ति की श्रद्धा का केन्द्रबिन्दु कोई न कोई सन्त या महापुरुष है। श्रद्धा और आस्था की डोर से बन्धा व्यक्ति प्रति पल अपने श्रद्धेय के प्रति समर्पित रहा है। क्योंकि महापुरुषों की जीवनी उसे जाति सम्प्रदाय और सीमित क्षेत्र से उभार कर विस्तृत आयाम प्रदान करती है। महापुरुषों की इस श्रृंखला में सन्तों का व्यक्तित्व अधिक आकर्षक बिन्दु पर आ ठहरा है। क्योंकि सन्त हृदय मानव-समाज की ही नहीं प्राणी मात्र के कल्याण की भावना के लिए स्पन्दित होता है। वे स्नेह की पावन सरिता एवं करुणा की साक्षात् प्रतिमा होते हैं।

विज्ञान के इस बौद्धिक एवं चिन्तन परक युग के ऐसे ही एक महान संत की छबि हमारे मानस के साथ जुड़कर नयनों के कोमल कान्त पटल पर चित्रित होती है। वे है - युगप्रधान, राष्ट्र सन्त, आचार्य सम्राट् १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज। जिनका जन्म महाराष्ट्र की महनीय धरा के चिचोंडी ग्राम में हुआ था। देवता स्वरूप पिता देवीचन्दजी गुगलिया की गोद में पलने वाले इस बालक को मां हुलसा के सुसंस्कारों का साया मिला। नयनों को अभिराम आनन्द देने वाला २७ जुलाई १९०० का सुरंगा-सावन जब उज्ज्वल शुक्ल पक्ष पर आया, तब उसके प्रथम चरण प्रतिपदा ने उस लाल को जन्म दिया जो जन जन के लिए सुख सावन सिद्ध हो गया। जिनका शान्त दान्त व्यक्तित्व शुक्ल पक्ष की भांति वृद्धिंगत होता रहा।

धर्मनिष्ठ माता-पिता के सुसंस्कारों में ढले-पले आचार्य श्री का बचपन समय के साथ व्यतीत हुआ। किशोर वय में प्रवेश पाते ही आपका मन आसक्ति एवं विराक्ति की परिभाषा समझने लगा। विरक्ति का हाथ थामे १३ वर्ष की अल्पायु में आपने प्रखर पण्डित पूज्य श्री रत्नऋषिजी म. के श्री चरणों में जैन भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली। वि. सं. १९७० का वह शुभ दिन था मागशीर्ष शुक्ला नवमी रविवार। गुरू प्रदत्त अपना "आनन्द" नाम पाकर आप आनन्दित ही नहीं हुए अपितु रत्न पारखी रत्नऋषि के श्री चरणों में आगम के अध्यात्म रत्न की प्राप्ति भी की। ज्ञान का वह आलोक पुंज बाल-सूर्य समाज के क्षितिज से चलकर पूर्ण तेजस्विता के साथ राष्ट्र के नभ पर आलोकित हो गया। वि सं. २०२० के फाल्गुन मास की एकादशी तदनुसार १३ मार्च १९६५ ई. को अजमेर श्रमण

सम्मेलन के सुअवसर पर आप श्री को श्रमण संघ के द्वितीय आचार्य के महान पद पर प्रतिष्ठापित कर दिया। रंगों का रंगीला फाल्गुन मास आपकी छबि, वाणी, ज्ञान प्रभाव एवं सम्पूर्ण जीवन में उतरा था। आप श्री का बहुआयामी व्यक्तित्व जन-जन की आस्था का केन्द्र बन गया।

श्रमण संघ का वह सूर्य, अपनी हजार किरणों के साथ जिस भांति आलोकित हुआ, वर्तमान नतमस्तक हो गयी। आचार्यों की वर्तमान श्रृंखला में एक मात्र आप श्री ही वे आचार्य थे जिनकी आज्ञा में संचरण विचरण करने वाली शिष्य सम्पदा (श्रमण श्रमणी) सर्वाधिक रही है। जो १५०० के लगभग है। आप श्री ने आगम के विशद ज्ञान का अर्जन कर आनन्द की प्राप्ति का अनमोल मार्ग खोजा। अपने चरण-शरण में पहुँचने वाली भव्यात्माओं को अक्षय मार्ग का दिग्दर्शन दिया। आप श्री की उस आनन्द आकृति के जिसने भी दर्शन प्राप्त किये धन्य हो गया।



विक्रम की २० वीं सदी के ५७ वें वर्ष में जन्म प्राप्त आचार्य प्रवर ने इक्कीसवीं सदी के द्वितीय चरण के अन्तिम छोर पर अपनी नश्वर देह का परित्याग कर दिया। ईस्वी की इस वर्तमान सदी के साथ साथ चलते हुए आपने अपनी उम्र के ९२ बसन्त पार किये थे।

आचार्य प्रवर का देहिक अवसान महाराष्ट्र की पुण्य धरा अहमदनगर में दि. २८ मार्च १९९२ शनिवार को हुआ। जिसने भी सुना उसकी हृदय गति एक क्षण के लिए अवश्य थम गई होगी। उनका ज्वलन्त जीवन ही अब हमारे लिए अनुकरणीय तथा अनुसरणीय रह गया है। सन्मार्ग दाता श्रद्धेय आचार्य श्री जी की आनन्दात्मा अक्षय शांति प्राप्त करे, उनकी सद्गुण सुरभि जन जन के अन्तर में समाहित हो इसी अपेक्षा के साथ उस विमल व्यक्तित्व को भावपूर्ण श्रद्धांजलि। ■ ■

- *प्रत्येक मुमुक्षु को चाहिए कि वह शुभकर्मों के उपार्जन का प्रयत्न करे।*
- *शुभ कर्मों के लिए बड़ा जोर लगाना पड़ता है।*
- *मनुष्य कामनाओं के वशीभूत होकर जन्म-जन्मांतरों तक अनन्त-अनन्त पीड़ाएँ सहता है।*
- *संसारी कामभोगों को जो पकड़े रहता है वह दुःख पाता है और जो उन्हें छोड़ देता है, वह सुख का अनुभव करता है।*
- *ललाट पर लिखे गये लेख को मिटाने में कोई भी समर्थ नहीं होता।*
- *मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने वाली एकमात्र नारी ही है।*



अहिंसा और करुणा के अमर पुजारी आचार्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज

■ नेमनाथ जैन

आचार्य सम्राट श्री आनंदऋषिजी महाराज का व्यक्तित्व और कृतित्व इन्द्र धनुष के विविध रंगों की तरह मनमोहक, चित्ताकर्षक और दिलचस्प था। आप मन से पवित्र, हृदय से सरल, बुद्धि से विलक्षण होने के साथ-साथ व्यवहार से मधुर थे। गम्भीर विचार करना आपका सहज स्वभाव था, मीठी वाणी बोलना और कोमल व्यवहार करना आपका सहज धर्म था। किसी की निन्दा करना और खुशामद करना आपको पसन्द नहीं था। जो भी आपके परिचय में आता वह आपका होकर लौटता था।

आप अद्भुत तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी आचार्य थे। आप स्वयं अनेक प्राचीन आचार्यों की पावन परम्परा के साकार प्रतिनिधि थे। आपके व्यक्तित्व में आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य हरिविजय सूरि जैसे निर्भीक, समाज संगठक तथा अहिंसा प्रचारक महान् आचार्यों के दिव्य गुणों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब झलक रहा था। मेरा साक्षात् परिचय सन १९६३ में जब आचार्य भगवन् देवास पधारे तो हुआ। प्रथम दर्शन करने से मेरे रोम रोम पुलकित हो गए। उसके पश्चात् तो मैंने अनेक बार उनके जीवन दर्शन का अध्ययन किया। उनकी विचारधारा पर चिन्तन किया तो मुझे स्पष्ट ज्ञात हुआ कि आपका हृदय स्फटिक की तरह स्वच्छ है।

जब कभी भी मैं आपके दर्शन करता तो उस मधुर-मिलन की वेला में देखता कि आपके चेहरे पर प्रसन्नता की आभा नाचती रहती थी। आपका रोम-रोम खिला रहता था आपके अर्न्तहृदय की प्रसन्न लहर आपकी वाणी पर थिरकती रहती थी, मैं आपके दर्शन कर प्रसन्न होता तो आप भी भक्तजनों को देखकर आनन्द विभोर हो जाते थे। और जब वापिस लौटने का नाम लेता तो आपके गुलाबी चेहरे पर उदासीनता आ जाती, कहाँ जा रहे हो। क्यों इतनी जल्दी कर रहे हो? और फिर आदेश के स्वर में कहते अभी कुछ समय यहाँ रहो और फिर मुस्कराकर कहते, क्या तुम्हें मेरे पास रहने में आनन्द नहीं आता। फिर सुनाने लगते ध्यान योग की साधना के मधुर संस्मरण, आगम के गम्भीर रहस्य, जीवन के अनमोल अनुभव एक के पश्चात् एक जीवन स्पर्शी रहस्य बताते कि उस ज्ञान की प्याऊ के पास से उठने का दिल ही नहीं होता था।

आपके प्रवचन संक्षिप्त पर सुलझे हुए, अध्ययन पूर्ण और सरस होते थे। आपकी भाषण शैली गजब की थी जब आप अपना प्रवचन प्रारम्भ करते तो श्रोता झूम उठते थे। ओजस्वी वक्ता, समाज सुधारक और राष्ट्रवादी होकर भी जिन शासन की मर्यादा के पक्के समर्थक व परिपालक थे। श्रमण



धर्म की मर्यादा में आचार का आपके मन में बड़ा आदर था। आप शिथिलाचार के कड़े विरोधी रहे। आपकी मान्यता थी कि साधु मूलाचार में तो बेदाग होना ही चाहिए और आडम्बर से दूर रहे। आप समाज में रचनात्मक कार्य देखना चाहते थे। स्थानकवासी समाज के संगठन हेतु आप तन-मन से पूरा सहयोग कर रहे थे।

साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकाओं के अध्ययन की व्यवस्था हेतु आपने जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना कर वह अमर काम किया जिससे हजारों वर्षों के बाद आपकी गौरव गाथा चिरस्मरणीय रहेंगी। आपने चरम तीर्थंकर अहिंसावतार भगवान महावीर के मुख्य सिद्धान्त "अहिंसा परमो धर्मः" का प्रचार करते हुए "सेंट फ्रान्सिस" के निम्नलिखित हृदयोद्गारों का समर्थन किया।

"All creatures feel as we do. All creatures long for happiness as we do. All the animals of the world live, suffer and die just as we do. Therefore they are like us."

अर्थात्-समस्त छोटे-मोटे प्राणी हमारे समान ही सुख और दुःख का अनुभव करते हैं। हमारे समान ही सभी प्राणी सुखी और जीवित रहना चाहते हैं। तथा दुःख और मृत्यु से घबराते हैं इसलिए समस्त जीव-जन्तु, पशु-पक्षी हमारे समान ही जीवन के अधिकारी हैं।

आपकी अहिंसा परायणता का ही प्रभाव था कि आप जैसे महापुरुष के सौम्यस्वरूप के दर्शन से मन को आत्मिक आनंद प्राप्त होता था। आपने हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत, अंग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर जैनागमों का गंभीर अध्ययन और मंथन किया। जैन शास्त्रों के साथ ही साथ जैनेत्तर ग्रंथ यथा-गीता, रामायण, महाभारत, बाइबिल आदि दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन कर तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त कर आप आगम मनीषियों, ज्योतिर्विदों और आगमचिन्तकों में शिरोमणि थे।

'सन्त हृदय नवनीत समाना'' इस उक्ति के आप साकार मूर्ति थे। वस्तुतः आपका हृदय मक्खन के समान कोमल था जैसे मक्खन आंच पाकर पिघल जाता था वैसे ही दुखियों के संतप्त जीवन को देखकर आपका हृदय नवनीतवत द्रवित हो उठता था। तत्काल आप उसके दुःख निवारणार्थ प्रयास करते और सुखी बनाते थे। कष्टों में सहिष्णुता, विरोध के झंझावातों में अडिगता और निर्भयता, सत्य के लिए संघर्षशीलता, अहिंसा और करुणा के लिए प्राणों को बलिदान करने की अनन्त उमंग को आप संजोए हुए थे। आपके वियोग से जैन श्रमण परम्परा में ही नहीं अपितु पूरे भारत के एक महान सन्त की कमी हुई है जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में नहीं लगती।

भारत के एक महान् सन्त का, एक क्रान्तिकारी युग पुरुष का, एक सुधारक और संगठन प्रेमी, समाज के नेता का शिक्षा, स्वाध्याय और सदाचार की ज्योति प्रज्ज्वलित करनेवाले एक ज्योतिर्धर आचार्य का यह जीवन दर्शन हम सबको युग-युग तक प्रेरणा देता रहेगा।





मनीषी सन्त

■ आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'

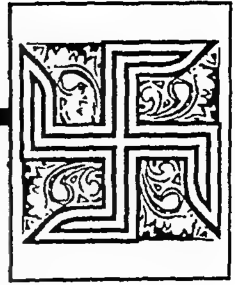
भारतभूमि अनादि काल से अध्यात्मभूमि रही है। इस पावन धरती को ऋषियों मुनियों ने अपनी साधनारूपी अध्यात्मगंगा से सदैव सिंचित किया है। यह धरती कभी भगवान महावीर की दिव्य देशना से गौरवान्वित हुई तो कभी गौतमबुद्ध की आर्षवाणी से। यहीं पर शंकराचार्य ने अध्यात्म समरसता प्रवाहित कर उत्तर दक्षिण समस्त भारत को एकता के सूत्र में आबद्ध किया था। इन महान विभूतियों ने अपने पुरुषार्थ और साधना से प्राप्त प्रति फल को जन-जन तक पहुँचाने का अनूठा कार्य किया। इन्हीं ऋषियों एवं महर्षियों की परम्परा को आगे बढ़ाया आनन्द ऋषिजी महाराज ने अपने साधना के बल से। जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा के आचार्य होते हुए भी वे सदैव सम्प्रदायातीत रहे, इसका मुख्य कारण अध्यात्मनिष्ठ व्यक्तित्व था।

इस कालजयी व्यक्तित्व का शरीरपात भले ही हो गया है किन्तु उनके द्वारा छोडी गयी साधना-सुगन्ध सदियों तक समस्त भारत वासियों को सुवासित करती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। सच कहा गया है-

"इन्सान चला जाता है,
यश सौरभ रह जाता है।
साथी छूट जाते हैं,
बस यादें रह जाती हैं।"

"यथा नाम तथा गुणः" को समाहित करने वाले आनन्द ऋषिजी सचमुच "आनन्द रत्न ' थे। विषम से विषम परिस्थितियों में उनकी सहजता, नैसर्गिकता दर्शनीय थी। हर प्रतिकूल परिवेश में उनके मुखारविंद पर शिकन के भाव कभी दिखलाई ही नहीं पड़ते थे। समरस, समभाव की उनकी स्थिति देखकर लोग उनके गुणों का बखान करते थकते नहीं थे। आवेश, आवेग, उद्वेगों का रंचमात्र-प्रभाव उन पर दिखलाई नहीं पडता था। वह गीता के स्थितप्रज्ञ थे। "धर्मो रक्षति रक्षितः" में विश्वास करनेवाले वे धर्म-ध्यान को ही जीवन का पर्याय समझते थे।

वे अध्येता, ग्रंथप्रणेता, साधक, योगी, कवि और आचार्य की विभिन्न भूमिकाओं पर आरोहण करते हुए अब महाप्रयाण कर गये। उनकी शान्त महायात्रा ने कितने शिष्यों एवं श्रावकों को अनाथ कर दिया। उनकी सर्वांगीण साधना, बहु क्षेत्रव्यापी ज्ञानाराधना ओर विविध विषयक साहित्य सर्जना से भी अधिक सत्य के प्रति उनकी निराग्रही मौलिक एवं तलस्पर्शी दृष्टि ने उन्हें स्थितप्रज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया था। वे शान्ति, ऋजुता, मृदुता, एवं विनम्रता के प्रतिमूर्ति थे। "सब जीव समान है, सब में परमात्मा बनने की क्षमता है" में विश्वास करने वाले मुनिश्री



सच्चे अर्थों में अद्वैत के उपासक थे। वह प्रायः कहा करते थे कि अपनी आत्मा को प्रकाशित करने की क्षमता सब में है बशर्ते कि वह योग एवं साधना के पावन साधन को अंगीकार कर वृद्धिमान होवें। 'चरैवेति-चरैवेति' में अटूट आस्था रखने वाले मुनिश्री गतिशीलता में ही विश्वास करते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति आलस्य एवं प्रमादवश अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाता, यही उसकी विडम्बना है। पुरुषार्थ के प्रतीक उन्होंने जनमानस को पुरुषार्थ की आराधना के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अपने ज्ञान को आत्मा से अनुबन्धित कर ज्ञान की आराधना की, अपनी श्रद्धा को आत्मा से केन्द्रित कर दर्शन की आराधना की। तथा समस्त कर्म को आत्मा की परिक्रमा में प्रेरित कर चारित्र की आराधना की।

ऐसे उस मनीषी सन्त की आराधना मैं शब्दों के द्वारा कर सकूँ, ऐसा सामर्थ्य मुझमें कहाँ? किन्तु मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि मुझ जैसे अकिञ्चन को गौतमबुद्ध के सुप्रसिद्ध विभूतिशिष्य आनन्द के बाद इतिहास प्रसिद्ध नाम जाति वाले आनन्द ऋषिजी महाराज पर दो शब्द लिखने का सौभाग्य मिला। मेरे लिंए अर्चनीय, वंदनीय, पूजनीय, अभ्यर्थनीय की किन शब्दों में अभ्यर्थना करूँ। किन भावों से आपका गुणानुवाद करूँ? सारा जग आपकी विद्वत्ता, शालीनता एवं सृजन क्षमता से परिचित है. फिर भी शब्द रुकते नहीं, भाव थमते नहीं। तभी तो हृदय से निकले उद्‌गार को शब्दों में बाँध सका। अन्त में हे प्रज्ञा एवं साधना के अमर ज्योतिपुञ्ज! जहाँ भी कहीं जिस रूप में हो मेरा अभिवन्दन स्वीकार करो।



- *कर्म भी एक प्रकार का साहूकार है जो पूरी तरह समर्थ होने पर अपना कर्ज वसूल करने के लिए आता है।*
- *अशुभ कर्मों के उदय से संकट आते हैं किन्तु साहसी और दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति उनसे हार नहीं खाते। जान पर खेलकर भी वे अपने धर्म और सत्य की रक्षा करते हैं।*
- *प्रत्येक प्राणी को अपूर्व दृढ़ता और साहस से अशुभ-कर्मों के उदय होने पर उनका मुकाबला करते हुए शुभ-कर्मों का उपार्जन करना चाहिए।*
- *जो महामानव उपसर्गों और परीषहों में समभाव रखते हुए कर्मों की निर्जरा करते जाते हैं, वे ही मुक्ति-धाम के अधिकारी बन सकते हैं।*
- शुभ कर्मों का उपार्जन करने के लिए जीवन को धर्ममय बनाना आवश्यक है।



श्रद्धांजलि

■ प्रा. माधव श्रीधर रणदिवे

मैं परम भक्ति से बालब्रह्मचारी, महामहिम, जैन धर्म दिवाकर श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर राष्ट्रसंत आचार्य सम्राट् १००८ श्री आनंदऋषिजी म. का. स्मरण करता हूँ।

आचार्य प्रवर का श्रमण जीवन मानव को आत्मोन्नति का मार्ग दिखाता है। इसलिए उन युग प्रभावक का परम मंगल अनुकरणीय जीवन मैं संक्षेप में कहना चाहता हूँ।

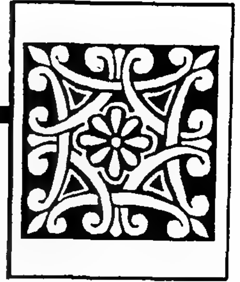
इसी महाराष्ट्र प्रान्त में अहमदनगर जिले में चिचोंडी नामक गाँव है। शत वर्ष पूर्व वहाँ एक वीरानुयायी गुगले वंश भूषण देवीचन्द नाम का सुश्रावक रहता था। हुलासा नाम की उनकी सुशीला और धर्मनिरत भार्या थी। उनका संसार सुखमय था।

विक्रम संवत १९५७ में श्रावण शुक्ल प्रतिपदा शुभ शुक्रवार के दिन में हुलासाने सर्वगुण संपन्न पुत्र को जन्म दिया। उसके शरीर पर शुभ सामुद्रिक लक्षण दिखते थे। पद्मलांछनांकित उसके पाद तल थे। वे सामुद्रिक लक्षण देखकर "यह बालक महामहन्त संत होगा" ऐसा ज्योतिषी ने कहा। बालक का भविष्य सुनकर सब लोग आनन्दित हो गये। नामकरण दिन में महावैभव से उसका नेमीचन्द नाम रखा गया (क्रमशः वह बढने लगा। बालपण में धर्मशील माता-पिता के मार्गदर्शन में नेमीचंद सुसंस्कारी हुआ।

एक दिन नेमीचंद पाठशाला से घर आया। मकान में उसका पिता शय्या पर उदरशूल से हैरान हो गया था। असहनीय वेदनाओं से उसका पिता गुजर गया। वह देखकर बाल नेमीचन्द अति दुःख से आक्रांत हुआ। लेकिन विवेक से उसने धैर्य रखा।

'संसार में जीव दारिद्रय, रोग, जरादि दुःखों से जर्जर होता है। जो जन्मता है उसे निश्चित मरना पडता है। जल के बुदबुद के समान शरीर विनाशकारी है। बिजली की चमक के समान जवानी चपल है (कुशाग्र के अग्रभाग में जलबिन्दु के सदृश्य लक्ष्मी चंचल है। सन्ध्या के मनोहर रंग के समान वैषयिक सुख अनित्य है। सरोवर के जलतरंग के समान जीवन क्षणभंगुर है। दुःख सुलभ है और सुख दुर्लभ है। मृत्यु अनिवार्य है। सर्व समर्थ निर्दय मृत्यू कब, कहा और किसके उपर आक्रमण करेगा यह कोई भी नहीं जानता। "इस तरह नेमिचंद ने संसार जीवन की अनित्यता का चिन्तन किया और उनका मन संसार से विरक्त हुआ।

तब वह मुनि-आर्यिकाओं के पास धर्मोपदेश सुनने लगा। वह एकाग्रचित्त से स्वाध्याय करता था और तत्व चिंतन में



रमकर भक्तिपूर्वक जिनस्तुति गाता था। हररोज प्रतिक्रमण और आत्मध्यान से उसकी आत्मोन्नति होने लगी।

इस वक्त पुण्योदय से नेमीचन्द को चारित्र चूडामणि श्री रत्नऋषिजी का सन्त समागम प्राप्त हुआ। बालब्रह्मचारी नेमीचंद ने तेरह वर्ष की लघु वय में (विक्रम संवत् १९७०) मिरी ग्राम में श्री रत्नऋषिजी के पास दीक्षा ग्रहण की। तब नेमिचंद का नाम 'श्री आनंद श्रमण' रखा गया। आनन्द श्रमण आत्मसाधना करने लगे। वे विधि पूर्वक मुनिधर्म का पालन करते थे। गोरखपुर निवासी पण्डित राजधारीजी त्रिपाठी के मार्गदर्शन में श्री आनंद श्रमण ने संस्कृत और प्राकृत भाषा का गूढ अध्ययन किया। वे व्याकरण, न्याय और दर्शन में पारंगत हो गये। इस तरह उन्होंने मराठी, हिन्दी, गुजराती, फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन किया।

शत्रु और बांधव में समाज भाव धारण करनेवाला सुख और दुःख समान माननेवाला प्रशंसा और निन्दा में समभाव रखनेवाला लोहा और सोना में समान दृष्टि रखनेवाला तथा जीवन और मरण में समान रहनेवाला श्रमण होता है।

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीन रत्नों में एक ही समय अच्छी तरह उद्यमी होकर प्रवर्तता है। वह एकाग्रचित्त को प्राप्त होता है ऐसा कहा है। उसका मुनि धर्म पूर्ण जानना।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यने अपने प्रवचनसार में (४१-४२) वर्णन किए अनुसार श्री आनंदऋषिजी सच ही आदर्श श्रमण हो गए।

आचार्यवर श्री आत्मारामजी म. के. स्वर्गारोहण के पश्चात् राजस्थान प्रान्त के अजमेर नगर में श्री आनंदऋषिजी को द्वितीय पट्टधर आचार्य उद्घोषित किया गया।

आचार्य प्रवर श्री आनंदऋषिजी ने भारत वर्ष के विविध स्थलों में विहार किया। जंगमतीर्थ जैसे वे प्रसिद्ध हुए। आचार्य श्री जहाँ-जहाँ जाते थे। वहाँ-वहाँ उनके मंगलमय चरणस्पर्श से तीर्थ स्थान बनता गया। लोग वहाँ के परिसर स्थानों से पाप प्रक्षालन के लिए वहाँ आते थे। तब आचार्य श्री हितोपदेश करते थे।

'हे भव्यजन! आपही आपके कर्ता, विनाशक और भाग्य विधाता हैं। आपही आपके मित्र तथा शत्रु है। जिस तरह शुभाशुभ कर्म करोगे उसी तरह उनके फलरूप सुख-दुःख भोगोगे। किए हुए कर्मों के फल भोगे बिना मुक्ति नहीं होती। कर्म कर्ता के पीछे जाता है। उठिए, प्रमाद मत कीजिए।

'असत्य वचन, अपकीर्ति करनेवाला और वैर बढ़ानेवाला होता है। सत्य ही निश्चय से भगवान है। प्रमादी मानव को धर्म से रक्षण नहीं मिलता। जैसा लाभ वैसा लोभ। लाभ के साथ लोभ बढता है। लोभ विनाशकारी है। लोभ को संतोष से जीतना चाहिए।

सब वचन सापेक्ष हैं। मन में उत्पन्न



हुआ द्वंद्व, वचन का निग्रह दूर कीजिए। एक दूसरे की दृष्टि जोडकर समन्वय कीजिए। अनेकान्त स्थाद्वाद ही समर्थ सम्राट् है जो संघर्ष दूर कर विश्व में शांति प्रस्थापित करेगा। जन्म से कोई भी श्रेष्ठ नहीं बनता तथा कोई भी नीच नहीं होता। मानव का नैतिक और अनैतिक जीवन ऊँच नीच की सच्ची परीक्षा है।

आचार्य श्री के सदुपदेश से प्रेरित होकर हजारो लोगों ने अनेक स्थानों मे विविध संस्थाओं की प्रतिष्ठापना की, उनमें श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री तिलोक जैन विद्यालय, अमोल जैन सिद्धांतशाला, श्री तिलोकरत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, आनंद प्रतिष्ठानादि संस्थाएँ ख्यातनाम हैं। आचार्य श्री के उत्तेजन से 'सुधर्मा' आनंद दीप पत्रिकाएँ हर मास प्रसिद्ध होती है। इसीलिए उनके आनन्द प्रवचन के १२ भाग सुविख्यात है।

हमारे वे सर्वश्रेष्ठ धर्मगुरु आचार्य संम्राट् १००८ श्री आनंद ऋषिजी ९२ वर्ष की उम्र में आपका महाप्रयाण हुआ।

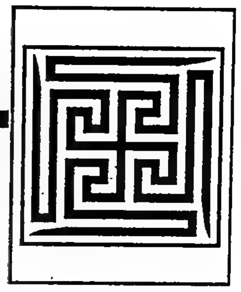
हे धर्मगुरु, आचार्य सम्राट् १००८ श्री आनंदऋषिजी म. मैं केवल आपके भव्य और अनुकरणीय जीवन का स्मरण कर सकता हूँ।

आपही बालब्रह्मचारी, जैन धर्मदिवाकर, पूज्यपाद, राष्ट्रसन्त आचार्य प्रवर थे। आपही युगप्रभावक, श्रमण संघाधिपती आगमकुशल शिष्यवरों के करुणाशील अधिपति थे।

प्रातःस्मरणीय राष्ट्रसन्त आचार्य प्रवर के मंगलमय पद्मांकित पादपंकजों को मैं परम भक्ति से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

■ ■

- *धर्ममय जीवन का प्रारम्भ दान से होता है। दान धर्म का प्रवेश-द्वार है।*
- *दान देकर जो पुण्य कमाया जाता है उसकी कभी हानि नहीं होती।*
- *इस पृथ्वी पर दान ही सर्वोत्तम कर्म है।*
- *सेवा और वैयावृत्य करने से आत्मा निर्मल बनती है तथा अनेकानेक पुण्य कर्मों का संचय होता है।*
- *शील, तप और भावना के द्वारा कर्मों की निर्जरा हो जाती है।*
- *पुण्य का परिणाम सुख है और पाप का परिणाम है दुख।*
- *शुभ कर्म का फल शुभ है। अशुभ कर्म का फल अशुभ है।*
- *पुण्य को प्रकाशित नहीं करना चाहिए, तथा पाप को छिपाना नहीं चाहिए।*



कौन नहीं था इन चरणों में समर्पित?

■ महासतीश्री कंचनकुंवरजी

मंगल प्रभात से पूर्व उन नव किरणों का अभिनंदन है। जिन्होंने तिमिराच्छेदन कर कण-कण को आलोकित किया है। कमलों से पहले उन झरनों का अभिनंदन है, जिन्होंने अपने तन का अस्तित्व मिटाकर जंगल को सुरम्य उद्यान बना डाला। उसी भांति मंजिल से प्रथम उन चरणों का अभिनंदन करते हैं, जिन्होंने दुर्गम पथ को सहज-सरलता से अपनी जीवन की साधना से एवं ज्ञान की अविरल आराधना से जन जन की सुविधा के लिए सुगम बना डाला, ऐसे हमारे मानस के सम्राट् आराध्यदेव पू. आनंदऋषिजी म. सा. थे।

अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर स्वामी का समवसरण लगता था। उसी भांति आचार्य भगवन् का 'आनंद समवसरण' लगा रहता था। आबालवृद्ध, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, साधु-साध्वी, बालबच्चे सभी ज्ञानामृत का पान करने के लिए लालायित रहते थे, और साथ ही गुरु भगवन् भी बड़ी उमंग - बड़े उत्साह से, उमर होने पर भी तत्परतापूर्वक - ज्ञान प्रदान करते रहे। वास्तविकता से आपका जीवन खुली किताबवत् था। ज्ञान का निरंतर झरना प्रवाहित होता था। आगन्तुक आपकी अमिय वाणी का पानकर मंत्रमुग्ध हो जाते थे। वास्तविक आनंद को प्राप्त करते थे। क्योंकि उस ज्ञान में दर्प का सर्प नहीं था। जिन्हें जीवन में कभी भी तनिक मात्र अहंकार स्पर्श नहीं कर पाया था। अतः आप उससे काफी कोसों दूर थे। जीवन में विनय का अनुपम दीप सदैव प्रज्ज्वलित था। जहाँ नम्रता का - विनय का दीप जलता है, वहाँ तम क्यों कर रहेगा? वह तो भाग ही जाता है।

आपके जीवन की सबसे बड़ी मौलिक विशेषता थी कि आप प्रकृति से जितने नम्र थे, उतने ही सरल थे और वाणी में मिठास थी। मधुरता थी। नम्रता के वजह विजयश्री आपका ही हरसमय चरण चूमती। प्रभु महावीर के समवसरण में इन्द्रभूति अहंकारी बनकर गये थे। दुनिया में मेरा जैसा अद्वितीय विद्वान कोई नहीं है। यह मान भगवन् को परास्त करने गये थे। परिणाम स्वरूप हार उनके ही पल्ले पड़ी। आखिर इन्द्रभूति ने भगवन् महावीर का शिष्यत्व स्वीकारा।

तदनुरूप कई वादी आचार्यश्री के चरणों में वाद करने आये। उन्होंने अपनी बात भगवन् के आगे रखी। उस समय भगवन् ने उन्हें अपना एक ही स्वर्ण-सूत्र सुनाया, वाद-विवाद करना मुझे पसंद नहीं है। इसलिए कि वाद-विवाद से तत्त्वबोध नहीं, कषाय की अभिवृद्धि होती है। वाद करना, यह शक्ति का दुरुपयोग है। अपव्यय है। और शक्ति का दुरुपयोग करना बुद्धिमानी नहीं है।

सुना है - अजमेर सम्मेलन के समय एक व्यक्ति आपश्री के पास आया और बोला - मैं आपसे शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ। आचार्यश्री ने मुस्कुराते हुए पूछा - किसलिए? उसने कहा - मैं आपको पराजित कर यह उद्घोषणा करूंगा कि श्रमण संघ के आचार्य मेरे जैसे व्यक्ति से भी हार गये है। आचार्य भगवन् ने उसी हास्यमुद्रा में पूछा - उससे तुम्हें क्या लाभ होगा? उस वादीने कहा - जिससे मेरा सम्पूर्ण समाज में यश फैलेगा। तब गुरुदेव ने कहा - तो फिर तुम यह मान लो, मैं हारा और तुम जीते। आगन्तुक आचार्यश्री के चरणों में गिर पड़ा और कह उठा, आपश्री ने तो बिना शास्त्रार्थ किये ही मुझे पराजित कर दिया।

भगवन् कहते - शास्त्रार्थ के समय उत्तेजित होना, पराजय का प्रथम चरण है।

■ ■



जस की तस धर दीनी चदरिया

■ डॉ. (श्रीमती) कुसुमलता जैन

आचार्य सम्राट् आनन्द घन युग-दृष्टा, युग-सृष्टा, अहिंसाग्रदूत, अहिंसावतार श्रद्धेय श्री आनन्दऋषिजी महाराज साहब का व्यक्तित्व पवित्रता का ज्योतिर्पुंज था। आपने मानवता के विकास एवं विश्वशांति के क्षेत्र में अहिंसक मार्ग को प्रशस्त किया था। आपने संस्कार निर्माण के क्षेत्र में अनेक स्थानों पर शिक्षण शालाएं, छात्रावास, स्कूल आदि खोलने की प्रेरणा प्रदान की थी। श्री तिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड आपकी ही कल्पना का परिधाम-सुमन है। जिसमें प्रतिवर्ष हजारों मुमुक्षु ज्ञानार्जन हेतु विविध परीक्षाओं में बैठते हैं। यद्यपि आज आचार्य प्रवर हमारे मध्य नहीं रहे, परन्तु आपका दृष्टव्य मार्ग व लक्ष्य हमारे सम्मुख है।

आप बृहद साहित्य भंडार के सृजक एवं जैन समाज के सजग प्रहरी थे। आपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की त्रिवेणी में जीवन पर्यंत गोते ही नहीं लगाए बल्कि नित्य ही उसमें निमग्न रहे। आपकी कथनी व करनी में साम्यता की एकरूपता थी। प्रत्येक व्यक्ति आपके प्रति चुम्बक की तरह आकृष्ट होता था। प्रतिदिन सेंकड़ों यात्री आपके दर्शनार्थ एवं जीवनोपयोगी मार्ग दर्शन प्राप्त करने अहमदनगर जाया करते थे। आपके पुण्य-प्रताप से वहाँ सर्वत्र 'यथा नाम तथा गुण' सर्वत्र आनन्द ही आनन्द व्याप्त था। वहाँ जाने पर पुनः वहाँ से आने का मन ही नहीं करता था। वहाँ के रसामिक्त वातावरण में प्रत्येक दर्शनार्थी ऐसा सराबोर हो जाता था कि अपनी जिम्मेदारियाँ, सुख-दुःख सांसारिकता आदि को भूला जाता तथा वहीं हंमेशा रहने के लिए मन-मयूर नाच उठता।

आचार्य प्रवर का बचपन का नाम नेमीचन्द था, आपने तेरह वर्ष की लघु वय में दीक्षा अंगीकार कर बाल्यकाल के नाम को युवावस्था में आते-आते तीर्थंकर भगवान नेमीनाथजी की तरह अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर सार्थकता प्रदान की एवं जीवन पर्यंत अहिंसक जीवन जी कर तथा समाज को एक सूत्र में बांधकर ऐसा आनन्द प्रदान किया कि आप 'आनन्द घनाचार्य' हो गए। आप अपने साथ जन्म जन्मान्तरों के पुण्य साथ लेकर पृथ्वीतल पर अवतरित हुए थे जिससे आप बहुत बड़े समाज के कर्णधार बने रहे तथा इस जीवन को इतने सुन्दर ढंग से जीया कि वर्तमान युग में आपने कवि कबीर की कल्पना को मूर्तरूप प्रदान कर दिया, सर्वश्रेष्ठ मानव योनि एवं सर्वश्रेष्ठ दस ही दुर्लभ प्राप्य बातों को सुलभ बना सहज रूप में जीवन में उतार कर बेदाग मनुष्य योनि की चादर को - "ओढ़ के चदरिया ज्यों कि त्यों धर दीनी" पवित्र से पवित्रतम बना कर मोक्ष पथ की ओर बढ़



गए। ऐसी मुमुक्षु भव्यात्माएँ ही साक्षात् तीर्थ होती हैं, जो स्वयं तो तिरती ही है अनेकानेक भव्यात्माओं को तिरने का मार्ग प्रशस्थ कर जाती हैं।

जब हमने आनन्द घनाचार्य के दर्शन किए तब मेरा हृदय उन देवतुल्य मूर्तिमान के दर्शन कर हर्षातिरेक श्रद्धा एवं विनय से अभिभूत हो गया। सांसारिक विषमताओं का परिमार्जन करते हुए आप श्री ने जैन धर्म का जो विस्तार किया, उसे जिन उँचाइयों पर पहुँचाया उसके लिए समाज का प्रत्येक व्यक्ति उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा। दक्षिण भारत, पंजाब, हरियाणा, काश्मीर, आसाम में आचार्य प्रवर के कुशल मार्ग दर्शन ने ही जैन धर्म को विकासमानरूप प्रदान किया है।

आज आचार्य प्रवर हमारे लिए ऐतिहासिक छबि बनकर रह गए हैं। मगर यह ऐतिहासिक छबि समय के प्रवाह के बावजूद अपने अस्तित्व से, अपने उपदेशों एवं सन्देशों से हमारा मार्गदर्शन सदैव करती रहेगी ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं आचार्य सम्राट् को विनय कुसुम अर्पित करते हुए सादर शत-शत नमन भेंट करती हूँ एवं कामना करती हूँ कि जिन शासन सदैव ऐसी भव्यात्माओं, तथा मुमुक्षु आत्माओं के मार्ग दर्शन पर प्रवाहमान रहे, गतिमान रहे।

■ ■

कमलवत् जीवन

■ महासती श्री रामकुंवरजी म.

इस धरती पर अनेक पेड़-पौधें उगते हैं। वर्षों जीकर नष्ट हो जाते हैं। न पंथी को छाया दे सकते हैं न पंछी को सहारा। उन पर खिले फूलों में न खुशबू होती है न सुंदरता। इसलिए उनकी ओर कोई आकर्षित नहीं होता। और न कोई उनकी याद तक करता है। जन्मा, जीया, गया, छुट्टी हो गई।

सरोवर में कमल खिलते हैं। दो-चार दिन में ही मुरझा जाते हैं, पर जन मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़कर। अपनी सुवास, सुकुमारता और सौंदर्य से मन को मोह लेते हैं। भ्रमरगण तो पागल हो जाते हैं।

श्रद्धेय गुरुदेव का जीवन कमलवत् था। खिलता, मुस्कुराता, जन मन को मुग्ध करता, फिर भी अपने आप में निरासक्त - निर्मोही।

गुरुदेव प्रेम पराग से भरपूर, स्नेह सुरभि से ओतप्रोत थे। कोई भी आये चरणकमल में, स्नेह की सुगंध उन्हें सहज ही मिल जाती थी। प्रेम का परिमल पाकर



वे धन्य हो जाते थे। लाखों नर-नारी, आबाल-वृद्ध श्रीचरणों में दौड़-दौड़कर आते थे। वहाँ न जाति-पांति का भेदभाव था, न अमीर-गरीब का, न किसी धर्म एवं संप्रदाय का। अपनी स्नेह सुवास से गुरुदेव ने सभी के हृदय को जीत लिया था।

गुरुदेव का हृदय अतीव सुकोमल था। करुणा - निर्झर निरंतर बहता था हृदय भूमिपर। किसी की पीड़ा, किसी का दर्द उनसे देखा नहीं जाता था। हृदय व्यथित हो जाता था। उनकी प्रेरणा से कंई स्थानों पर संस्थाओं का निर्माण हुआ। जिसमें विद्यार्थियों की शैक्षणिक अड़चनें दूर की। बेसहारा महिलाओं को सहारा दिलाया। वृद्ध, पीड़ितों, अपंगों को दिलासा बंधाया। कोमल थे दु:खी बेसहारों के लिए, पर खुद के लिए नहीं। अपने शरीर का कण-कण और समय का क्षण-क्षण निस्वार्थ भाव से समाज, संघ एवं धर्म की उन्नति के लिए अर्पण कर दिया था। सभी के श्रद्धा केन्द्र बन गए थे।

सत्य-शील से समन्वित एवं सुंदर जीवन। वाणी के अनुसार छाँव। कथनी-करनी में कोई अंतर नहीं। शुद्ध एवं पवित्र आचरण। धर्म के जितने भी अंग हैं, उनके जीवन में समाहित थे। शांति, समता, शुचिता, सद्भावना, संयम, सादगी आदि अनेक आचरणीय, आदरणीय सद्गुण सौंदर्य से पूर्ण खिला हुआ जीवन था। इस कारण हर कौम के लोग चाहे हिंदु हों या मुस्लिम, सीख हों या इसाई, पारसी हो या जैन श्रीचरणों में आकर शांति पाते थे। अपने नयन, मन को पावन बनाते थे। गुरुदेव भी सब के साथ उतनी ही सद्भावना के साथ पेश आते थे।

इस प्रकार स्नेह-सद्गुण रूपी सुवास, हृदय की सुकुमारता एवं शील-सौंदर्य से गुरुदेव का जीवन विकसित था। इन महान गुणों के कारण गुरुदेव लाखों - करोडों दिलों में बसे थे। फिर भी स्वयं जलकमलवत् निर्लेप-निरासक्त थे। सब के साथ रहते हुए भी अंतर से न्यारे थे।

आज गुरुदेव हमारे बीच नहीं है। पूज्यश्रीजी के स्मरण के साथ मन में बेचैनी निर्माण हो जाती है। वह बेचैनी कभी-कभी आंसुओं का रूप धारण कर लेती है। लगता है हम बेसहारा बन गये हैं।

परंतु केवल ये खारे आंसू बहाने की अपेक्षा, यादों में समय बिताने की अपेक्षा श्रद्धेय गुरुदेव की इच्छाओं को, उनकी कामनाओं को पूर्ण करना एवं पू. श्रीजी के पावन सान्निध्य में पाये हुए संस्कारों को एवं सुशिक्षा को कार्यान्वित करने का संकल्प करना यही हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। हम पू. गुरुदेव के कार्यों की एवं कामनाओं की प्रगति हेतु सदैव तत्पर रहने का प्रयास करेंगे।

॥ जय आनंद ॥

■ ■



हे मेरुमणि !

■ महासती श्री अक्षयप्रभाजी म.

तेरे ही दम से इस गुलशन में बहार थी।

तेरे ही कदमों में रहमते हजार थीं।

तेरे जाने से कण-कण हताश हो गया।

इस चमन का पत्ता पत्ता उदास हो गया।।

जन जन के श्रद्धा के केन्द्र श्रमण संघ के नेता, समगंभीर, जान महोदधि, राष्ट्रसन्त, आचार्य भगवन्त का व्यक्तित्व अत्यन्त विलक्षण एवं प्रभावशाली था। जो भी व्यक्ति एक बार भी आचार्य श्री के सम्पर्क में आ जाता वह सदा के लिए उनका हो जाता। उनके मुख-मण्डल पर तप, संयम की अद्‌भुत आभा विराजमान रहती थी। वाणी में मानो सरस्वती का वास ही था। जैन जैनेतर समाज के लिये वे प्रेरणास्रोत थे। सम्प्रदायवाद से परे रहकर सारे भारत वर्ष में परिभ्रमण उन्होंने भगवान महावीर के दिव्य सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार किया था।

आचार्यश्री को बचपन से ही माता हुलसाने ज्ञान-भक्ति की घुटी पिलाई थी। अतः बचपन से ही अभंग, गीतापाठ, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक ग्रंथों का पठन करते रहे। १३ वर्ष की छोटी उम्र में भागवती दीक्षा पू. गुरुदेव श्री रत्नऋषिजी म. के सान्निध्य में ग्रहण कर आनन्दऋषि नाम से संबोधित हुए।

त्रिविध धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन करके उन्होंने प्रगाढ पाण्डित्य प्राप्त किया।

आपके सदुपदेश से विभिन्न स्थलों पर समाजोपयोगी संस्थाये स्थापित हुईं। आज भी वे संस्थाएँ निरवच्छिन्न रूप से चल रही है। इसका जीता जागता स्वरूप है पाथर्डी में संस्थापित श्री तिलोकरत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड-अहमदनगर।

इस मेरुमणि में प्रेम और वात्सल्य तो कूट-कूटकर भरा था। मानो प्रकृति ने स्नेह एवं वात्सल्य के सारे परमाणुं इन्हीं के लिए निर्माण किया हो।

माता के समान प्यार, पिता के समान दुलार, ममता के तो वे भाण्डार ही थे। छोटे-बड़े सभी के साथ मधुरता का व्यवहार करते थे।

शरणागत के तो वे आधारस्तंभ ही थे।

ऐसे थे अनाथों के नाथ, बच्चों के माता पिता, जनता के नेता, भक्तों के भगवान और श्रमण संघ के मेरुमणि पूज्य आचार्य भगवन्त।

उनका अभाव सदैव खटकता रहेगा। अब हम सभी अनाथ हो गये हैं। छत्रविहीन हो गये हैं।

हे काल राज। तू ने यह क्या किया।

जय आनन्दऋषिजी महाराज।

चरणों में कोटि कोटि प्रणाम।

जब तक सूरज चाँद सितारे,

अमर रहे, आनन्द का नाम।

■ ■



महान लब्धि सम्पन्न आचार्य देव

■ युवा मनीषी श्री सुभाषमुनिजी म.

भारत की धरती रत्नों की खान मानी जाती है। इस धरती के कण कण से ऐसी चमक दमक प्रस्फुटित होती है। जिसे निहारकर हर दुनियाँ का इन्सान उपरवाले उस इश्वर को स्मरण करने के लिए मजबूर हो जाता है। जब कि इस धरती पर विशचरों का दानवों का प्राय बोल बाला रहा परंतु उसी दुष्प्रवृत्ति के विनाश हेतु कभी राम, कभी कृष्ण, तो कभी श्रमण भ. महावीर, बुद्ध, जिसस ने अवतार लिया। इस धरती का कण कण बहु मूल्यवान है जिसे हम अपना खून देकर भी खरीदना चाहे तो हमारी भूल की पहल होगी।

इसी रत्नावली में हमारे आराध्य देव शासन के उन नायक आचार्यदेव पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म. का नाम भी गौरव से लिया जाता है। यथा नाम तथा गुण, आपकी अद्वितीयता अपने आप में स्वयं मिसाल थी। हर एक स्थिति में समत्व भाव को मन रखना आपकी महत्ता थी। सुख में हर व्यक्ति मुस्कुरा देता है, पर जब गम के मेघ छाये हो मुस्कराता कोई आनन्द मिलना आसान नहीं। आनंद की खोज में हर प्राणी भटक रहा है परंतु हमारे आचार्य भगवन्त स्वयं आनन्द में निमग्न रहे वहाँ सुख दुःख की कोई वेदना संवेदना उन्हें त्रासकर पाने में असमर्थ रही।

आचार्य देव विनम्रता में कहीं अधिक विश्वास रखते थे, और कहा करते थे कि कुछ पाना है तो अहिंसा की गीढ़ से विनम्रता की पारसमणी को चुन लो, जहाँ भी तुम इस मणी को लगाओगे सब बिगड़ा काम संवर जाएँगे।

सुना करते थे कि पारस के संघ लोहा लग जाए तो सोना बन जाता था पर आपका शरीर भी पारस से कम नहीं था। मालेरकोटला की धरती पर एक ग्रहस्थ ऐसा मिला जो कॉलरा की बिमारी ले परेशान था, आचार्य देव ने आशिर्वाद देते कहाँ भाई इसकी तप-जप करो, सेवाभक्ति करो। वर्षों से बिमार व्यक्ति दो पलमें स्वस्थ हो गया। आपश्री का जीवन चमत्कारों से ओतप्रोत था।

आप कुशल लेखक थे, आपश्री के प्रवचनों को पढ़ने का जब जब अवसर मिलता है तो मनस भावविभोर हो जाता है। ध्यान, साधना, स्वाध्याय, ज्ञानाराधना इत्यादि की मार्मिक चर्चाओं का विवरण आपकी लेखनी से मिलता है।

आपने जीवन के करीब ३० बसन्त आचार्यपद के लिए प्रदान किए जिसमें अनेकों विघटन की स्थितियाँ बनती रही, समाज के कर्णधार तथा अपने आपको त्यागमुर्ति माननेवाले तथा पद्लिप्सा से ग्रंसित अनेकों आत्म साधना में निमग्न

मुनिवरों ने ऐसी स्थिति की पैदा किया कि संघ खण्ड खण्ड में बिखर जाए मगर आपश्री का तप तेजपुञ्ज पुण्य प्रभाओं से समस्याओं का बराबर समाधान होता रहा। पर यहाँ यह लिखने में कोई संकोच-नहीं कि जिस भावना को लेकर त्याग जीवन में प्रवेश होता है, वहाँ लोकेशन की हरियाली में आज का साधक उलझा हुआ है। समाज के कल्याण तथा उत्थान का संभवतः इतना भाव नहीं, जितना अपनी पद्लिप्सा की प्राप्ति का भाव है।

का उपदेश देना बहुत आसान है, पर अपने जीवन में लागू उसका साक्षात्कार करना आसान नहीं। श्रावक समुदाय भी इसी बात का शिकार है।

मगर आपश्री इन सभी से अपने दामन को बचाये रहे, आनेवाले समय में पुनः विवाद जन्म ना ले, अपने होते ही आप सब विरघाटित कर गये, यह आपकी सुदृढ़ दूरदर्शिता का परिणाम है।



अफसोस इस बात का है कि वर्षों पूर्व इस लिखते हाथों का चरणस्पर्श करने का मौका कई बार मिला। जन्म दशक के मंगल प्रवेश पर नवीनता की योजनाएँ चल रही थी कि आप समाधिपूर्वक हम सब सभी को अलविदा कह कर अपनी पावन स्मृतियाँ हमारे बीच छोड़कर महाप्रयाण कर गए।

ऐसे वातावरण में आपश्री के गुणानुवाद करते शत शत श्रद्धा-पुष्पांजलि ही समर्पित कर सकते हैं। तथा आपश्री के आदेशें को जन जन के बीच रखकर आपको अपने बीच में सदैव पा सकते हैं। ऐसे महान दिव्य विभूति के पावर चरण सरोजो में पुनः श्रद्धावान वन्दन!



- *साधु-जीवन वास्तव में तो लोहे के चने चबाने जैसा है; यह ऐसी कसौटी है, जिस पर साधक के संयम, साहस, धैर्य, सहनशीलता, शांति और सन्तोष आदि की सच्ची परख होती है।*
- *शुभ-कर्म करने पर ही मनुष्य मुक्तिरूपी शुभ फल को प्राप्त कर सकता है।*
- *शुभ-कर्म करने से सुख और पाप-कर्म करने से दुख मिलता है। अपना किया हुआ कर्म सर्वत्र ही फल देता है। बिना किये हुए कर्म का फल कहीं नहीं भोगा जाता।*
- *सेवा ही वास्तविक संन्यास है। सेवा किए बिना कोई मानव महामानव नहीं बन सकता।*
- *बन्धन और मोक्ष के दो ही आश्रय हैं - ममता और ममता-शून्यता। ममता से प्राणी बन्धन में पड़ता है और ममता-रहित होने पर मुक्त हो जाता है।*



माझे गुरुदेव

■ डॉ. धर्मशीलाजी म.

अनंत उपकारी, अहिंसेचे अमर पुजारी, मनाने निर्मळ, कर्तव्यामध्ये लीन, जैन शासन सम्राट पू. आचार्य सम्राट आनंदऋषिजी म.चे गुणगान लिहिणे म्हणजे आकाशातून तारे पृथ्वीवर आणण्यासारखे आहे. अनेक गुणांचे धनी. काय लिहू आपल्यांसाठी. कोणती श्रद्धांजली अर्पण करू ?

पू. राष्ट्रसंत आचार्य सम्राट गुरुदेवांची जनमनावरील पकड ही राखीव शक्ती Reserve Force होता. कित्येक वर्षापासून ते जनजागृतीत राबत होते. राष्ट्रपतीच्या महालापासून तर आदिवासीच्या झोपडीपर्यंत त्यांच्या उपदेशाचा संचार होता. लहान सहान बाबसुद्धा त्यांच्या निरीक्षणातून सुटलेली नाही.

वयाच्या दहाव्या वर्षी त्यांच्या पायाला भिंगरी बांधली गेली ती वयाच्या ९२ वर्षापर्यंत गरगरतच होती. जेथे जात होते तेथे सामाजिक उणीवा ते बुजवीत होते. राष्ट्रसंत आचार्य सम्राट पू. गुरुदेव म्हणजे स्वयंचलित तोफखाना होता.

पांढऱ्या दाढ्यामीशांचे वृद्ध चेहरे, पदरात लपलेले घरंदाज स्त्रियांचे मुखवटे आणि उत्साहाने आ वासून व्यासपीठाकडे लागलेले मुलांचे चेहरे या सर्वांवर एक रंग चढविणे सोपे नाही, पण ते काम आचार्य सम्राट पू. गुरुदेव सहजगत्या करीत होते. सारे एका सीमेवर येत होते आणि तृप्तीचा आनंद डोळ्यात साठवून एका अव्यक्त मंत्राने भारले जात होते.

पू. गुरुदेवांच्या खेडेगावात या शहरात पाय टाकल्यापासून तर तेथून जाईपर्यंत प्रचंड स्वागत आणि निरोपाचे प्रसंग वाट्याला येत असे.

त्यांची वाग्गंगा म्हणजे मुखा जवळचा महासागर होता. गुरुदेवांचे मनोगत होते आणि ते नेहमी प्रवचनातून सांगत होते - युवकांनी सावध रहावयाचे, शेतकऱ्याने आळशी बनायचे नाही, कामगारांनी संप करायचा नाही. आपल्या गरजा आपल्या पुरुषार्थातून, पराक्रमातून, कष्टातून भागविल्या पाहिजेत; तरच भारत देश सुखी, समृद्ध, आणि पराक्रमी राष्ट्र म्हणून जगासमोर उभा राहील. "east and west India is best". ज्याप्रमाणे दानामध्ये अभयदान, हत्तीमध्ये ऐरावत, मंत्रामध्ये नवकार, फुलामध्ये गुलाब, पशुमध्ये सिंह श्रेष्ठ आहे त्याप्रमाणे आचार्यामध्ये आचार्य सम्राट पू. आनंदऋषीजी म. श्रेष्ठ आहे.

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, आचार्य जिनभद्रगणी क्षमा श्रमण, आचार्य हरिभद्र, आचार्य शीलांक, आचार्य अभयदेव, आचार्य हेमचंद्र, आचार्य लवजीऋषिजी, आचार्य धर्मसिंहजी, आचार्य धर्मदासजी,



आचार्य अमोलकऋषिजी, आचार्य श्री आत्मारामजीमध्ये आचार्य सम्राट पू. आनंदऋषिजी महाराजांचे स्थान अलौकिक आहे.

आपले मस्तिष्क चिंतनाची उर्वस्थळी, हृदय साधनाची रंग स्थळी, सद्प्रवृत्ति, सर्वजन सुखाय वनस्थळी होते. आपल्या वाणीमध्ये हिऱ्याची चमक, खंजराची तीक्ष्णता, मोतीचे लावण्य आणि स्फटिकाची पारदर्शकता होती.

आचार्य आनंद खरोखर आनंदाची प्रतिमूर्ति होते. आनंद हा आत्म्याचा स्वरूप आहे. आपल्या जीवनाच्या अणु अणुमध्ये आनंद भरलेला आहे. दुसऱ्याला आनंद देणे, हेच आपल्या जीवनाचे लक्ष्य होते.

दया, क्षमा, नम्रता, करुणा, मैत्री असे अनेक गुण आपल्या जीवनामध्ये होते. गुरुदेवांच्या स्वभावात सरलता, व्यवहारात नम्रता, वाणीत मधुरता, मुखावर सौम्यता, हृदयात गंभीरता, मनात मृदुता, भावात भव्यता, आत्म्यामध्ये दिव्यता होती. अशा गुणपुंज गुरुदेवांच्या चरणी कोटी कोटी वंदना !

जय आनंद
जय महावीर



- *त्याग के बिना मुक्ति की अभिलाषा कभी पूर्ण नहीं हो सकती।*
- *बन्धन और मोक्ष के दो ही आश्रय हैं - ममता और ममता-शून्यता। ममता से प्राणी बन्धन में पड़ता है और ममता-रहित होने पर मुक्त हो जाता है।*
- *किसी का बुरा करना सरल है, कठिन है किसी का भला करना।*
- *साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नांय।*
- *मद भक्ताः यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि भारत !*
- *सन्त आपसे कुछ नहीं चाहते, वे केवल आपके हृदय की शुद्धता और निर्मलता चाहते हैं।*
- *ज्ञानरूप दिव्य अग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है।*
- *जिस प्रकार कपड़े की थैली को हवा से भरना कठिन है, उसी प्रकार कायरता से संयम पालना कठिन है।*
- *सच्चे हृदय से और अन्तःकरण की संपूर्ण भावना से प्रार्थना करने वाला व्यक्ति दिखावा नहीं करता, वह अपने इष्ट के लिए उद्यत रहता है।*

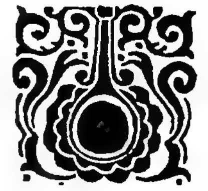


काव्याञ्जलि......

श्रद्धांञ्जलि

■ उपाध्याय केवल मुनि

शान्त धीर जितकाम मनस्वी
करुणासिन्धु संघ संज्ञान
श्रमण सूर्य शासनविधु श्रुतधर
मानवता के पुण्य महान्
देवीचन्दतनय कुसुमाकर
सरल शिरीषहृदय अविकार
हुलसासुत आनन्दघनोदय
दानशीलतपभावाकार
दर्शन ज्ञानचरित्रध्रुवाचल
गुणषटत्रिंशसंगमाचार
महामहिम गतखेद यशोधन
वाग्मी वातरशन सुविचार
आप्तकाम निर्विषय यतस्वी
करुणा मैत्री और प्रमोद
चिरमाध्यस्थवृत्ति के धारक
सत्यकाम पावनता गोद
पण्डितमरणवरणपटु अमृत
नामरूपगुण अमरप्रदय हो
ऋद्धि-सिद्धि के मन्त्र मनोहर
ऋषि आनन्द संघशिव जय हो।



आनन्दगणीअवधूतया

■ प्रवर्तक श्री रजतमुनि

च्यार संघ शिरमोर, आनन्दगणिअवधूतया।
कालजिया री कोर, छोर गया सुरलोकमें।।
दशमी ने दिवलोक, उछब मंड़ियो अजबसो।
आनन्द ने अवलोक, मेलो मंड़ियो गजबसो।।

चौकशोक-सवैया

शासन दीप प्रकाशित स्वामिन, खामिन ऐकनं आत्म उजागर।
तारक, जारक-अग्गन मारण, धर्म प्रचारक संघ सुधाकर।।
धारक धाक सुबाक अमीरस, आनन्द ओजसु तेज प्रभाकर।
'आनन्द' रूप-स्वरूप अनूपम, चूप गयो जग-जैन दिवाकर।।
गुण वृन्द गुणीन्दसमंदमहासु-प्रेम बुलन्द दिनन्द सवायो।
दुःख द्वन्द हरन्द सत्येन्द्रगुणी-धुनिध्यानसुधामनभत्यसुहायो।।
भाल विशाल निहाल भवीमन-'आनन्द' रूप-अनूप कहायो।
गुण वाट विहाट सम्राट 'रत-नेश' को पाट तुं खूब दिपायो।।
तुम-राष्ट्र के सन्त, महाराष्ट्र झुरे सब-आप नगर बीच धाम जमायो।
मित्त अजीत सु प्रीत अखंड़ित, सन्त सती घननाथ बरायो।।
अणरीत कि भीत हटावन, भावुक भव्य को चित्त भरायो।।
अरिहंत जपी तन ताप तपी-सत-आनन्दऋषि भगवंत कहायो।
राजस्थान, महाराष्ट भजेभल, भारत देशमें बोत भलाई।
सन्त सु श्राध-सरात सदामन, दिल्ली के मंड़ल कीरत गाई।।
जन्म भयो अस अन्त अखंड़ित, अम्मर नाम सदा जग भाई।
प्रेम से 'रज्जत' नेक सराहत, 'आनन्द' को मन आनन्द माही।।

- *संसार-सागर को पार करने की इच्छा रखने वाला साधक धर्मरूपी जहाज का आश्रय ग्रहण करता हैं।*
- *मद (अहंकार) मनुष्य को ज्ञानहीन और विवेकशून्य बनाकर छोड़ता है।*



आदर्श आनन्दाचार्य

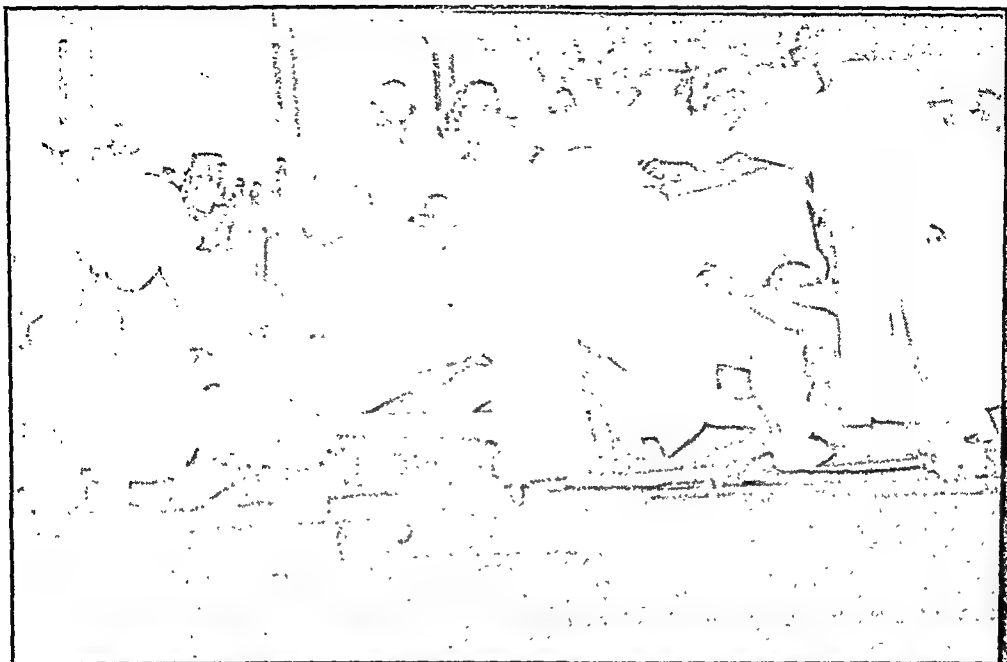
■ हीरा मुनि 'हिमकर'

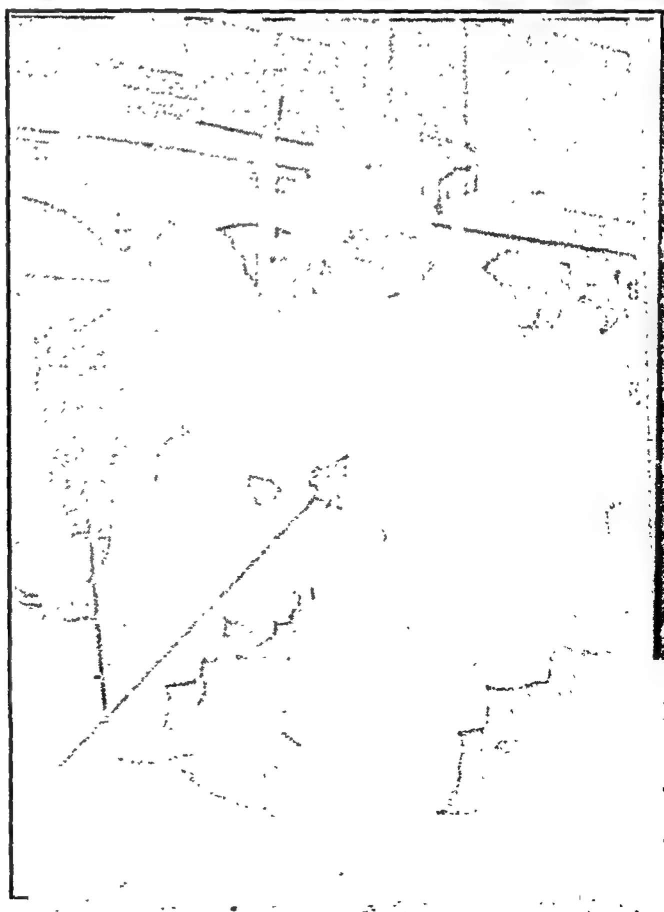
'चिचोंड़ी' के प्रांगण में देवीचन्द के आंगण में,
हुल्लास हुल्लासभरी, पाया पुत्र भारी है।।
'गुगलिया' कुल पाया, रत्न अमोल आया,
आनंद आनंद कारी, दिया नाम सुखकारी है।।
पुण्य का खजाना लाया, बालपन में संयम पाया,
बालब्रह्मचारी ज्ञानी, जीवन जग जहारी है।।
हीरा मुनि हिमकर, श्रद्धा से नमन कर,
सेवा में अर्ज यहीं, राखो महर भारी है।

आनन्द आचार्य देव, णमो णमो नित्यमेव
वरते कुशल क्षेम, देव चमत्कारी है।।
पद्मलंछन देखा, चरणों में था जो चोखा,
अनोखा अमर यश, पुण्य साज भारी है।।
आनन्द की लीला भाई, संघ ने अनोखी पाई।
फिर ऐसा आनन्द हम, चाहे संघ चारी है।।
हीरा मुनि हिमकर, बात कहीं सोचकर,
आचार्य आनन्द की, जुदाई खटके भारी है।।

मन में बसा है आनन्द, चारों संघ में रहा में आनन्द।
श्रमण संघ का जो प्राण, गया स्वर्ग सिधारी है।।
जब तेरी याद आवे, नयन मेरे भर जावे।
टप टप आँसु आवे, दिल दर्द भारी है।।
संघ के हितैषी आप, भविष्य बनाया साफ,
दोनों पद कायम कर, दीनी चिन्ता टारी है।।
भावना मेरी है राज, चिरायु हो दोनों ताज,
संघ का सुधारे काज, विनति हमारी है।।३।।

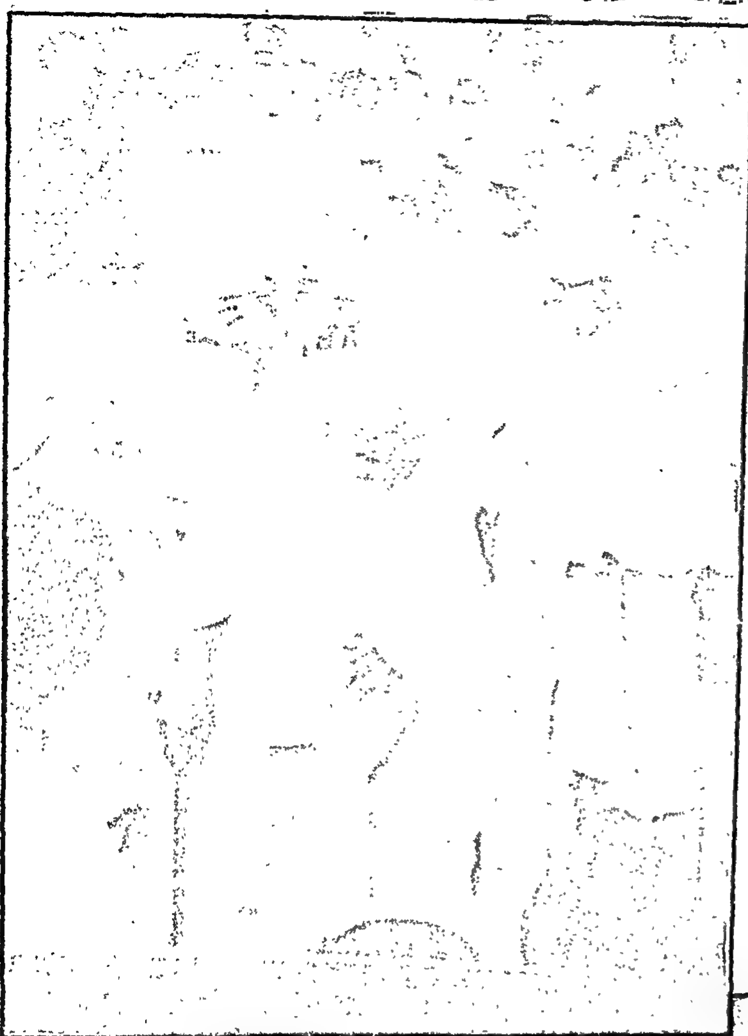
प्रथम आचार्य बने, ऋषि संप्रदाय के ही,
छः संप्रदाय के बने फिर, आचार्य गुणधारी है।।
श्रमण संघ बना तब, प्रधानमन्त्री पद तब,
ज्ञान दर्शन चारित्र की, जगाई ज्योति भारी है।।
दो सहस्त्र बीस भाई, अजमेर सम्मेलन मांई।
आचार्य सम्राट पद, दिया संघ सुविचारी है।
हीरा मुनि हिमकर, कर बद्ध होय कर,
संघ का उद्धार करो, चढे आत्म शक्ति भारी है।।४।।



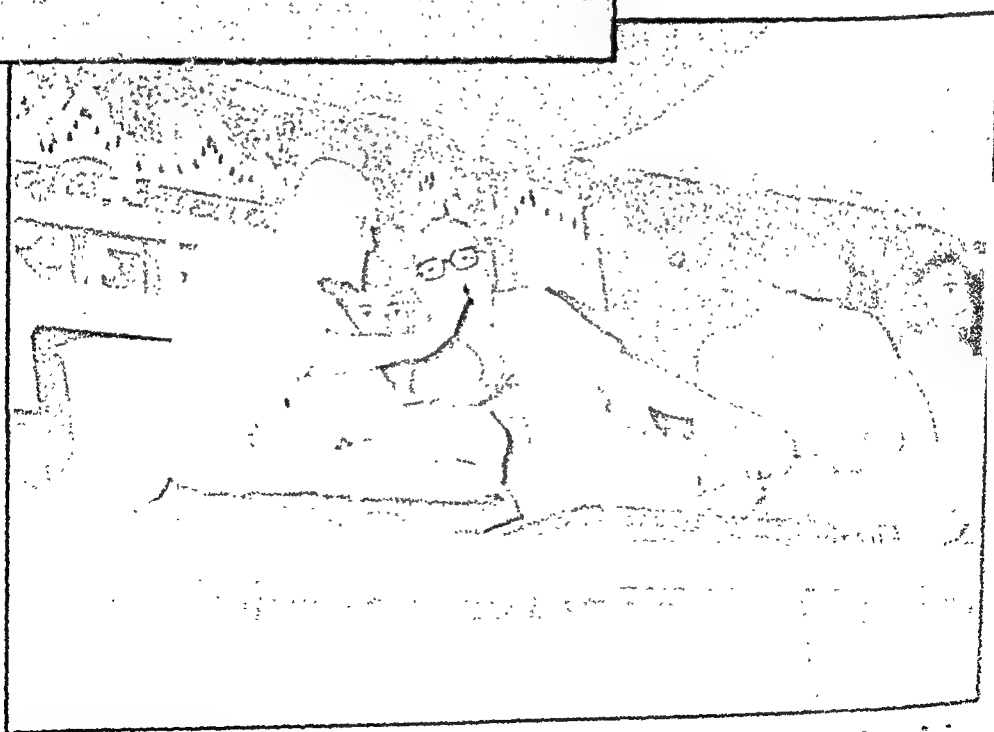


दास कबीरा जुगत से ओढ़ी
ज्यों की त्यों
धरि दिनी चदरियाँ॥
आचार्य पद चादर समारोह
१९६४ अजमेर

सदा सक्रिय सदा कर्मरत
गति ही जिनका था जीवन
संगठन के दो सजग प्रहरी
रेगिस्तान को कर दे मधुवन।
आचार्य प्रवर के साथ
पू. श्री. मरुधर केसरी
मिश्रीमलजी महाराज



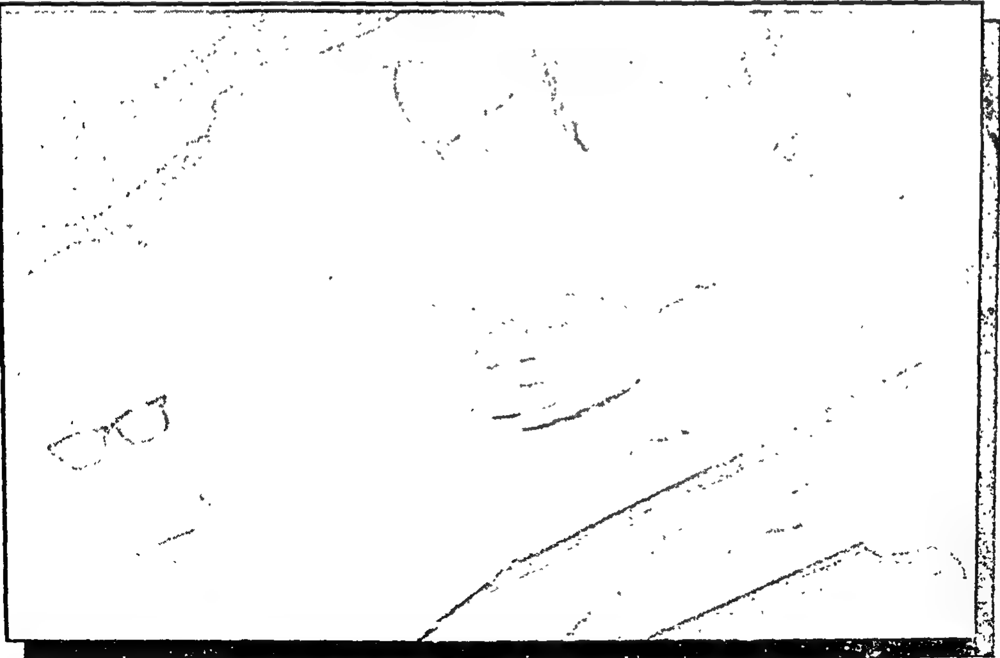
बढ़ जाते है कदम
पथ मिल जाता है
चल पड़ती है नाव
किनारा मिल जाता है।



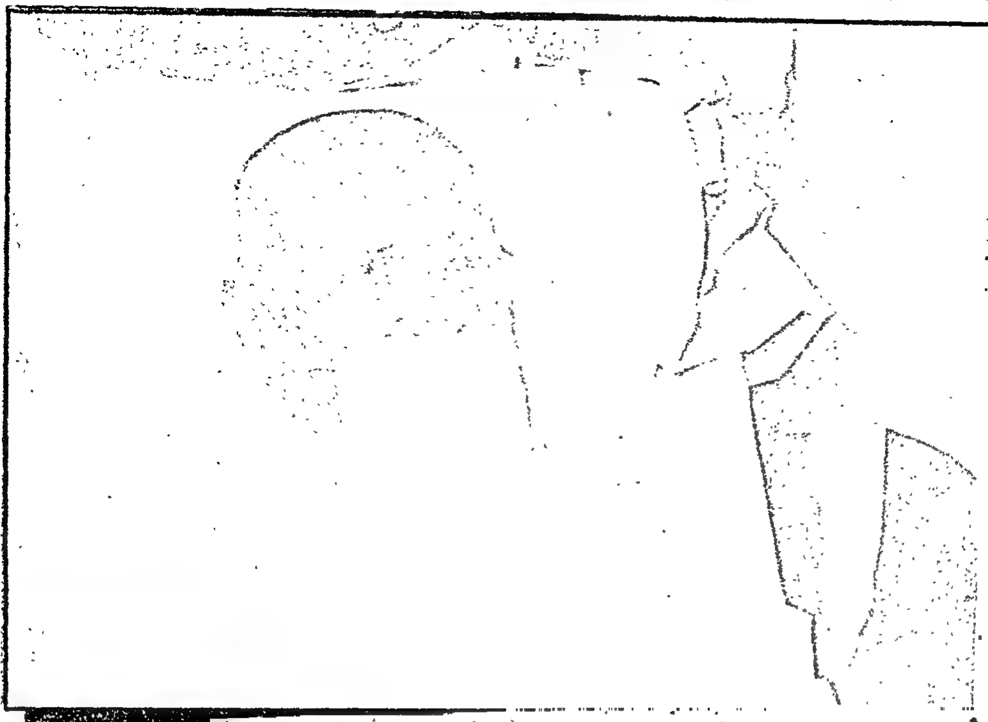
भेदभाव की दीवार नहीं थी, 'संगठन शक्ति'को जानते थे। सम्प्रदाय पंथवाद से दूर रहे, सभी को अपना ही मानते थे।
मंदिरमार्गी आचार्यप्रवर से विचार-विमर्श करते हुए



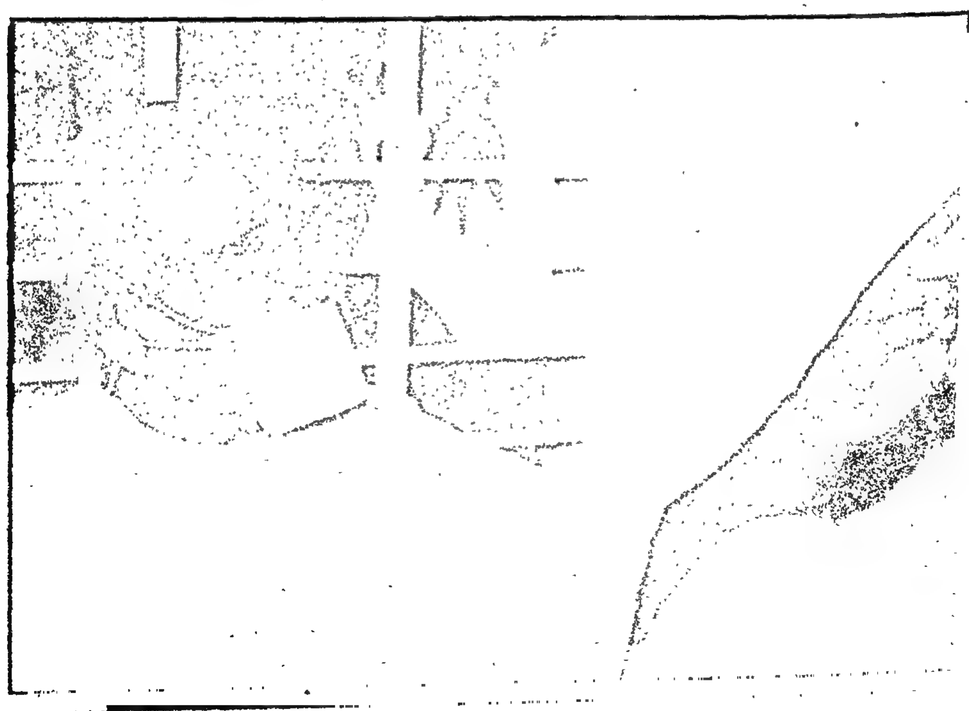
वे हंसते थे तो फूल झरते थे। वे चलते थे तो कमल खिलते थे।।
प्रसन्नमुद्रा में आचार्यश्री जी।



'सहज समाधी भली रे संतो' यही जिनका जीवन था।
योगमुद्रा सहज प्राप्त थी, अविचल, स्थिर आसन था।।
ध्यानमुद्रा में आचार्य श्री जी।।।



भावपूर्ण सहजमुद्रा में आचार्य प्रवर, अ.नगर १९९१

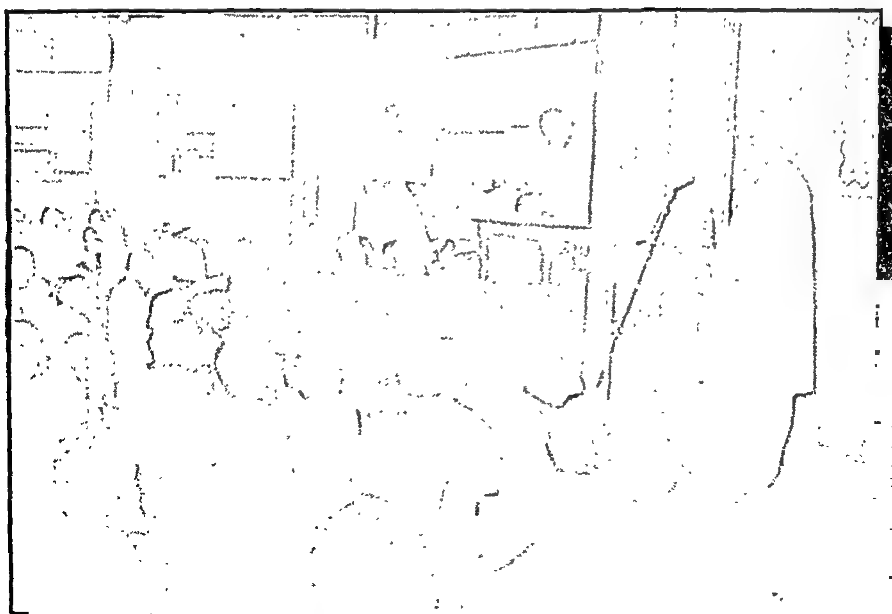


समझने वाले को इशारा काफी है।



ज्येष्ठ साहित्यिक श्री. जैनेन्द्रकुमारजी से सुहास्य मुद्रा में वार्तालाप करते हुए
आचार्य प्रवर

अ.नगर १९८५

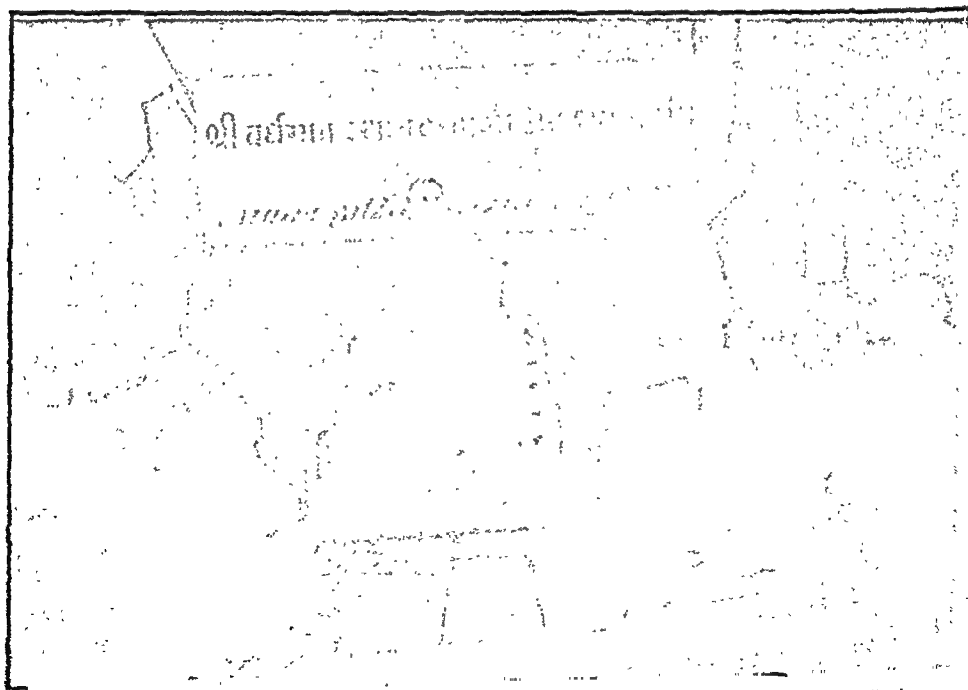


श्री. आचार्य प्रवर के समक्ष अपने भाव अभिव्यक्त करते हुए
ज्येष्ठ राजनीतिज्ञ श्री. अटलबिहारी वाजपेयी

अ.नगर



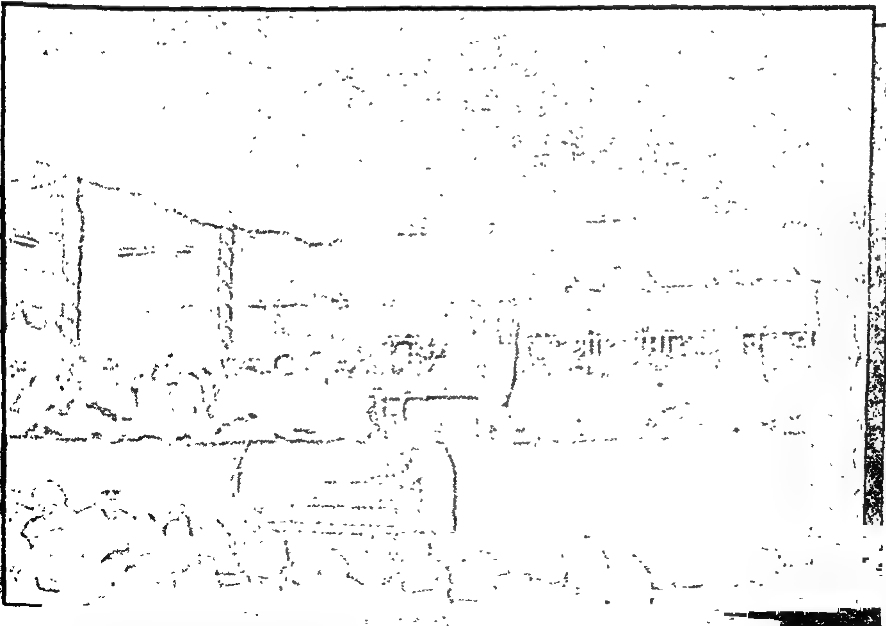
राष्ट्रपति श्री. झैलसिंग गुरुवर्य से आशीर्वाद ग्रहण करते हुए।
चिंचवड, १९८६



ऐतिहासिक प्रांगण में ऐतिहासिक प्रसंग – उपाध्यायत्रय भ्रख के साथ, आचार्य प्रवर
शनिवारवाडा, पूना १९८७



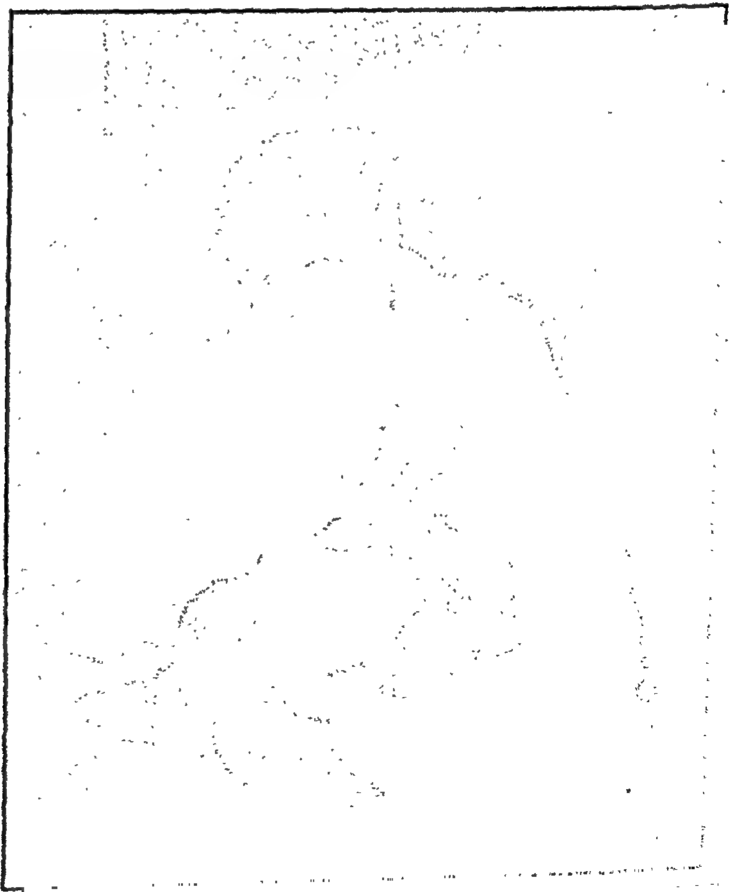
सम्मेलन की विराट सभा में मंचपर आचार्य प्रवर के साथ द्वारकापीठ के शंकराचार्य श्री. स्वरूपानंद सरस्वती
पूना १९८७



वरिष्ठ मुनिवृंद के नक्षत्रमण्डल में चन्द्रमा के समान शोभायमान आचार्य प्रवर
बृहत्साधु संमेलन, पूना १९८७



अचम्वो इन लोगन को आवे। छांड गोपाळ अमित रस अमृत माया विष फल खावे।।
जनता को संवोधित करते हुए आचार्यश्रीजी।



आशिषों की वर्षा बरसाकर,
दुःखियों का दुःख हर लेते थे।
नजरों से अमृत बरसाकर
झोली भर-भर देते थे।।

माला फेरते हुए आचार्यश्रीजी

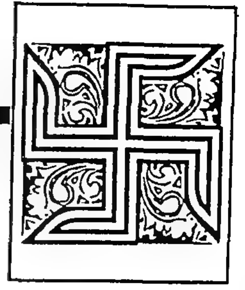


नजर तेरी बदली
नजारे बदल गए
किश्ती ने बदला रुख
किनारे बदल गए



खयाल न था उम्र का
ज्ञानार्जन में, पढ़ने-पढ़ाने में
जीवन बीता।
अनेक विषयों के पंडित थे
ऋषिवर
क्या कुराण और क्या गीता।।

पढ़ने में लीन आचार्यश्रीजी



लोक मंगल के विधायक : आचार्यश्री

■ डॉ. साध्वी ज्ञानप्रभा

एक

लोक मंगल के विधायक,
लोक कल्याण की जागरूक प्रतिभा,
लोक स्वरूप के ज्ञाता,
आनंद सरोवर की सुहावनी बयार,
आनंद सागर की तरंगायमान लहर,
आनंद निकेतन,
आचार्य सम्राट् -
पूज्य आनंदऋषिजी महाराज साहब
के
जीवन की अकथ कहानी
जुबान की हर स्वाद कलिका के ऊपर,
नर्तन करती हुई;
मुग्धा नायिका की तरह -
हर भक्त को, हर रसिक को
बरबस ही,
अपने चितवन में समा रही है।

दो

ओ महायोगी गुरुदेव!
अनंत अविश्रान्त कालचक्र की
अस्खलित धारा को -
तोडकर,
आप आये।
औदारिक देह के दिव्य मंदिर में
अलख जगायी।
सचमुच
आपके विराट् व्यक्तित्व को,
ऊर्ध्वगामी चैतन्य को,
शब्दों का परिवेश देना;
यह तो एक-
अनबूझ पहेली है।

तीन

विलक्षण प्रतिभा का धनी
बालक नेमी,
सारे विश्व में छा गया, संत बनकर।
वैसे ही
वसंत की तरह
लोक हित की कामना, अंतर में संजोए-
'चरैवेति' के पथ पर चल पडे।
हर गली, हर गांव,
हर शहर, हर प्रान्त,
हर घर को,
कृपा सलिल से सरसब्ज बनाया।
संयमी जीवन की सुदीर्घ अवधि में
शिक्षा - दीक्षा हित शिक्षा
संस्कार, परिष्कार, आविष्कार -
आदि कई तकनीकी साधनों से,
भावनात्मक रासायनिक प्रयोगों से -
श्रमण संघ की काया को -
सजाया संवारा।
श्रमण संघ की नौका को,
सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित चलायी।



चार

अकस्मात्-
वह कालजयी महामानव।
अनंत आस्था के नाभीय बिन्दू,
फूल की तरह -
काल चक्र की आंधी में झर गया
प्रेरक बिन्दू, साधकों का -
काल प्रवाह में बह गया।
ओ जीवन उद्यान के माली।
यह हरा भरा उद्यान छोडकर -
महानिर्वाण के पथ को -
क्यों चूना?
चूपचाप क्यों चल पडे?
क्या हमारी कोई गलती नजर आई?
गलती नजर भी आई हो?
तो भी हम आपके ही
नन्हे मुन्ने साधक ठहरे।
हमारी गलतियों का परिष्कार करना ही -
- उचित था।
किन्तु,
इस - कदर - मंझधार में छोडकर जाना -
क्या न्यायोचित था?
उत्तर, अपेक्षित है।

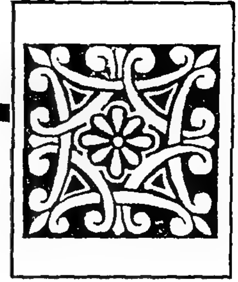
पांच

ओ दिव्य देही!
हमारे लिए अब शेष क्या रहा?
केवल पुण्यस्मृति।
घिर घिर आते स्मृति के बादल,
भर देते प्राणों में हलचल,
दर्शन की तीव्र पिपासा -
यह चातक दो बूंदों की विव्हल।

छह

ओ ज्ञानज्योति!
हमारे निष्प्राण ज्योतिहीन जीवन को
ज्योतिर्मान बना दो।
हम आपके अनुस्रोतगामी मार्ग पर
आरूढ़ होकर, संयम यात्रा को
अबाधित रूप से संपन्न कर सके
ऐसी शक्ति दो, सामर्थ्य दो।
यही हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

- *मद (अहंकार), विषय, निद्रा तथा विकथा; ये पाँचों प्रमाद जीव को संसार में भटकाते हैं।*
- *पुण्य का साथ रहना कब तक है? तब तक ही, जब तक कि उनका उदय हो। पुण्य-दशा स्थायी नहीं होती।*
- *शास्त्रकारों ने अहंकार को आठ फनवाले भुजंग के समान बतलाया है।*



सूरज

■ साध्वी श्री सन्मतिजी

सूरज

तेजपुञ्ज दैदीप्यमान, सूरज श्रमण संघ के।
कृपा किरण पहुँची सब तक, बिना भेद भाव के।।
अमीर-गरीब छोटे-बड़े, मूढ हो या ज्ञानी।
सब समान थे श्री चरणों में, प्रभुता सब ने जानी।।
ज्ञानपुञ्ज तब ज्ञान रश्मियाँ, छू जाती गर हृदय को।
हट जाता अज्ञान तिमिर, पा जाये दिव्य आनंद को।।

चंद्र

सुखद शीतल हे सुधाकर! गाये कैसे तव यशगान।
पद स्पर्श से गौरवान्वित है, देखो सारा जहान।।
शांत सौम्य अमीदृष्टि में, सात्विक रस था झरता।
क्लान्त दान्त जन मानस का, परिताप दूर था करता।।
शान्त सौम्य आभा मंडल में, कोई भी क्यों ना आते।
भाव विभोर हो श्रीचरणों में, अनुपम आनंद पाते।।

सागर

समता सागर हे गुरुवर! अनुपम शांति के भण्डार।
सद्गुणी-निर्गुणी अबोध हो या ज्ञानी, देते उसे हार्दिक प्यार।।
सुख-दुःख हो या विपदा संपदा, सत्कार हो या अपमान।
नहीं क्षुब्ध होते मन में, नहीं फूलते मिला सन्मान।।
सागर में भी मावस-पूनम को, क्षोभ ज्वार आ जाता है।
पर चित्त आपका सदा सर्वदा, आनंद रस में नहाता था।।

गंगा

गंगाजल से भी पावन, निर्मल जीवन महान।
मिलती शांति सुखद सान्निध्य में, अद्वितीय थे तीरथधाम।।
नीर नदी का करता है, केवल तन निर्मल।
अमृतमय वाणी से तव, होता मन उज्ज्वल।।
पाप ताप से मलिन आतमा, शुद्ध होती पलभर में।
सच्चा आनंद मिलता था, पावन श्री चरणों में।।



सरोवर

मान सरोवर सम सुशोभित, श्रमण संघ है पावन।
राजहंस सम विचर रहे थे, परम श्रद्धेय मन भावन।।
विषय वारि अरु कषाय का, मन में नहीं लवलेश।
आत्मिक ज्ञान मोती का चारा, लेते थे सविशेष।।
क्षीर-नीर वत् न्यायी थे, नहीं पक्षपात मन में।
जो भी आते श्रीचरणों में, आनंद पाते क्षण में।।

कमल

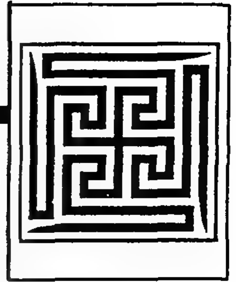
आत्मलक्ष्यी मेरे गुरुवर! जल कमलवत् जीवन।
निरासक्त निर्मोही फिर भी, सब जन के मन मोहन।।
तन रहता था कार्यरत पर, मन आत्मस्वरूप में लीन।
हमें मिलती सदा सुशिक्षा, रहो अंतर से न्यारे निशदिन।।
कर्मयोगी अरु धर्मयोगी का, सुमेल आप में पाते थे।
पदपंकज में आनंद रस पाकर, सहज नत हो जाते थे।।

सुमेरू

श्रमण संघ सुमेरू गुरुवर! परम अद्भुत योगी।
संयम धरा पर अडिग खडे थे, अतुलनीय थे त्यागी।।
जाने कितने तूफान थे आए, आया सुखद समीर।
बसंत-पतझर धूप-छांव भी, सहर्ष झेले वीर।।
कैसा भी क्यों ना समय आ जाता, रहते अकंप अडोल।
चरण कमल के शुभ दर्शन से, मिलता आनंद अनमोल।।

दीपक

मंगलमय दीपक! तेरी, महिमा किस विध गाऊँ।
सेवामय जीवन ज्योति पर, वार-वार बलि जाऊँ।।
तिल-तिल करके दीपक जलता, करता दूर अंधेरा।
गुरुदीप के स्नेह का हर कण, करे मन मंदिर में उजेरा।।
किया कुर्बान जीवन ज्योति को, धर्मोन्नति के हित।
आनंद युत उस आलोक की, महिमा शब्दातीत।।



उपवन

खिले जीवन उपवन में, अगणित सद्गुण सुमन।
सुशील सौंदर्य अरु सुयश सुरभि का अतुलनीय था मीलन।।
हृदय की सुकुमारता अरु, दिव्य आभा का मोहक रंग।
मन मधुकर भी भान भूलकर, रह जाता था दंग।।
नहीं समझ पाता था वह, लूं खुशबू किस सलौने सुमन की।
आनंद रस सदा मिलता, महिमा निराली उस चमन की।।

वटवृक्ष

वात्सल्यमय वटवृक्ष थे देखो, जिन शासन की शान।
स्नेहिल छाया में जो भी आए, बनता जीवन महान।।
निराशा से थके हारे, पथिक जीवन पथ के।
मिलता सहारा उन्हें यहाँ पर, जो जीवन संग्राम में थाके।।
ममता भरा वह सुखद साया, रहे सदा सर्वदा सिर पर।
आनंद ही आनंद मिलता, उन चरणों में निरंतर।।
मन मंदिर के भगवन्!, चरणों में शत-शत वंदन।
सकल जगत की वस्तु फीकी, करने तव चरणों का पूजन।।
सुशीलता की भीनी-भीनी, सुरभि से सुरभित।
स्नेह लपेटा हृदय पुष्प यह, श्री चरणों में अर्पित।।

आनन्द स्मृति

■ उपेन्द्रमुनि 'शास्त्री'

आनन्द ऋषिवर आनन्द दीजिए।
वन्दन हमारा स्वीकार कीजिए ।।धृ।।
अद्भुत महिमा तेरी, मैं कैसे गाऊँ
तेरी अनूठी सौरभ, मैं कैसे पाऊँ
दयालु कृपालु भगवन, अनुकम्पा कीजिए ।।१।।
प्यारा-प्यारा नाम तेरा प्यारा-प्यारा काम है
चरणों में जो भी आया सिद्ध हुआ काम है
संघ संरक्षक भगवन् सन्मति दीजिए ।।२।।
कृपा दृष्टि रखना अय मेरे भगवन्
उपेन्द्र मुनि करता रहेगा तेरा स्तवन,
तब गुण चिंतन ही सुखप्रद मानिए ।।३।।



तोड़ के पिंझरा चल दिया पंछी

■ डॉ. इन्दु वशिष्ट

श्रद्धांजलि

तोड़ के पिंजरा चल दिया पंछी
दूर उड़ा आकाश
अँखिया सबकी भई समन्दर
कोई न लौटे पास।

माटी तो माटी में मिल गयी
हंसा जाए अकेला
राग-रंग सब छूट गये रे
छूटा जग का मेला
दुख की धूप और सुख की छाया
कुछ न रहा अब साथ। तोड़ के पिंजरा...

इच्छा-अभिलाषा बिखरी यों
ज्यों राई के दाने
भटक-भटक जाए पागल मन
क्यों इन सबको पाने
इतना ऊपर उठ जाओ तुम
छूट जाए सब आस। तोड़ के पिंजरा...

बैर करो न कभी किसी से
प्रेम की बाँधो डोरी
जीवन छलना है छल लेगा
साँस बहुत है थोड़ी
अन्तर्मन क्यों विकल हुआ रे
निकल न पायी फांस। तोड़ के पिंजरा...

ज्ञान-कर्म का द्वार, हृदय में
सेवा-भाव जगाये
जग के भीतर संन्यासी को
परमारथ ही भाये
मन्दिर-मस्जिद-महल-झोंपडी
नहीं किसी की आस। तोड़ के पिंजरा...

दृढधर्मी ही सत्य-अहिंसा की
राहें दिखलाए
हृदय-वेदना-ज्वाल जलाकर
कंचन करता जाए
ऋषि आनन्द की प्रेम की वाणी
भरती है विश्वास। तोड़ के पिंजरा...

तुलसी सूरा और कबीरा
पावन कीन्ही चादर
झिर-झिर प्रेम-रंग-रस भीगे
बरसे ऐसे बादल
बाहर भीतर राम लगन लगी
हरियाई रे प्यास। तोड़ के पिंजरा...

सांसों की डोरी में पिरोये
महावीर के मनके
सत्य-अहिंसा-दया-धर्म ही
साथ रहेंगे सबके
जैसे मुनि आनन्द ऋषि के
यश का है इतिहास। तोड़ के पिंजरा...

■ ■

श्रद्धांजलि

■ आचार्य प्रभाकर मिश्र

आचार्य सम्राट् परमतपस्वी श्रीमत् श्रमण संघ मुनिर्मनस्वी।
अध्यात्मशिक्षार्थसमर्पितोऽसौ स देवलोके विदधे प्रयाणम्।
आजीवनं धर्मपरायणोऽभूत्, जिनेन्द्रसेवानिरतः स्वराष्ट्रे।
विश्वात्मरूपञ्च विभूतिवर्यं तं विश्वधर्मायतनं प्रणौति।।
आनंन्दरूपो विदुषांवरेण्यः, आचार्य आनन्दऋषिः सुविज्ञः।
श्री चन्द्रस्वामी सहितैर्महात्ममिः विशेषश्रद्धासुमनः समर्प्यते।।
जगद्वन्द्यासंसद् ऋषिकुलसुसम्पत् परिवता।
सतां धर्मे लग्ना शुभगुणनिमग्ना मुनिमता।
सदा विद्याभ्यासे परहितविलासे विलसिता।
ऋषेर्निर्वाणेऽद्य नमति श्री आनन्दविनता।।
सुब्रह्मण्यावतारौ च सांसदौ सचतुर्भुजौ।
सुशीलविश्वानन्दौ द्वौ महात्मानौ जगत् श्रुतौ
जगदाचार्यश्चन्द्रस्वामी युगाचार्यः प्रभाकरः
साबे मोरेश्वरश्शैवः बाबूभाई सुदौलतः
गिरवारी रामकृष्णत्यागी धर्मसांसदाः
मामा नाहटा लोकाः रोजिनविक्रमादयः
जैन धर्ममहात्मानः सन्तस्सेर्व सनातनाः
ददते श्रद्धाञ्जलिं पुण्यां आनन्दाय महर्षये।

- *जब तक पुण्य मनुष्य के पास होते हैं तब तक सभी उससे अपनत्व दिखाते हैं और उसका साथ देते हैं। किन्तु पुण्य-बल समाप्त होते ही कोई बात नहीं पूछता और कोई भी सहायक नहीं बनता।*
- *जब देवताओं के पुण्य क्षीण हो जाते हैं तो उनको भी अपने समस्त सुखों का त्याग करके मृत्युलोक में आना पड़ता है।*
- *हे गुणज्ञ बन्धु ! तुम पांचों प्रमादों का त्याग करो और धर्म का आराधन करते रहो। इससे तुम्हारी आत्मा पाप और पुण्य, दोनों से ऊपर उठ जाएगी।*



मौत को लाज न आई

■ श्री गणेशमुनिजी

तूफ़ा आया जोर से, डोल रही नाव।
मिट्टी वो ही खिसकती, ठहरे जिस पर पांव।
ठहरे जिस पर पांव, यह तो नहीं जाना था।
जिनवाणी के गीत, अभी तो तुमको गाना था।
गाज गिरी कैसे यहाँ, पहले नहीं बताया।
'मुनि गणेश' औ चक पुनः यहाँ तूफ़ा आया।।

समाचार सुनकर लगा, टूटा हो आकाश।
सहज हुआ मुझको नहीं, पहले तो विश्वास।
पहले तो विश्वास, नैन में पानी भर आया।
कुछ भी समझ नहीं पड़ती, हे काल तेरी माया।
'मुनिगणेश' आचार्य देव के, जन मन पर उपकार।
हवा उड़ा क्यों ला रही, आज यह समाचार।।

वीरानी ओढ़े खड़ी, अहमद नगरी आज।
श्रमण संघ का छिन गया, आज अचानक ताज।
आज अचानक ताज, मौत को लाज न आई।
अन्दर बाहर सन्नाटा, देता मुझे दिखाई।
'मुनिगणेश' श्रद्धाभावों से, भर नयनों में पानी।
आचार्य देव तुम चले गये, दे हमको वीरानी।।

■ ■



ऐसे छोड़ चले जाओगे, इसका हमको ज्ञान नहीं था

■ प्रवर्तक महेन्द्रमुनि 'कमल'

इक दिन सबको ही जाना है यह तो हमको भी मालूम है।
पर, ऐसे छोड़ चले जाओगे इसका हमको ज्ञान नहीं था।।

जब जग की पीड़ा को जाना
आंसू आ पलकों में ठहरे।
समाचार सुनने से पहले
कर्ण हुए तुम क्यों ना बहरें।।

शब्दों ने भी सरगम छेड़ी लेकिन वह तो गान नहीं था।
ऐसे छोड़ चले जाओगे इसका हमको ज्ञान नहीं था।।

दशमी का दिन अनहोनी को
होनी करके चला गया है।
दश दिशा दोनों ही बदली
जीवन जैसे छला गया है।।

कैसे गया उजाला औचक वह कोई मेहमान नहीं था।
ऐसे छोड़ चले जाओगे इसका हमको ज्ञान नहीं था।।

सिसक रहा है अम्बर सारा
अब खिसक रहा है जलथल भी।
आलम आज उदासी का है
सकुचाया है हर पल भी।।

अरे काल निष्ठुर तू लेकिन जग से तो अंजान नहीं था।
ऐसे छोड़ चले जाओगे, इसका हमको ज्ञान नहीं था।।

ज्ञान क्रिया के, नव पुराण थे
तुम थे अद्भुत संगम।
बिना तुम्हारे आज रह गए
ठगे ठगे से हा ! हम।।"

देव! तुम्हारे देह-विलय से, कोन भला हैरान नहीं था।
ऐसे छोड़ चले जाओगे इसका हमको ज्ञान नहीं था।।"

■ ■



श्रमण संघ की ढाल

■ कवि श्री विजय मुनि

(१)

जिनका जीवन सदा समता की रस धारा रहा ।
जिनका जीवन सदा साधना का द्वार रहा ।।
जिनने जीना सीखा, सिखाया सभी को जीना ।
जो जीवन की अंतिम श्वासों तक संघ का आधार रहा ।।

(२)

आनंद आनंद ही था आनंद की कोई शानी नहीं ।
विरल विभूति विनयी वो अभिमानी नहीं ।।
इस शताब्दी की ज्योतिर्धर जीवंत मशाल ।
उन जैसी हमने कभी कोई जानी नहीं ।।

(३)

संयम-संस्कार-शिक्षा क्षेत्र के वे दीप थे ।
साहित्य विद्या के प्रसारक पावन सीप थे ।।
जैन ही नहीं जैनेतर के आनंद प्राण थे ।
क्योंकि-उनसे कोई दूर नहीं वे सभी के समीप थे ।।

(४)

एकता के प्राण दिवाकर थे तो आनंद ढ़ाल थे ।
आचार्य आनंद सागर से गंभीर थे विशाल थे ।।
श्रमण संघ के सफल संरक्षक धर्म पथ उन्नायक
जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र आनंद ही मिशाल थे ।।

(५)

आचार्य भगवन् आनंद बाबा की शिक्षाएँ जीवन में जोड़ना।
समता की सुनहरी पगड़ंडी पर अपना कदम मोडना।।
जीवन की क्षण भंगुरता को जानकर सभी गुरु भक्तों ।
एकता की भव्य दीवार को मत तोड़ना ।।

(६)

संत सती को जिनने सदा अध्ययन कराया था ।
श्रावक-श्राविकाओं को संगटन का पाठ पढ़ाया था।।
स्वाध्याय संघ धार्मिक पाठशालाएँ अनेकों खोलीं।
धर्मोद्यान को अपने शासन में आनंद ने खिलाया था।।

■ ■

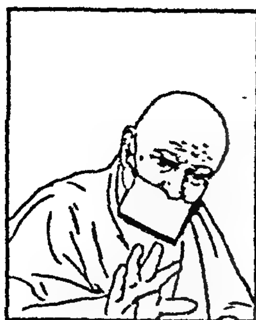


श्रद्धाञ्जलि

■ सुभाष मुनि 'सुमन'

२८ मार्च १९९२ का वह दिन
बड़ा ही हृदय विदारक था।
जिसने सुना
वह, अवाक्‌सा रह गया।
ठगा सा रह गया।
क्योंकि,
महामहिम जन मन आस्था के केन्द्र
भारत के आध्यात्मिक सपूत
आचार्य भगवान् श्री आनन्दऋषिजी म. का
आकस्मिक स्वर्गारोहण
जन आस्था को हिला देने वाला था
उनका जीवन
हिमशिखर सा उन्नत समुन्नत था।
रत्नाकर सा गम्भीर
धरणी सा धैर्यवान्
शशांक सा शीतल
सूर्य सा तेजस्वी
सरलता, सौम्यता और ऋतुजा का प्रतीक था।
ज्ञान, दर्शन, चारित्र का संगम स्थल था
आराधना और साधना का मंगल प्रदीप था।
मधु सा मीठास
जीवन का प्रत्येक पल क्रियाशील था।
'पर दुःख द्रवई सो संत पुनीता' के
भावों को जिन्होंने जीवन में साकार किया था।
जिनका जीवन सरिता सा निर्मल था
उन महामानव, महा मनीषी, महान् संत
आचार्य सम्राट् के पावन चरणों में
सभक्ति, सश्रद्धा और सविनय श्रद्धाञ्जली।

■ ■



आरती गुरुवर आनन्द की

■ विनोदमुनिजी

ॐ जय आनन्द गुरुवर स्वामी जय आनन्द गुरुवर।
सरल शान्त सौभागी समता योगीश्वर।।
देवीचन्द पिता तव माता हुलसाबाई।
ग्राम चिचोंडी जन्मे खुशियां रंग लाई।।१।।
भाग्य योग से पाये रतन गुरु जैसे।
बन गये ऋषिवर आनन्द, गुरुवर तुम ऐसे।।२।।
समयं मा पमायए, मूल मंत्र धारा।
संयम की ऊंचाई, का पथ स्वीकारा।।३।।
संघ-शिरोमणि राष्ट्र-संत की, पाई गौरवता।
क्षमा शान्त मुद्रा थी, अद्भुत धीरजता।।४।।
वीतराग शासन के, दिव्य सितारे हो।
जन-जन की श्रद्धा के, एक सहारे हो।।५।।
मानवता की दिव्य विभूति, सत्य शीलधारी।
निर्मल आतम ज्योति चरणन बलिहारी।।६।।
पुण्यवानी का जोर जबर था देखा आँखों ने।
शीश झुकाए चरणों में, तव लाखों ने।।७।।
भाव भक्ति से ज्योतिर्विन्दु गुरुगुणगान करे।
विनोदमुनि वह अपना, पुण्य का कोश भरे।।८।।

■ ■

- *पाँच प्रमादों का परित्याग करके धर्म-रूपी जहाज का आश्रय लेकर तुम भवोदधि को पार कर लोगे।*
- *धर्म को ग्रहण करना, अर्थात् जीवन को धर्ममय बनाना ही मनुष्य का प्रथम और अनिवार्य कर्त्तव्य है।*
- *भोगासक्त व्यक्ति को इन्द्रिय-सुख सच्चे सुख ही प्रतीत होते है।*



अविचल है आनन्दऋषि

■ श्री सुकनमलजी म.

सोरठा

वन्दन सौ सौ बार, आनंद गणिवर राज को।
श्रमण संघ सरदार, आणंद ऋषिवर खो गया। ॥१॥

दोहा

कुरड़ाया में आवतां, पड़ी कान में बात ।
आनंद दर्शन दोहिता, सुन अचरज परभात ॥२॥
विक्रम संवत अडचास में, दशमी वद शनि चेत ।
चढ़ विमान स्वर्गों गया, छोड़ जगत सब हेत ॥३॥
काल हरानी ले गयं श्रमण संघ रो नाथ ।
संत शिरोमणि सद्‌गुणी, थे अनाथ के नाथ ॥४॥

दोहा

कर संथारो पौंच ग्या, वैकुण्ठा में राज ।
अव जोया लाध कठै, आणंदऋषि सरताज ॥७॥

सोरठा

मात दिपायो दूध, हुलसानंद आनंद जी ।
आतम कीनी सूध, देवीचन्द रो लाड़लो ॥८॥

दोहा

श्रमण संघ सेवा सजी, दृढ़ एकता धार ।
रत्न गुरु के शिष्यरत्न, धन आणंद अवतार ॥९॥
शान्त दान्त गम्भीरता, वक्ता शद्ध अमोल ।
धीर वीर रवितेज तूँ, आणंदव्रत अड़ोल ॥१०॥
सरल सादगी सौम्यता, सकल संघ का रूप ।
मन मोहक जन लाड़लो, आणंद रूप अनूप ॥११॥
जग वल्लभ आणंद हुआ, श्रमण संघ सम्राट् ।
ऐसा हुआ न होव सी, गजब दीपायो पाट ॥१२॥
प्रथम दर्शन आपका, ब्यावर शहर प्रसिद्ध।
आणंद मिश्री गुरुमिले, सुकन कामना सिद्ध ॥१३॥
संयम समय पर आपके, दर्शन किये सुखदाय ।
वाणी मीठ़ी राजरी, बस रहि जीवन माँय ॥१४॥



पूना सम्मेलन हुआ, था आनन्द का राज ।
उपाचार्य युवराज से, सजा श्रमण समाज ।।१५।।
कर दर्शन दक्षिण गये, वरद हस्त था साथ ।
पग-पग पर आनंद लहे, मांगलिक ज्योति माघ ।।१६।।
अंतिम आशीर्वाद का, हरख सहित सिर हाथ ।
मास पूर्व चौदह सुकन, अहमदनगर सुख साथ ।।१७।।
साथी कुन्दन झुर रहे, आदर्श भये उदास ।
हिय प्रवीण व्याकुल हुआ, महेंद्र हुआ निरास ।।१८।।
पदम प्रशान्त विशाल ऋषि, सभी भये दिलगीर ।
प्रमोद प्रीति महासती, संत सती चख नीर ।।१९।।
अविचल है आनंद ऋषि, युग युग करसी याद ।
सुकन स्मरण मात्र से मिटे कोटि अपराध ।।२०।।
श्रद्धांजलि का पुष्प सर, विगत 'सुकन' कर भेट ।
आत्म तब आनंद लये, स्वर्ग सभा में बैट ।।२१।।
संघ सदा फूले फले, लो आणंद मन लहर ।
मिश्री सुकन कृपा सदा, आणंद भगवन्त महर ।।२२।।

प्रेषक : **प्रकाशचंद्र बोहरा**



फूल महकता टूट गया

■ श्री जिनेन्द्रमुनि 'काव्यतीर्थ'

भाग्ययोग से पुण्य धरा पर, धर्म धुरन्धर आते हैं।
आत्म-साधना द्वारा जग में, नाम अमर कर जाते हैं।।
रत्नऋषि आचार्य प्रवर का, शिष्य रत्न आनन्द महान।
राष्ट्र सन्त आचार्यदेव के, घर-घर गूंजे मंगल गान।।
देवीचन्दजी सेठ, सेठाणी; हुलसाबाई के जाये।
महाराष्ट्र चिचोंड़ी ग्राम में, जन्मे मंगल गीत सुनाये।।
अप्रमत्त भारण्ड पक्षी सम, जल कमलवत् रहते थे।
आनेवाले सकल परीषह, समभावों से सहते थे।।
संस्कृत प्राकृत हिन्दी ऊर्दू, गुजराती अंग्रेजी ज्ञान।
और मराठी भाषा द्वारा, खूब सुनाया सम्यग्ज्ञान।।
श्रमण संघ का प्रथम पट्टधर, आत्मारामजी आला था।
उसी गादी पर बैठ पिलाया, जिनवाणी का प्याला था।।
महाराष्ट्र गुजरात मालवा, हरियाणा यह राजस्थान।
यू. पी. औ' पंजाब प्रांत में, फैलाया जिन धर्म महान।।
जैन और जैनेतर जनता, दौड़-दौड़ कर आती थी।
आनन्द बाबा आनन्द भगवन, कहते नहीं अघाती थी।।
जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र थे, भक्त हृदय भगवान थे।
जिनशासन के उजियारे थे, श्रमण संघ की शान थे।।
हरी रहेगी खेती कैसे, टूट जाय अरहट की माल।
सैनिक विजयी कैसे होगा, छूट जाय यदि कर की ढाल।
श्रमण संघ उद्यान मनोहर, फूल महकता टूट गया।
जिन शासन का दर्पण आनन्द, अरे! अचानक फूट गया।।
वर्ष बयाणु उम्र प्राप्त की, उगण्यासी संयम पाला।
वर्ष अठाईस आचार्य पद पा, किया धर्म का उजियाला।।
आनन्द के दर्शन से आनन्द, आनन्द ही आनन्द होता।
अस्त हुआ समता का सूरज, भक्त हृदय हरदम रोता।।
कुन्दन जैसे सन्त निराले, प्रिय आदर्श प्रवीण गुणी।
पदम प्रशांत विशाल आदि की, बात आपने नहीं सुणी।।



उज्जवल किरणें मुक्ति प्रीति है, धर्म प्रमोद बढ़ाती हैं।
आनन्द के गुलशन में निशदिन, नई बहारें लाती हैं।।
अहमदनगरी धन्य हो गई, जहाँ आनन्द दरबार लगा।
सेवा भक्ति धर्म ध्यान से, जन-जन का सौभाग्य जगा।।
श्रमण संघ के उपाचार्यश्री बने संघ के अब आचार्य।
सहयोगी विद्वान मनीषी, डॉक्टर शिवमुनिजी युवाचार्य।।
आनन्द ही आनन्द छायेगा, आनन्द का वरदान मिला।
आनन्द के-कारण ही जग में, आनन्द का उद्यान खिला।।
किये अनेकों बार आपके दर्शन-मांगलिक सुखकारी।
हित शिक्षा का अमृत दे, उपकार किया मुझ पर भारी।।
साधक सर्जक सन्त रत्न हैं, शास्त्री गुरुवर मुनि गणेश।
आचार्य प्रवर को अर्पित करते, श्रद्धाञ्जलि के भाव विशेष।।
हे गुण सागर! परम दयालु 'मुनि जिनेन्द्र' गुण गाता है।
दिव्य गुणों का सुमिरण करके, श्रद्धा सुमन चढ़ाता है।।

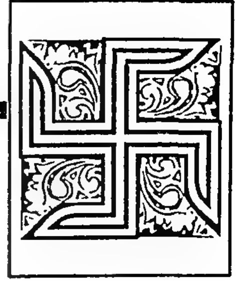
■ ■

तेरे आँचल के तले

■ साध्वी डॉ. दिव्यप्रभा

हे श्रद्धे! भावों के बंधन में बाँधकर,
भेज रही हूं उन चरण में सांधकर।
जो कलियुग का भगवान कहलाया,
जो जन जन के मन में था समाया
पहुंच जाना तू मेरा संदेश लेकर,
फिर लौट आना कोई आदेश लेकर।
उनका आदेश वरदान मेरा,
मानूंगी उसे अहसान तेरा
हे श्रद्धे! उनको इतना कहना,
अपने दिल से ना ठुकराना।
आनंद! मेरे आनंद देना,
वंदन मेरे ओ आनंद! लेना!
पता नहीं क्यों दूर भेजी,
इतना क्या मजबूर हैजी।
अब भी इतना रहम करना,
अपना आंचल हम पर रखना।
तेरी नजर ही था आगास मेरा,
जीवन गति का एहसास मेरा।
ओ शासन का सिरताज मेरा,
सुनलो प्रभुजी आवाज मेरा।
मानलो इतनी सौगन्ध मेरी,
हर सांसों में सुगन्ध तेरी।
चले गये निष्ठुर बन के भले तुम,
हम तो जियेंगे छाया तले तुम
दिव्य दामन है तेरा चमन का मेरा,
उज्ज्वल मुक्ति का यह उपवन तेरा
अब तू ज्यादा परीक्षा न करना,
इस उपवन की रक्षा करना।

■ ■



भावांजलि

■ डॉ. प्रमोदकंवरजी म.

तर्ज : महावीर प्रभु

अन्तर्व्यथा : गुरुदेवा मुझे दर्शन की, मन में रह गई रे।
मन में रह गई रे के, पल में दूरी हो गई रे।।...गुरु
मैंने सोचा था बनारस पढकर, गुरु चरणों में जाऊं।
आशीर्वाद का अमृत लेकर, सत्य धर्म फैलाऊं।।...गुरु
काल चक्र का पाशा पल्टा, मृत्यु आंधी आई।
''ब्यावरा''से दूर गुरुवर, ''नई दुनियाँ'' (पेपर) मैं पाई।।...गुरु
महाराष्ट्र नहीं राष्ट्र का पुष्प, आज गया मुर्झाई।
मार्च अट्ठाईस बाणूं की खबरें, झंझावात ले आई।।...गुरु
अब दर्शन कब होंगे देवा, मैं अभागिन भारी।
सब कुछ पाकर भी नहीं पाया, जनम जनम आभारी।।...गुरु
व्यक्तित्व : संवत् उन्नीस सौ सत्तावन एकम, श्रावण सुदी जब आया।
एवं कृतित्त्व : शुक्रवार दिनांक सत्ताइस, देवी-हुलासा जाया।।...गुरु
ज्ञानी ध्यानी 'रत्नऋषि'ने, आत्मबोध कराया।
संवत् उन्नीस सौ सत्तर नवमी, अगहन में संयम पाया।।...गुरु
विक्रम संवत् दो हजार फागुन, सुदी ग्यारस तिथि है आई।
दिनांक तेरह शनिवार को, आचार्य पदवी है पाई।।...गुरु
शहर पूना दो हजार इकतीस में, अमृत महोत्सव लाया।
माघ दूज को दिव्य विभूति, राष्ट्र सन्त कहलाया।।...गुरु
निश्च्छल निष्काम निरामय, निराकुल आँखें देखीं।
अनन्त करुणा धारा जिसमें, बार बार मैं पेखी।।...गुरु
सरल सहज समता के धारी, सागरवर गंभीरा।
कल्पवृक्ष सम इच्छा पूरे, निर्मल नीर समीरा।।...गुरु
शान्तदान्त और हितमित भाषी, सच्चिदानन्द कहाया।
ज्ञान की पूजा नित प्रति करते, दिव्यानन्द समाया।।...गुरु
संस्कृत प्राकृत हिन्दी उर्दू, गुजराती के ज्ञाता।

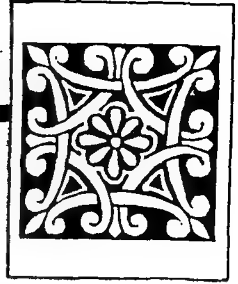


पंजाबी मालवी इंग्लिश फारशी, मराठी के विज्ञाता।।...गुरु
पद्म पालखी पर्वत डमरू, स्वस्तिक चिन्ह है पाया।
उर्ध्वरेख ध्वज अंकुश मन्दिर, त्रिशूल की है छाया।।...गुरु
श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर, जन जन के दुःख हर्ता।
अजर अमर अखिलेश बनें गुरु, मिथ्यातम के हर्ता।।...गुरु
श्रद्धांजलि बनाम अश्र्वांजलि, चरण कमल में चढाऊं।
'प्रमोद पुष्प' खिले जीवन का, शाश्वत सुख को चाहूं।।...गुरु



पुण्य पुष्पाञ्जलि
दिव्य दोहा द्वादशी
■ साध्वी रविजी

प्रवर 'पूज्य आनन्द ऋषि', गुण के थे भंडार।
चरण कमल में वन्दना, मेरी बार हज़ार।।१।।
उनका स्वर्ग सिधारना, दिल को रहा कचोट।
जगत जनों के हृदय पर, लगी सख्त है चोट।।२।।
श्रमण संघ के ही नहीं, सब के थे आधार।
याद उन्हें है कर रहा, सारा ही संसार।।३।।
उनकी संयम साधना, उनका गेहरा ज्ञान।
आता है जब याद, मन-होता अति हैरान।।४।।
आपे जब पंजाब थे, पाये पावन दर्श।
नहीं समाता हृदय में, तब का अब तक हर्ष।।५।।
शांत और गम्भीर न, उन-सा होगा सन्त।
उनके गुण का ज्ञान का, आ सकता न अन्त।।६।।
श्रमण संघ उन्नत हुआ। पापावन सहयोग।
भारी पुण्य प्रताप को, कैसे भूले लोग।।७।।
बहुत सुधारे आपने, जिसके बिगड़े काम।
ऋणी रहेगा आपका, सारा जैन समाज।।८।।
संयम पालन आपने, निर्मल किया कमाल।
सचमुच कायम कर गये, अद्‌भुत एक मिसाल।।९।।
आयु बानवें वर्ष की, विरला ही तो पाय।
नहीं किसी भी अन्य की, देखी आप सिवाय।।१०।।
हेम कुंवर गुरुणी गुणी, दीर्घ तपस्विन घोर।
शीश झुकाती चरण में दोनों ही कर जोड़।।११।।
लघु श्रमणी 'रवि रश्मि'के, शब्द सुमन ये चार।
सुरपुरवासी पूज्यवर! कर लेना स्वीकार।।१२।।



ओ अमर पथिक

■ साध्वी डॉ. मुक्तिप्रभाजी म.

हे जगत्राता विश्व विधाता,
तू ने सबको प्यार किया।
तेरे चरणों की धूलिने,
इस जगको आबाद किया।

हे ज्योति पुंज! अखिलेश त्राता,
जन मन का जीवन स्रष्टा।
तेरी प्रभात से सघन तमस्
क्षणभर में होता उजियाला।

तू ने जगती का सोया तकदीर,
पलको में जगाया बनकर वीर।
तेरी मीठी नजरों की मुस्कानों में,
बन गया वहाँ, वही महावीर।

तू उन अंधों की आँखें थीं,
जो ठोकर खाता था जग में।
तू उन अबला का बेली था,
जो रोता था पछताता था।

हे अमर पथिक तू चला गया,
इस सृष्टि का मौन बिखर गया।
श्रमण संघ की माला को,
न जाने कौन बिखेर गया।

तू सब का था सब तेरे थे,
अंधेरी रात के उजियाले थे।
तुम असीम को समझाते थे,
जो सीमा में घेरे थे।
चमके जिनशासन संगठन से,
ये सपने तेरे थे।

क्यों दूर दूर तक भेज दिया,
महावीर की तरह मुझे।
थोडी भी तो रहम करते,
ओ भाग्य विधाता वंदन तुझे।

जन्म शताब्दी वर्ष का,
देना चाहती थी अभिनंदन तुझे,
अपने आंचल के साये में,
रखना ओ देवीनंदन मुझे।

तू इस गुलशन का मालिक है,
तेरे साये में फूल खिले सारे।
रहे सदा उजियाला जिससे,
चमकते रहे सब मुक्ति सितारे।

तेरे दामन को हमने नहीं छोडा,
तू है ऐसा अहसास मुझे।
तेरी आज्ञा में नत मस्तक हूं,
पालन का देती हूं विश्वास तुझे।

तूं छोड चला क्यों इस जग को,
क्या भूल हुयी है हम सब की।
भूल की माफी दे दो हमें,
ये आँखें तरस रही कब की।

मेरी झोली में इतना भर दो,
मौन खोल इतना कह दो।
प्रभु! साथ हमें देते रहना,
जनम हमारे मिटाते रहना।

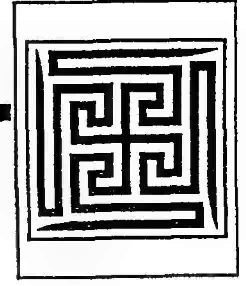




जन जन के भगवान

■ साध्वी डॉ. अनुपमाजी

भारत की शस्य श्यामला भूमि पर
आचार्य प्रवर पधारे थे।
बेखबर सोते हुए को जगाने,
फरिश्ता आये थे।
पूज्यवर!
तेरे आने से चमके थे, गगन में कई सितारे,
तेरे सीने से निकल रही थी, दीन दुःखी की पुकारें।
तुम दुःखी के आश्वासन और सुखी के वरदान थे,
तुम संत आचारज और जन जन के भगवान थे।
तुम माता हुलसा पिता देवीचंद और गुरु रतनऋषि की शान थे,
जिन शासन संघ श्रमण श्रमणी के तुम प्राण थे।
प्रत्येक दिल की धडकनों में, धडकते हुए अरमान थे,
आनंद प्रवाह में दीप नौका सम, हम सब की मुस्कान थे।
मैं तो सपने देखती थी, तेरी जन्म शताब्दी के,
पर तूने शास्त्र सब पढ़ा दिये, जन्म-मृत्यु आबादी के
मेरी श्रद्धा की अंजलि का प्रभु! स्वीकार करो,
तुम मेरे हो मैं तेरी हूं मेरी चेतना का परिष्कार करो।
मुस्ति माला का मोती हूं, तेरी यादो में खोती हूं,
तेरे अनुपम आदेशों में, जीवन मेरा संजोती हूं।



श्रद्धाञ्जलि

■ साध्वी इन्दूप्रभा 'प्रभाकर'

निपीय सद्गुणान नित्यम्,
यो जातो ऋषिनामभाक् ।
सदैवात्मरतिं धृत्वा,
आनन्दाम्बुधि पारगः ॥१॥

समुद्रमिव गाम्भीर्यम्
यो दधान निरन्तरम् ।
आचार्यपदमारूह्यं,
जिनधर्म प्रवर्द्धकः ॥२॥

मातुस्तु कुक्षी पूता,
पद-न्यासाद् मही तथा ।
धार्मिकाः वचनाद् पूताः
श्रमणस्तु निदेशनात् ॥३॥

निशम्य आनन्दऋषिं दिवंगतं,
विषादमग्नं खलु मानसं मे ।
विधेर्विधानं खलु क्रूरता परं,
न कोऽपि वारयितुं हि सक्षमः ॥४॥
तव प्रसूत्या जननी प्रपूता,
धरा सुधन्या तपसा सदा त्वया ।
श्रद्धाञ्जलिर्मेऽस्तु इयमहर्निशं,
यशः शरीरेण सदा विभातु ॥५॥

■ ■

अलविदा अलविदा

■ रंजना बोरा

जो हाथ करता था
बारिश-ए-आशिश सदा॥
उसी हाथ ने अचानक किया
हमें अलविदा अलविदा॥
टूट गयी दिल-ए-सितार
रूठ गया संगीत सरगम॥
कैसी आँधी ये आयी?
कैसी बिजली ये चमकी॥
आकर धमाकूसे वो गीरी
खाक हो गयी डाली-डाली॥
एक कसकसी उठी मन में
सिवा डाली के अब कैसे जीये॥
बिखर गये सारे नवरत्न
मुरझा गये गुल-ए-गुलाब॥
बगियनमें न रहा बागवान
उज़ड गया आनंद गुलशन॥
दिलमें उठा गम्-ए-बवंडर
बह रहा है अश्क समंदर॥
महसूस हो रहा है सूना-सूनापन
क्या लिखे उदास मन?
छोड गये आनंद भगवन॥

■ ■



कालजयी गुरुदेव कहाँ? ढूंढ रहे हैं हम यहाँ।।

■ साध्वी प्रियदर्शना 'प्रियदा'

कहाँ छूप गया आज दिवाकर,
सहस्र रश्मियों को बिखेर यहाँ।
मन मंदिर में मुस्कुराता है तू -
ढूंढने जाएं अन्यत्र कहाँ?

समय ठिठककर पूछ रहा है,
कालजयी महासंत कहाँ?
मन - वीणा बेसुर हो गई
आँखें बरसी हजार यहाँ।।

कैसे माने मन ये पगला
आप मध्य हमारे रहे नहीं।
हम अब माने बैठे हैं -
आप बसे हो यहीं कहीं।।

आप नहीं हो दूर हमसे,
बसे श्वासों की सरगम में।
नहीं देख पा रहे अभी आपको
यही कमी हमारे ज्ञान में।।

हैदराबाद महानगरी में गुरुवर ने,
दीक्षा पाठ पढ़ाया था।
मंगलमय शुभाशीर्वचनों से,
पंथ मेरा सजाया था।।

जीवन में नहीं भुला पाऊँगी,
उपकार आपका श्रद्धेय गुरुवर।
अब भी कानों में गूँज रहा है -
मधुर मधुर हितकारी स्वर।।

आनंदमय विशाल - रश्मियाँ
सन्मार्ग सदा दिखलाएगी।
गुरुदेव आपकी मीठी बातें
दिल से न भुलाई जाएगी।।

आशीर्वचनों का गुरुवर,
संबल रहे नित ध्यान रहे।
मार्गानुसारी बन मंजिल पाऊँ -
सुवचनों का आधार रहे।।

जो आता है, वह जाता है,
फूल खिलता वही मुरझाता है -
खिलने पर हंसता है मानव -
मुरझाने पर आँसू बहाता है।।

आत्मज्ञान की कमी हमेशा -
मन को पीड़ा देती है।
मोहमूढ़ता पराध्याय में -
मन को बेबस ले जाती है।।

समझ गए वो ज्ञानी जन,
ना समझे वे मूढ़ मति।
समझ गए तो सुधरे जीवन -
पाएं फिर वे परम गति।।

श्रमण - संघ तव कृपा - किरण से
उन्नत समुन्नत बना रहे।
आचार्य श्री देवेन्द्र के शासन में -
शासन - उपवन महकता रहे।।

■ ■



स्व. आचार्य सम्राट १००८ आनन्दऋषिजी म. सा.

■ चंदनमल बनवट

तुम विश्ववेदना ऊर्जाधर, विश्वंभर जैन दिवाकर थे,
इस दिशा भ्रमित मानवता के, पथदर्शक हो करुणाकर थे।
बचपन में आपने तपपूर्वक, वैराग्यभाव से दीक्षा ली,
युग ऋषि चरण में नम्र नमन, तुम ऋतंभरा प्रज्ञाधर हो।
आगमबत्तीसी हेतु "अमोलक" गुरुने अथक साधना की,
हैद्राबाद में स्थिर होकर, आगमबत्तीसी रच डाली।
ज्वाला प्रसाद श्रेष्ठी महान, उनको सहयोग यशस्वी था।
जनमानस में संव्याप्त भ्रांति, युग क्रांति सदा हिंसक होती,
तुम पूर्ण अहिंसक रक्तहीन, आदर्श क्रान्ति हस्ताक्षर थे।
तुमने मौलिक व आध्यात्मिक, वादों का मिलन कराया है,
सम्पूर्ण अहिंसक और विलक्षण सौम्य क्रान्ति बीजाक्षर थे।
बाह्यांतर शोधित आत्मा की, रखी तुमने आधार शिला।
लाखों भक्तों के मातु, पिता प्रिय बंधु सखा ममता- स्वर थे।
तन मन सबही था "अहमदनगर", वाणी पे विराजित सरस्वती,
जीवन को बनाया कुंदन सा अनुपम अमृत वीणास्वर थे।
इस श्रमण संघ की पुष्टिहित तुम, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर थे,
देखी अनुशासन हीन वृत्ति, उस हेतु आप दग्धाधर थे।
"शिर्डी" में साईबाबा थे। अहमदनगर में "आनंदबाबा"।
यह "हरिद्वार" है जैनों का, स्थानकवासी का है "काबा"।
यहाँ चरणस्पर्श हित प्रतिदिन। भारत का जन जन था आता।
जो आता दर्शन को उसका दुख कष्ट सभी था मिट जाता।
लाखों जैनी प्रातः सायं जय आनंद आनंद था गाता,
आचार्य वंदना में श्रावक, क्षमा भावना को भरता,
तुम हिमगिरी के उत्तुंग शिखर, तुम सागर से भी थे गहरे।
"चंदन" कहता हो गए अमर, तब कीर्ति ध्वजा जग में फहरे।। ■ ■



श्रद्धा सुमन

■ मूलचंद बेद

धन्य धन्य है आचार्य प्रभु को, किया महाप्रयाण,
अगणित वंदन बारंबार
आचार्य देव थे महाप्रतापी, महामहिम गुणवान ।
तेरह वर्ष में दीक्षा लेकर किया परम कल्याण
।।अगणित ।।

श्रमण संघ को खूब संभाला, किया खूब उपकार।
जन-मन में प्रभु श्रद्धा जगाई, धन्य धन्य प्रभु आप
।। अगणित ।।

खूब साधना प्रभु आपकी, नहीं कोई संत नजर में आता ।
आप कृपा से खूब बनेंगे, श्रमण संघ की शान
।।अगणित ।।

चैत वदी दशमी दिन आया, प्रभु आपके मन भाया।
अंत समय में कर संथारा, प्रभू पहुँचे निज धाम
।।अगणित ।।

प्रभु आप तो पाये परमपद, हमको कर गये बेसहारा।
अब हमारी कौन सुध ले, कैसे हो कल्याण
।।अगणित ।।

मूलचंद प्रभु शरण चाहता, भवसागर से पार लगाना।
प्रभू कृपा ऐसी हो हमपर, शक्ति देवो अपार
।।अगणित ।।

■ ■



देकर के स्नेह अपार

■ सौ. चंचलाबाई बलदोटा

तर्ज - महलों का राजा मिला...

करके धर्म का प्रचार, आनंद गुरु छोड़ गए
दे करके स्नेह अपार, के आनंद गुरु छोड़ गए।।धृ।।

नगर शहर में हर्ष था भारी, अब तो रो रही जनता सारी
लगी आंखों में असूवन की धार, के आनंद गुरु छोड़ गए।।१।।

अबलाओं को सबला बनाते,सब दुःखियों का दुःख मिटाते
अब कौन सुनेगा पुकार, के आनंद गुरु छोड़ गए।।२।।

जाना ही है, रुकना नहीं है, यह दुनियां तो सपना ही है
गुरु वचनों पर करना विचार, के आनंद गुरु छोड़ गए।।३।।

■ ■

श्रद्धांजली

■ ऋषि प्रशांत

(तर्ज : तुम बिन जीवन कैसे बिता)
तव चरणन् में जो भी आया, फिर फिर फिर आया
तेरी भक्ति करके, खाली झोली भरके
पाया चैन, मिला सुख चरणों में चित्त धरके
शीतल छाया पाने ओ गुरुवर, फिर फिर फिर आया ।।१।।

मुख से मधुरस बरसे, प्रेम नयन बरसाएँ
मोहनी है मूरत, देखत सुध बिसराएँ
तेरे दर्शन करने ओ गुरुवर, फिर फिर फिर आया ।।२।।

■ ■



श्रद्धांजली

■ साध्वी प्रीतिसुधा

(तर्ज : ओठों से छूलो तुम मेरा गीत अमर कर दो!)

नभ गौरवशाली बना
धरती अब दीन बनी
उठ गयी छाया अपनी
थी शीतल और घनी ।।ध्रु।।

संयम की सौरभ थी
व्रत नियमों की खुशबू
जो आता बगियाँ में
बन जाता सहज लघु
गुरुता थी गजब यहीं
गुरुओं के गुरु थे धनी....
नभ गौरवशाली बना
धरती अब दीन बनी.....।।१।।

गंभीरता सागर सी
गहरी गहरी गहरी।।
मन हरता बगियाँ सी
चहु ओर हरी ही हरी
सूरज सम रोज नई
आभा देते अपनी
नभ गौरवशाली बना
धरती अब दीन बनी .... ।।२।।

जो आया चरणों में
वो फिर फिर फिर आया
ऋषिवर आनंद ने ये
वट वृक्ष है फैलाया
प्रीति की सुधा बांटी
ले पाया जो जितनी
नभ गौरवशाली बना
धरती अब दीन बनी .... ।।३।।

फकीरों की निगाहों में
अजीब तस्वीर होती है
निगाहें मेहर से देखें तो
खाक भी अक्सीर होती है ।।

■■

- *त्याग से पाप का मूल धन चुकता है और दान से पाप का ब्याज।*
- *सच्चा दान भी वही कहलाता है जो इच्छा से दिया जाता है।*
- *समस्त प्राणियों के मुक्ति का उत्तम साधन प्राप्त भागों का त्याग कर देना ही है।*



श्रद्धांजली

■ साध्वी प्रीतिसुधा

(तर्ज : तेरे सूर और मेरे गीत)

धरती पे फैलाके महिमा अपार
प्रभु क्यों गए आप ऊपर पधार .... धरती पे ॥ध्रु॥
कहाँ भूल हो गई पता ना चला
विदाई का ये शूल क्यों है मिला?
गहरा ही गहरा वो अंदर धसे
रग रग में क्यों जी न हमारे बसे
इस वेदना से लो हमको उबार .... प्रभु क्यों .... ॥१॥

ऋषि थे खरे आप आनंद नाम
आनंद **बांटा** उमरभर तमाम
मधुरता थी तन, मन, वचन में भरी
कटुता सदा ही यहाँपर डरी
आनंद मधुर अब ना मिलता उधार ... प्रभु क्यों ...... ॥२॥

ओ शक्तिदाता सम्हालो हमें
पता भी बता दो हो किस स्वर्ग में
श्रमण संघ आदि निधी के धनी
हुई धरती भगवन्! तुमबिन सुनी
प्रभू देना हमको सदा 'प्रीति'प्यार .... प्रभु क्यों ...... ॥३॥

तहीदस्तों का दर्जा, अहले दौलत से ज्यादा है ।
सुराही सर झुकाती है, जब कि जाम आता है ॥

■ ■



श्रद्धांजली

■ ऋषि प्रशांत

(तर्ज :- तेरे चेहरे में वो जादू है.....)

ऋषिवर का तेज निराला है, जो देखे नहीं भूल पाएँ
श्रद्धा भक्ति से सर झुकता, अंतर का कमल खिल जाएँ ।।
स्वामी थे अपने मनके, ऋषिवर प्यार हैं जन-जन के
कष्ट मिटा दे तन-मन-धन के, महिमा ऋषिवर की गाई न जाएँ
श्रृंगार है जिन शासन के, अणगार प्रमुख है गणके
विशाल है अंतःकरण के, दर से कोई भी खाली न जाएँ
नाम बड़ा प्यारा आनंद है, तेरे दर पे आनंद मिल जाएँ ...... ।।१।।

कण-कण में बसी सरलता, नहीं छू पाई ममता
सुख-दुःख में सदा ही समता, विपदाओं से नहीं घबराएँ
चंदन सी देखी शीतलता, अद्भूत इतकी अविचलता
हर बात में होती सहजता, सागर वर गंभीर कहाएँ
चरणों में आ, आशीष पा ले, तेरी नैय्या को पार लगाएँ .... ।।२।।

■ ■

- *कर्म, फल की आकांशा रखे बिना ही किया जाना चाहिए।*

- *मानव को स्व-इच्छा और त्याग की भावना से दान देना चाहिए, तप करना चाहिए तथा अन्य जो भी क्रियाएँ की जाए, अनासक्त भाव से ही करना चाहिए।*

- *यह अटल सत्य है कि पुण्य और पाप के अलावा आत्मा का साथी और कोई नहीं होता।*

- *अगर आपको भी जन्म-मरण से मुक्त होने की अभिलाषा है तो सर्वप्रथम अपनी वाणी पर अंकुश रखना सीखें तथा मधुरभाषी बनने का प्रयत्न करें।*



समाचार पत्रों के आइने में

जनजन के श्रद्धा केंद्र पू. आचार्य भगवंत का २८ मार्च ९२ को महाप्रयाण हुआ और स्थानस्थान पर समाचार भिजवाने के लिए यंत्रणाएँ सक्रिय हो गई, किन्तु वे सभी व्यक्तिगत तौरपर ही चल रही थी। इस मौके पर जनसामान्य तक अधिकृत और विस्तृत रूपसे जानकारी पहुँचाने का महत्कार्य सम्पन्न किया समाचार पत्रों ने।

तीन चार दिनों की विविध घटनाएँ समाचारों को भी आचार्यश्रीजी के महाप्रयाण की घटना का उल्लेख प्रायः सभी वृत्तपत्रों ने मुखपृष्ठपर प्रमुखतः उल्लेख किया जो जन जनमें पू. गुरुदेव की लोकप्रियता का ही प्रतिबिम्ब था।

अनेक प्रमुख समाचार पत्रों ने मुख्य रूप से अपने वृत्तपत्रों में स्थान दिया। समाचार दर्शन के साथ साथ भावपूर्ण श्रद्धांजलिपर संपादकीय और लेख भी प्रकाशित किये।

सकाळ, केसरी, देवगिरी, तरुण भारत, सार्वमत, गांवकरी, दै. लोकमत, दै. आज का आनंद, दै. प्रभात, नगर टाईम्स, समाचार, लोकयुग, नवाकाळ, नवा मराठा आधि अनेक समाचार पत्रों ने इन घटनाओं का अत्यंत हृदयस्पर्शी चित्रण किया। जितने वृत्तपत्र उपलब्ध थे, उनके वृत्तलेखों का प्रातिनिधिक संकलन प्रस्तुत किया जा रहा है।



वे तीन दिन...!

■ श्री प्रवीणऋषिजी म.

दार्शनिक लाओत्से के 'ताओ' सूत्र में एक सूत्र है 'संत (ताओ) ऋषि एक तारे के समान जगत से विदा होते है।' 'जैसे तारा' अस्त होने के पूर्व एवं पश्चात् कुछ भी संकेत न होते हैं, न रहते हैं। ऋषि का जीवन ऐसा ही होता है। आराध्य देव का समग्र जीवन ही नहीं शनिवासर भी ऐसा ही रहा हैं। प्रकृति का नियम है, परिपूर्णता के पश्चात् अवस्थान्तर सहज होता है। उसमें आकुलता-व्याकुलता नहीं होती।

२०-२१ मार्च से पूज्यवर के श्वसन में अनियमितता हो रही थी। पूरा शरीर श्वसन की अनियमितता के आवेग में श्रांत होता - पर पूज्यवर के नयनों में वही सदा का शांत-प्रशांत सागर सराबोर दृग्गोचर होता।

शुक्रवार की निशा में पूज्यवर पूर्ण स्वस्थ रहे, शनिवार की दिनचर्या साधना नियमित चलती रही। डॉ. चंगेड़िया, डॉ. अशोक मुथा, डॉ. विजय पितळे, डॉ. वसंत कटारिया के उपचार चल रहे थे। दवा, हल्कासा पेय आहार, स्तोत्रपाठ, भक्तगणों के दर्शन स्वाध्याय नियमित चलता रहा।

करीबन दोपहर के २-३० बजे पू. आचार्य म. के निर्देश अनुसार (पूज्य गुरुदेवद्वारा संग्रहीत लिपिबद्ध) भजन महासती श्री प्रीतिसुधाजी ने सुनाया। पूज्यवर पूर्णतः प्रसन्न प्रफुलित थे। उसी भावस्थिति में नियमित क्रमानुसार ३ बजे श्री महेंद्रऋषिजी एवं श्री पद्मऋषिजी ने श्री नन्दीसूत्र का सार्थ सविवेचन स्वाध्याय प्रारंभ किया।

३-४० को स्वाध्याय पूर्ण हुआ। स्वाध्याय के समय महासतीवृंद, श्रावक-श्राविकावर्ग उपस्थित था। सामुदायिक नमस्कार महामंत्र का घोष श्री कनकऋषिजी म.सा. ने प्रारंभ किया। मैं (श्री. प्रवीणऋषिजी म.) ४ बजे देने की दवा तैय्यार कर रहा था। आवाज आयी, आपको (प्रवीणऋषिजी) बुला रहे है। अविलम्ब उपस्थित हुआ।

आशुगति से शरीर में हो रहे परिवर्तन को देख तुरंत संलेखना, प्रत्याख्यान देने का मानस हुआ। (इसके पूर्व अंतरंग संवाद में पूज्यवर ने समय-समय पर प्रेरणा दी थी कि समय देखते ही संथारा देना!)

उसी समय महासतीजी श्री प्रमोदसुधाजी ने भी प्रेरणा दी। पू. गुरुदेव से पृच्छा की - पूज्यवर ने 'करयल संपरिग्गहिय मत्थए अंजलिं कट्टु।' एवं नयनों से अनुज्ञा प्रदान की। परिवेश गंभीर हुआ। स्तब्ध हुआ, श्रमणसंघीय मंत्री श्री कुन्दनऋषिजी म. सा. आदि शिष्य शिष्या सहित चतुर्विध श्री संघ उपस्थित था।

गंभीर वातावरण में संलेखना विधि प्रारंभ हुई। ४ बजे संथारा प्रत्याख्यान पूज्यवर ने लिए।

पूज्यवर आत्मभाव में रमण कर रहे थे। उपस्थित महासतीजी श्री सुन्दरकंवरजी म., महासती श्री विमलकंवरजी म., महा. श्री कीर्तिसुधाजी म., महा. श्री. कंचनकंवरजी, म., महा. सुशीलकंवरजी म., महा श्री. इंद्रकंवरजी, महा. श्री. रामकुंवरजी, महा. श्री प्रमोदसुधाजी, महा. श्री धर्मशीलाजी, महासती श्री प्रीतीसुधाजी, महासती श्री अर्चनाश्रीजी आदि सतीवृन्द आंखों में प्राण, आंखों को आराध्यदेव पर केंद्रित कर चतुर्विध श्री संघ भव्य दिव्य आत्मा की चरम-परम साधना के गंभीर भावों से नमस्कार महामंत्र, समाधिभाव ज्ञापक मंगलगीतों का, आगम गाथाओं का सस्वर घोष कर रहा था।

समाचार प्राप्त होते ही डॉ. चंगेड़िया, डॉ. पितलिया, डॉ. अशोक मुथा, डॉ. बोरा तुरन्त उपस्थित हुए। मालिश (बिना दवा की) प्रारंभ हुई। पूज्यवर का तन 'पादपोगमन' स्थिति में था। सांस मंद-मंद हो रही थी।

हर पल के साथ बोर्ड के परिसर में भक्तों की भीड़ बढ़ रही थी। संथारा ग्रहण का वृत्त सर्वत्र प्रसारित हो गया, सभी मार्गों से परीक्षा बोर्ड की ओर जनता उमड़ रही थी।

महामंत्र का घोष चल रहा था। और वह पल आया - आनंद वात्सल्य अमृत की सतत वर्षा करनेवाले कमल नयन पूज्यवर ने मूंद लिए। वातावरण पूर्णतः गंभीर था। मंत्रघोष सतत चल रहा था। बोर्ड का परिसर भक्तगणों से भर रहा था, हर भक्तगणों के प्राण पूछ रहे थे, क्या स्थिति है? भक्त प्रार्थना कर रहे थे। शासनेश से पूज्यवर के स्वस्थता के लिए। पर जिन्हों ने संयम मर्यादापूर्वक किसी अनुरोध को आजीवन नहीं नकारा, पर उस पल सब के अनुरोध उन के लिए हो रहे थे।



प्रकृति निसर्ग ने सहस्रावधी हृत् कमलों से सहज निसृत प्रार्थना को अनसुना किया। आज तक का आनंद सागर एक पल में स्तब्ध शोक सागर बना।

डॉक्टरों ने नाडी देखी, हृदय के स्पंदनों का पर्यवेक्षण किया, भावों की भाषा में संवाद हुआ। लाओ त्से की भाषा में ताओ-तारा ज्योत-जनता जनार्दन के बाह्य आकाश से लुप्त हुआ। समय था ५-१५।

शिष्यवर्ग के लिए कसौटी के क्षण थे। आज तक जिन्होंने अनुकूल प्रतिकूल स्थितियों में समत्व रखने की आसेवना, ग्रहणा दोनों शिक्षा सतत दी आज जीवन में पहली बार चरम परीक्षा का समय था। पूज्यवर के गरिमानुरूप समग्र शिष्य-शिष्यावृंद धीर गंभीर था। स्तब्ध था।

शहर में से तपस्वी रत्न श्री मगनमुनिजी आदि सन्तगणों का पदार्पण हुआ। परीक्षा बोर्ड कान्फरेन्स (युवा शाखा)



स्थानिक श्री संघ के कार्यकर्ता-पदाधिकारियों ने अविलम्ब सर्वत्र सूचना प्रसारित की।

शिष्यवृंद ने पूज्यवर की महिमा मंडित काया को नूतन वस्त्र परिधान कराएँ। वस्त्र परिवर्तन के समय महसूस ही नहीं हो रहा था कि काया निष्प्राण है।

आसन पट्टपर पद्मासन, ध्यानमुद्रा में पूज्यवर की मूर्ति स्थापित हुई। बोर्ड का प्रांगण जनमेदिनी से संकीर्ण हो रहा था। सन्त-सतीवृन्द ने विचार विमर्शपूर्वक पूज्यवर के आसनपट्ट को समवशरण के धर्मपीठ पर लाकर स्थापित किया।

आनंद रूप चेतना ने जिस तन में वास किया, जिस सचेतन विग्रह के उपग्रह बन, उपग्रह में आज तक जीवन जीया, उस तन को आगम, व्यवहार, विधिपूर्वक संत-सतीवृंद ने श्री संघ को सौंप दिया।

ध्यानमुद्रा में प्रतिष्ठापित पूज्यवर का विग्रह ऐसा था, मानो अब गुरुदेव कायोत्सर्ग पूर्ण कर भक्तगणों पर कृपा-दृष्टिपात करेंगे।

नगराध्यक्ष अरुण जगताप दर्शन कर गए, पवन वेग से प्रसारित हुए समाचारों ने नगर के बहुजन समाज श्रद्धालुओं पर ही वज्रपात नहीं किया, अपितु सम्पूर्ण भारत वर्ष की लक्षावधि जनता शोक सागर में निमग्न हुई।

अ. नगर की हिन्दू, ख्रिश्चन, पारसी, मुस्लिम, आदि जैनेतर जनता विराट् पुरुष के दर्शन के लिए उमड़ पडी। मुस्लिम भाई-बहन आंसू बहाते 'हमारा अल्ला-परवरदिगार चला गया' कहते हुए कुर्निसात कर रहे थे।

डॉ. गंगवाल ने जब एक बहन से पूछा, तब उन्होंने बताया, हमारा रमजान चल रहा है। इन पवित्र दिनों में अल्ला चला गया। जनसागर बढ़ता ही जा रहा था, नियंत्रण करना असंभव हो रहा था, पुलिस प्रशासन ने अपना सहयोग देना प्रारंभ किया। दर्शनार्थियों की भाई बहनों की स्वतंत्र कतारे बन गईं। बोर्ड के चारों ओर के मार्ग पर जनता ही जनता थी।

रात में दूरदर्शन समाचार पर सूचना देख-सुन अ. नगर, पूना, नासिक, औरंगाबाद, जलगांव आदि जिलों से वाहनों के द्वारा जय-आनन्द, जय आनंद का घोष करते लोग आने लगे।

अ. नगर जिले में उपस्थित सभी विधायक, सांसद आए। विश्व हिंदू परिषद, रा. स्वयं-सेवक संघ, प्रान्त संघ आदि प्रमुख आए। अ. नगर पालिका, एस. टी. महामंडल एवं सभी स्वयंसेवी संस्था के कार्यकर्तागण व्यवस्था हेतु स्वयंस्फूर्त सक्रिय हुए।

निशा में ११ बजे अ. नगर, पूना, घोडनदी आदि स्थानों के प्रमुख व्यक्तियों की गोष्ठी हुई। व्यवस्था हेतु समिति का गठन हुआ। अग्नि संस्कार हेतु स्थान बोर्ड के स्वाध्याय भवन के सम्मुख तय हुआ। लक्षावधि भक्तगणों को दूर से भी दर्शन व्यवस्थित दिखे इस हेतु १८"x२४"

चौरस एवं १० फीट उंचा अग्निसंस्कार पीठ का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ।

पूना से आगत कुशल काष्ठशिल्पकार भव्य पालकी निर्माण में जुट गए। मंगल जीवन यात्री पूज्यवर की अन्तिम यात्रा के लिए निर्माण हो रही थी अष्ट-मंगल प्रतीक युक्त पालकी।

व्हिडिओकॉन कंपनी की ओर से २० क्लोज सर्किट टी. व्ही. संच परिसर में लगाए गए। आनन्द समवसरण में पूज्य वर के विग्रह सम्मुख आनन्द भक्ति की स्वरगंगा बह रही थी।

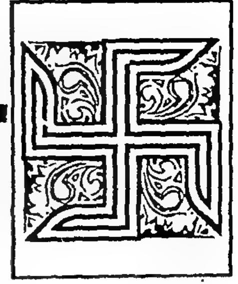
रविवार-

सूर्योदय के समय संपूर्ण शिष्य-शिष्या-वृंद आनन्द समवसरण में पूज्यवर के विग्रह के दोनों ओर पीठपर आसीन हुए। ७५ साल तक अपने मधुर स्वर में जो प्रार्थना पूज्यवर करते थे वह प्रारंभ हुई। देश के दूरवर्ती प्रान्तों से भक्तगणों का आगमन प्रारंभ हो गया था।

सभी प्रमुख वृत्त-पत्रों में विस्तृत, सचित्र जीवन गौरव गाथा के साथ वृत्त प्रकाशित हुए। भक्तगणों के आवास व्यवस्था के लिए नगर के कार्यकर्ताओं ने सम्यक् व्यवस्था की।

विशाल संख्या में आगत एवं आनेवाले सभी भक्तगणों की गौतम प्रसादी की सेवा में श्री सम्पतलालजी बोथरा परिवार तन्मय था।

अन्तिम यात्रा के निर्धारित नगर शहर मार्गों की स्वच्छता में नगराध्यक्ष अरुण जगताप ने पालिका प्रशासन को सक्रिय किया।



गृहराज्य मंत्री श्री बबनराव पाचपुते एवं नगर विकासमंत्री श्री मदनलाल बाफणा पूज्यवर के दर्शनार्थ आए, उन्होंने श्री संघ से निवेदन किया - पूज्यवर राष्ट्र के गौरव थे, राष्ट्रसंत थे उनकी अन्तिम यात्रा एवं उनके दर्शनार्थ आये भक्तगणों की व्यवस्था महाराष्ट्र शासन का दायित्व है। गृहराज्यमंत्री ने अपने सभी नियोजित कार्यक्रम स्थगित कर दिए। शासकीय अधिकारी एवं संघ के गठित समिति के कार्यकर्ताओं की संयुक्त सभा ली, अधिकारी वर्ग ने उचित निर्देश दिए।

संरक्षण मंत्री शरदरावजी पवार भारत पाक की सीमा पर तनावपूर्ण स्थिति के कारण सीमा प्रवास पर थे। जैसे ही उन्हें सूचना मिली तुरन्त उन्होंने निवेदन प्रेषित कराया कि मैं दर्शन हेतु आ रहा हूँ, मेरे आने तक यात्रा प्रारंभ न करें।

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सुन्दरलालजी पटवा, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री सुधाकररावजी नाईक, देहल्ली से चन्द्रास्वामी, सांसद श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी, आदि सभी की ओर से ऐसा ही निवेदन आया।

सभी राजकीय पक्षों के विविध पदाधिकारी, वर्तमानपत्रों के संपादक वर्ग, शासकीय अधिकारी वर्ग श्रद्धांभिभूत हो श्रद्धांजलि अर्पण हेतु आए। जिस-जिस गाँव, शहर में वार्ता - जिस समय ज्ञात हुई



तुरन्त ही स्वयंस्फूर्ति से सभी व्यवसाय-व्यवहार बंद हुए। करंजी जहाँ प्रायः सभी होटल मुस्लिम समाज के है पूर्णतः ३ दिन बंद रहे।

बोर्ड का परिवेश ही कही ३-४ किलोमीटर के परिवेश में मात्र भक्तगण ही भक्तगण थे, स्थान-स्थान पर समाज के युवासंगठन भक्तगणों के आतिथ्य सेवा कर रहे थे।

रविवार का सूरज अस्तातल की ओर बढ़ रहा था पर माहौल वैसा ही था। सूर्योदय अस्त से अप्रभावित है। गंभीर भक्तिप्रवण रविवार रात तक करीबन नगर शहर में बाहरगाँव से आगत दर्शनार्थियों की संख्या २ लाख तक पहुँच गयी।

दिन दिन न रहा, रात रात न रही। धारा वैसे ही बहती रही। काल थम गया था। पूज्यवर का विग्रह वैसा ही शान्त-गंभीर प्रसन्नमुख था।

सोमवार

शिष्यवृन्द सतत आनन्द समवसरण में ही था गंभीर मुद्रा में। शिष्यवृन्द सूर्योदय के साथ ही आया, प्रार्थना हुई। सभी छत मानस में अकथ वेदना का सागर क्षुब्ध था। आँखें पूज्यवर के विग्रह पर। अनागत की कल्पना थी कि अब यह विग्रह भी कुछ घंटों के लिए ही आँखें देख सकती हैं। काश....... अब स्तब्धता खंडित होने लगी। आंसुओं की धाराएं बहने लगी, चरम नियंत्रण के बावजूद भी आर्तस्वर प्रस्फुटित होने लगे।

वातावरण में अनागत की छाया छा चुकी थी। बोझिल दिल से सभी दायित्व निभा रहे थे। दाह क्रिया हेतू निर्मित संस्कार पीठ श्रद्धालुओं के लिए आकर्षण, श्रद्धाकेन्द्र बन रहा था। पालकी का निर्माण पूर्ण हो गया।

परिसर में इतनी जनमेदिनी थी। पुलिस नियंत्रण के बावजूद पालकी आनंद समवसरण में लाने के लिए आधा घंटा लगा। १०-३० बज रहे थे। पालकी आनंद समवसरण में आयी, पर निग्रह पीठ तक आने के लिए मार्ग नहीं मिल रहा था, परिसर जय आनंद, जय आनंद के घोष से गुंजायमान था।

पुलिस जिल्हा अधीक्षक स्वयं प्रयास कर रहे थे फिर भी पालकी नहीं आ पा रही थी। शिष्य शिष्यावृन्द की मनःस्थिति? पर उस मनःस्थिति में भी धीरज से काम लिया, व्यवस्था हेतु विवेकपूर्ण चरण उठाए।

जय आनंद - जय आनंद

जय - जय नंदा - जय जय भद्दा

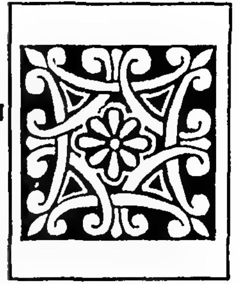
का घोष चरम पर है। भक्ति का आवेग शिखरों को छू रहा था। सब कुछ भूल जाने की मानसिकता से आलोकित जनसागर....... आसन पट्ट से पूज्यवर का विग्रह पालकी में स्थापित हुआ, हृदयसिंहासन पर प्रतिष्ठापित पूज्यवर का जनसागर अविरत श्रद्धापूर्ण अश्रुधारा में अभिषेक कर रहा था।

योजना बनी थी कि गिने-चुने व्यक्ति पूज्यवर के विग्रहयुक्त पालकी को वाहन तक ले जाएंगे पर जिनकी जीवन (गंगा) यात्रा कभी गिनेचुने व्यक्तियों के लिए नहीं चली, सदा जनता जनार्दन के लिए रही, उनकी आनंद यात्रा अंतिम यात्रा में भी जनता जनार्दन ने गिनेचुने व्यक्तियों का घेरा तोड़ा और जगन्नाथ को जनता जनार्दन ले चली। उसी समय राष्ट्र के संरक्षण मंत्री, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री, अपने सहयोगी मंत्री, सांसद-विधायकों के साथ प्रवेशद्वार पर उपस्थित थे।

आनंद समवसरण में आनंद विग्रह के दर्शन हेतु आने के लिए प्रयत्नशील थे, तय यह किया था कि उनके आने तक, उनके निवेदनानुसार ठहरा जाय पर जनता जनार्दन के जगन्नाथ की यात्रा प्रारंभ हो गई थी। सारा आनंद समवसरण शून्य हुआ।

जैन ध्वजों से सुशोभित वाहन पर पूज्यवर की पालकी स्थापित हुई। उसी समय महत् प्रयासों से संरक्षण मंत्री, मुख्यमंत्री द्वय अन्य मंत्री वर्ग वहाँ पहुँचा, सभी ने दर्शन लिए, श्रद्धांजलि अर्पित की। (अलग से प्रकाशित है)। विग्रह की अंतिम यात्रा प्रारंभ हुई। ५-६ लाख का जनसागर यात्रा में चल रहा था। अश्वारोही, वाद्यपथक, भजनीमंडल, लेझीम पथक, रिक्षा में से भक्तिगीत। एक ऐसी यात्रा जो न भूतो न भविष्यति।

यात्रा मार्ग पर स्थान स्थान पर शहर



हिन्दु, मुस्लिम, ख्रिश्चन, पारसी, सिंधी, जैन आदि युवक मंडल, विविध समाजसेवी संस्थाओं ने व्यक्तियों ने भक्त सेवा केन्द्र स्थापित किए। ११ बजे प्रारंभ हुई यात्रा को ४ कि. मी. यात्रा मार्गक्रमण करने में ५ घंटे का समय पूर्ण हुआ। नगर शहर का रूप ही बदल गया।

४-३० बजे के करीबन विग्रह का पुनरागमन बोर्ड परिसर में हुआ। पालकी को संस्कार पीठ पर स्थापित किया। चंदन के सम आजीवन संघ सेवा, मानव कल्याण के लिए जिनसे सदा चंदन की शीतल संतापहारक सुवास प्रसारित हुई थी, उनके विग्रह को चंदन काष्ठों से आश्रृत करना प्रारंभ हुआ। जिधर देखो उधर नीचे उपर सामने पिछे जनता ही जनता, पेड, छत पर स्वयं जहाँ जहाँ संभव हुआ - जनता उस क्षण - उस दृश्य को विवश हो देख रही थी।

ध्वनिवर्धक यंत्र से सूचना प्रसारित हुई। श्री चन्द्रास्वामी, सांसद शिष्टमंडल एवं आचार्य महामंडलेश्वर चिस्वानंदपुरी, आचार्य प्रभाकर मिश्र, चतुर्भुज गौतम, श्री सुशीलकुमारजी प्रवेश द्वार पर हैं, उन्हें आने के लिए मार्ग में जय आनंद - जय आनंद का घोष अविरत चल रहा था।

सहज स्निग्ध जीवन, स्निग्ध वाणी सर्वतोभावेन स्निग्ध तनु को चंदनकाष्ठों से आवृत कर स्निग्ध गोघृत से काष्ठों को



सिंचित किया जा रहा था। परम्परानुरूप पारिवारिक जन श्री उत्तमचंदजी गुगलिया, श्रीमलजी गुगलिया कान्फरेन्स के अध्यक्ष श्री लुंकडजी, बोर्डमंत्री श्री नेमीचंदजी कटारिया, स्थानिक उपसंघपति हस्तीमलजी मुणोत - युवा कॉन्फरेन्स अध्यक्ष बाबुशेठ बोरा, बोर्ड के अध्यक्ष नवलचंदजी पुंगलिया संस्कारपीठ पर प्रदक्षिणा कर रहे थे। नमस्कार महामंत्र का उद्घोष प्रारंभ हुआ। कभी किसी के कोमल मन को तप्त तक नहीं किया। सबका आताप स्वयं सहा - जिस विग्रह के द्वारा उस महिमा मंडित विग्रह की धृत स्नेह से सिंचित चंदनकाष्ठ तेज का स्पर्श हुआ।

तप्त लाल ज्वालाएँ उर्ध्वारोही हुई। लक्षावधि आँखों से प्रवाहित आंसुओं की धारा भी उसे छू न सकी।

एगे आया - अकेला आया, अकेला जाएगा, जीवन के आद्य अंत बिन्दु को स्पर्श करते ये सत्य सूत्र। पर आज इन दो तटों के बीच बहनेवाली जीवन सरित् प्रवाह की गरिमा के दर्शन हुए।

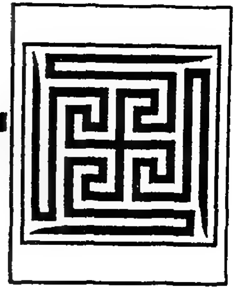
हर मुख से एक ही वाक्य था, आनन्द बाबा ने जाते जाते भी सबको शीतलता का अहसास दिया। मार्च माह - जेठ माह की बिलबिलाती धूप का मौसम पर दिनभर बादलों की छाया - और मन्द मन्द समीर बहता रहा।

५-६ लाख की वह जनमेदिनी बेरवान की वे लपेटें जलंती चिता से रक्षा प्राप्त करने के लिए आग में हाथ डालते युवक को पुलिस के रोकने पर निड़रता से तुम यदि मुझे हाथ लगाओगे तो याद रखना, मेरे हाथ में गुरुदेव की विभूति है..... वह किशोर ! रात-रात भर गस्त लगाए पुलिस की भक्ति युक्त क्रियाएँ।

कितने ही चित्र शब्दरूप नहीं ले पाए हैं। उन्हें अशब्दरूप में भावित कर विराम लेता हूँ।



- *अपने जीवन के अनमोल क्षणों को बर्बाद न करके उन्हें आत्मोत्थान में लगाओ।*
- *सन्त-महात्माओं की बड़ी कृपा है कि वे अपने समीप आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सत्पथ बताते हैं।*
- *इन्द्रिय-जनित सुख की कामनाओं के विजेता ही संसार से विरक्त होकर साधु-वृत्ति को अपना सकते हैं।*
- *आत्म-साधना के मार्ग पर वीर और दृढ़ता से सम्पन्न व्यक्ति ही चल सकते हैं। कायर व्यक्तियों के कदम इस पथ पर नहीं बढ़ते।*
- *आत्मा का गन्तव्य स्थान यह संसार नहीं है, वरन् मोक्ष-धाम है।*



अभिमत...

तारा निखळला!

आचार्य श्रीं नी समाज ऐक्यासाठी आयुष्यभर प्रयत्न केले. मग त्यात गावातील तट मोडून ऐक्य करावयाचे असो की संपूर्ण भारवर्षाच्या जैन समाजाच्या एकीचा प्रयत्न असो. तो एकी व्हावी म्हणून त्यांनी शक्य ते सर्व प्रयत्न केले. पू. आचार्य श्रीं नी प्रेरणा देऊन ज्ञानदान देणाऱ्या संस्था काढल्या. गरीबांसाठी आर्थिक सहाय्य व वैद्यकीय सेवा देणाऱ्या संस्थांची स्थापना करविली. मानवी जीवनाला उच्चतेकडे नेणारे साहित्य निर्माण केले. अशा बहुविध मार्गांनी त्यांनी समाजाची महान् सेवा केली आहे.

दै. लोकमत,
रवि. दि. २९ मार्च १९९२



देशाच्या कानाकोपऱ्यातील जैन व इतर धर्माचे भाविक स्त्री-पुरुष आचार्यश्रींच्या दर्शनासाठी सातत्याने नगरला येत राहिले. भाविक त्यांना जैन धर्मातील पंचविसावे तीर्थंकर, महावीर भगवानांचा अवतार मानत. सर्वधर्मसमभाव, समानता, सह्यदयता, विद्वत्ता, करूणा या गुणांचा केवळ त्यांच्या शिकवणुकीतच नव्हे तर व्यक्तिमत्वावरही प्रभाव दिसून येई. भारतीय संकृत व संतवाङ्मय यांचे ते पुरस्कर्ते होते. आपले तत्वचिंतन हे सहजसुंदर भाषाशैलीतून ते पटवून देत.

रविवार सकाळ



नम्र, मृदु व गंभीर प्रकृतिचे असलेले महाराज पुरोगामी होते. त्यांचा जैन धर्माबरोबरच इतर धर्मासंबंधी गाढा अभ्यास होता. त्यांचा ज्या स्थळी चातुर्मास असे ते स्थळ सदैव यात्रेसारखे फुललेले असावयाचे व या काळात रक्तदान, श्रमदान, अपंग शिबिरे ही नेहमी होत.

प्रभात





जैन महात्मा हरपला!

आचार्य आनंदऋषिजी महाराज यांचे व्यक्तिमत्व अत्यंत लोभस होते. त्यांचा स्वभाव अतिशय शांत, सरळ, सहिष्णु व सहृदय प्रवृत्तीचा होता. धर्माचे निरर्थक अवडंबर त्यांना मान्य नव्हते. केवळ देखावा किंवा फुकट खर्च त्यांना मान्य नव्हता. वैभवाचे निरर्थक प्रदर्शन करून समाजाच्या शांतीला बाधा निर्माण होते, एकमेकांत स्पर्धा तथा द्वेष जागृत होतो असे त्यांचे मत होते. हुंडा किंवा त्यासारख्या खर्चास परोपकारासाठी वापरावे असे ते म्हणत.

दै. सार्वमत



नगरच्या पाथर्डी तालुक्यातील एका सामान्य कुटुंबात जन्मलेल्या आचार्यांचा जैन संस्कृती व साहित्याचा गाढा व्यासंग होता.

देवगिरी, तरुण भारत



श्रमण संघातील आचार्य श्रींचे नेतृत्व आणि तेज:पुंज व्यक्तीमत्वामुळे संपूर्ण देशातील सर्व पंथांच्या श्रावकवर्गावर त्यांचा आध्यात्मिक प्रभाव होता.

पुणे वर्तमान



अत्यंत शांत स्वभाव हे आचार्यश्रींचे वैशिष्ट्य होते. राग, लोभ, द्वेष, यापासून खऱ्या अर्थाने त्यांनी मुक्ती मिळवली होती.

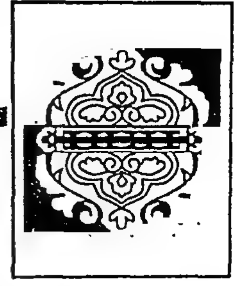
गावकरी



बालब्रह्मचारी असणाऱ्या आचार्यश्री आनंदऋषिजींनी संपूर्ण भारतात भ्रमण केले. भारतातील बहुतेक धर्मांच्या धर्मग्रंथांचा त्यांचा गाढा व्यासंग होता. त्यावरील त्यांचे भाष्य अतिशय हृदयस्पर्शी असे.

दै. केसरी, अ. नगर





संपूर्ण भारतात ज्यांना आदराचे स्थान होते ते नगर जिल्ह्याचे भूषण समजले जात होते अशा आचार्य श्री आनंदऋषिजी महाराजांचे महानिर्वाण झाले. या महामानवाला सगळ्यांची आदरांजली.

आचार्य श्री आनंदऋषिजी महाराज एक महान् विद्वान होते. केवळ जैन धर्मियांना नव्हे तर सर्व धर्मियांमध्ये त्यांच्याबद्दल आदरभाव होता.

आचार्यश्रींचे विचार महत्त्वाचे आहेत. कार्य महत्त्वाचे आहे. त्यांनी भारतभर प्रवास करून विचारांचा प्रसार केला त्याला तोड नाही. नगर जिल्ह्यात असे मानवरत्न जन्माला आले ते भाग्य समजले पाहिजे. नगर जिल्ह्याचा तो अभिमान आहे. या महान् ऋषींचे विचार यापुढे आपणांस प्रेरणादायी ठरणार आहेत. त्या विचारांचे जतन करणे , त्यांची शिकवण आचरणात आणणे हीच खरी आनंदऋषींना श्रद्धांजली ठरणार आहे.

संपादकीय, दै. सार्वमत, ता. ३०-५-९२



मानवाच्या प्रगतीसाठी व सत्य अहिंसेच्या पुरस्कारासाठी आपले आयुष्य वेचणारे आनंदऋषिजी महाराज यांचे विचार व संदेश अमर आहेत. ते टिकवून ठेवण्यासाठी अथक प्रयत्नांची गरज आहे. मी ऐंशी कोटी भारतीय जनतेचा व पंतप्रधान नरसिंहराव यांचा प्रतिनिधी म्हणून आचार्य आनंदऋषींना आदरांजली वाहण्यासाठी मुद्दाम आलो आहे.

श्री. शरदराव पवार,
संरक्षण मंत्री, भारत सरकार



आचार्य आनंदऋषि महाराजांनी मोठी तपश्चर्या व साधना केली. मानवजातीची मोठी सेवा केली. त्यांना मी महाराष्ट्राच्या जनतेतर्फे विनम्र अभिवादन करतो. त्यांचे महानिर्वाण ही साऱ्या मानव जातीचीच हानी आहे.

श्री. सुधाकरराव नाईक,
मुख्यमंत्री, महाराष्ट्र सरकार





आचार्य श्री आनंदऋषिजींनी वयाच्या तेराव्या वर्षी दीक्षा घेऊन ९२ वर्षापर्यंतच्या आयुष्यभरात मानवजातीच्या कल्याणार्थ महान कार्य केले. त्यांच्या मार्गाने जाण्याची प्रेरणा सर्वांना मिळावी.

श्री. सुंदरलाल पटवा,
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश सरकार



सारे आयुष्य राष्ट्रीय एकात्मतेसाठी आणि सद्‌भावनेसाठी श्री आचार्य आनंदऋषिजींनी खर्ची घातले. त्यांच्यावर संत ज्ञानेश्वर व संत तुकारामांचा फार मोठा प्रभाव होता. लोभस व्यक्तिमत्व, मृदुभाषी स्वभाव यामुळे लाखो लोकांना त्यांनी शेवटपर्यंत आपल्या सोबत जोडून ठेवले.

श्री. बबनराव पाचपुते,
गृहराज्यमंत्री, महाराष्ट्र सरकार



आचार्यश्रींच्या दर्शनागणिक आपल्यातील कुविचारांचा ऱ्हास होत असे. त्यामुळे सतत त्यांच्या दर्शनाची ओढ लागत असे. त्यांच्या निधनाने भारताच्या आध्यात्मिक क्षेत्रातील एक मार्गदर्शक व तेजस्वी तारा निखळला आहे; त्याचप्रमाणे हिंदू आणि जैन धर्मामध्ये समन्वय साधणारा महान् संत आपल्यातून हरपला आहे.

माणिकराव पाटील,
प्रांतसंघचालक, रा. स्व. संघ



संपूर्ण जगाला आदरणीय असणाऱ्या आचार्य श्री आनंदऋषिजी महाराज यांच्या सेवेची मिळालेली संधी ही नगरकरांच्या दृष्टीने अभिमानाची बाब आहे. आचार्य सम्राटांचे महानिर्वाण झाले असले तरी त्यांची कृपाछाया मात्र शहरावर कायम रहावी, हीच अपेक्षा.

श्री. अरुणकाका जगताप,
नगराध्यक्ष, अहमदनगर नगरपरिषद





आचार्य श्री आनंदऋषिजी महाराजांनी आयुष्यभर साऱ्या जगाला प्रेमाचा, सेवेचा मंत्र दिला. त्यामुळे केवळ जैनच नव्हे तर सर्व समाजाचे ते श्रद्धास्थान होते. हे तपस्वी जीवन आता अनंतात विलीन झाले असले तरी त्यांची उज्ज्वल शिकवण लोकांच्या मनात कायम राहील.

श्री. कांतीलाल चोरडिया,
दै. सकाळ, सोमवार दि. ३० मार्च ९२



आनंद..... या नावातच ज्यांच्या जीवनाचा अर्थ सामावला होता त्या जैन धर्माचे महान् ऋषि आनंदजी महाराज यांचे महानिर्वाण म्हणजे हिमालयासारखे शीत आणि उत्तुंग व्यक्तिमत्व लाभलेल्या महामानवाचा अंत....! आनंदजी महाराजांनी आपले सर्वस्व मानवाच्या उद्धारासाठी समर्पित केले. त्यांच्या महानिर्वाणानंतर त्यांनी जे मानवतेचे कार्य केले, त्याची उपासना त्यांच्या भक्तगणांनी करणे ही खरी सत्वपरीक्षा ठरणार आहे.

भास्कर खंडागळे,
दै. सार्वमत, ३० मार्च ९२



ज्यांचा जन्मच जणू प्रेरणेसाठी व सेवेसाठी झाला
आचार्य महामुनी आनंदऋषिजी

लाखो लोकांनी ज्या आचार्य महामुनी आनंदऋषिजी महाराज यांना शनिवारी २८ मार्च रोजी अहमदनगरमध्ये श्रद्धेची आदरांजली वाहिली, त्या लाखो लोकांत आम्ही मनाने मिसळलो आहोत! वयाच्या अवघ्या १३व्या वर्षापासून म्हणजे १९१३ पासून आजतागायत किमान ८० वर्षे त्यांनी धर्माचा प्रसार केला आणि धर्माचा उदात्त अर्थ लावला.

समग्र जैन समाजाचे ते श्रद्धास्थान होते आणि त्यांच्या व्यापक मानवतावादी कार्यामुळे ते जैन समाजाबाहेरही आदरस्थान झाले.

जैन धर्म सत्य, अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करणे), अपरिग्रह, (संपत्तीचा संचय न करणे) आणि ब्रह्मचर्य या पाच तत्त्वावर उभारलेला आहे. जैन धर्म पाच तत्त्वांचा 'पंचयाम' आहे. वैदिक धर्मातील हिंसेवर आणि जातिभेदावर त्याने कडाडून हल्ला केला. जैन धर्म आणि बौद्ध धर्म हे हिंदुस्थानातील प्राचीन 'प्रॉटेस्टंट' धर्मच म्हटले पाहिजेत. तथापि या दोनही धर्मांच्या मूळ स्वरूपात स्वतःचा म्हणजेच व्यक्तीचा उद्धार हाच गाभा



होता. जैन धर्मातील २४वे तीर्थंकर वर्धमान महावीर यांच्याविषयी असे म्हटले आहे की ते साधुचरित्राचा सर्वोच्च आदर्श होते. नुकताच देहत्याग केलेले महामुनी आचार्य आनंदऋषिजी यांच्याबाबत आजच्या काळात हे वाक्य लिहिता येईल.

शुद्ध चरित्राचा व सुधारक समाजसेवेचा दीपस्तंभ

आचार्य महामुनीजी म्हणजे भ्रष्टाचाराच्या दलदलीत उभा ठाकलेला शुद्ध चरित्र्याचा व सुधारक समाजसेवेचा अभंग दीपस्तंभच होता. त्यांचा सदेह दीपस्तंभ समाजाला प्रत्यक्ष मार्गदर्शन करणारा आणि प्रेरणा देणारा होता. समाजाची प्रत्यक्ष सेवा करणारा होता. आम्ही प्रॅक्टीकल सोशॅलिझममध्ये सतत मांडत आलो आहे की, धर्म ही त्या त्या काळातील सुधारणा आहे आणि धर्मसंस्थापक त्या त्या काळातील क्रांतिकारक धर्मसुधारक आहेत. तेव्हा कालानुसार सतत पुरोगामी सुधारणा हाच धर्मसुधारकांचा संदेश आहे. त्याचा विसाव्या शतकातील प्रत्यक्ष पुरावा म्हणजे आचार्य महामुनी आनंदऋषिजी! आचार्य महामुनींनी काळानुसार सुधारणा घडवून, चारित्र्याच्या आदर्शाबरोबरच त्यागपूर्ण सुधारक समाजसेवेचा आदर्श स्वतःच्या आचरणाने धर्माला बहाल केला. या दृष्टीने संपत आलेल्या विसाव्या शतकातील ते केवळ आदर्श साधू नव्हते, तर समाजाला हवेहवेसे वाटणारे सेवाभावी व परोपकारी चैतन्यही होते.

जणू जन्मच घेतला उपकारासाठी

लाखो लोकांनी अहमदनगरमध्ये त्यांना श्रद्धांजलि वाहिली. ही श्रद्धांजली जितकी त्यांच्या साधुत्वाला होती, तितकीच त्यांच्या समाजाविषयीच्या ममत्वाला होती. तुकाराम महाराज म्हणतात, 'तुका म्हणे आता उरलो उपकारापुरता।' म्हणजे मी केवळ आता उपकारापुरता उरलो आहे. आचार्य महामुनीजी तारुण्य सरल्यावर नंतरच्या आयुष्यात उपकारापुरते उरले नव्हते तर ते उपकारासाठीच जणू जन्मले होते! कारण विसाव्या शतकाच्या उंबरठ्यावर १९०० साली त्यांनी जन्म घेतला आणि अवघ्या १३व्या वर्षी दीक्षा घेऊन ८० वर्षे त्यांचा उपकाराचा झरा झुळझूळ वहात राहिला. भ्रष्टाचाराच्या शिखराकडे पोचलेल्या या शतकात आदर्श चारित्र्याचा व सुधारक समाजसेवेचा हा दीपस्तंभ प्रेरणा देत व मार्ग दाखवीत राहिला. वृक्षाप्रमाणे सावली धरत राहिला. रसाळ फळे देत राहिला.

विविधांगी सुधारक समाजसेवा

आचार्य आनंदऋषिजी ज्या ज्या गावात गेले तेथे त्यांनी आधुनिक समाजाला उपयुक्त व आवश्यक असे कार्य उभारले. एकीकडे आपल्या मधुर आणि सरळ वाणीने ते लोकसमूहाशी बोलत होते त्याच वेळी दुसरीकडे लोकोपयोगी कार्याची बीजे त्याच भूमीत पेरीत होते. असा त्यांनी हयातभर प्रयास केला.



आनंदऋषिजींच्या कार्यात शिक्षण, आरोग्य आणि सद्मार्ग यांची त्रिसूत्री होती. शिक्षण केवळ पुस्तकी नको! विज्ञाननिष्ठ व अध्यात्मवादी हवे. 'सत्य की खोज' करणारे हवे! यासाठी त्यांनी ग्रंथालये स्थापन केली. पुण्यातील श्री महावीर जैन पाठशाळा, दिल्लीतील प्राकृत भाषा प्रचार समिती, पंजाबमधील श्री वर्धमान जैन सिद्धांतशाळा, पाथर्डीतले श्री रत्न जैन पुस्तकालय, त्रिलोक जैन विद्यालय, अमोलक जैन सिद्धांत शाळा, धार्मिक शिक्षा बोर्ड, बोदवडचे श्री रत्न जैन बोर्डिंग, पाथर्डीचे भव्य रुग्णालय आदि आचार्य आनंदऋषिंच्या प्रेरणेचीच फळे आहेत.

बत्तीस संप्रदायांच्या विलीनीकरणाचा चमत्कार

जैन समाज एकसंघ व्हायला हवा तर जैन धर्मातील पंथभेद मिटायला हवेत. जैन धर्मात श्वेतांबर, दिगंबर, तेरापंथी, स्थानकवासी असे प्रमुख पंथ आहेत. एकट्या स्थानकवासी पंथात तर २२ उपपंथ आहेत. आनंदऋषिंनी हाक दिली की, मतभेद एकत्र बसवून मिटवू या व जैन समाज एकसंघ करू या! त्यासाठी त्यांनी पदयात्रा केली. समाज जागा केला. समाजाचा दबाव विविध पंथातील मुनींवर प्रत्यक्ष पडला आणि जैन मुनी एकत्र आले. बत्तीस सांप्रदायातील आचार्य एकत्र आले आणि त्यांनी श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघाची स्थापना केली. बत्तीस वेगवेगळ्या सांप्रदायाचे या संघात विलिनीकरण झाले. हा एक चमत्कारच होता. आनंदऋषि प्रथम या संघाचे सेक्रेटरी झाले. त्यानंतर ते सर्वोच्च आचार्य बनले.

आनंदऋषिजी जैन समाजात विद्वानांपुरते राहिले नाहीत. सर्वच समाजातील तळागाळापर्यंत पोहोचले. त्यांची शांत आणि मधुर वाणी ऐकण्यासाठी लाखो लोक जमत. जैन आणि जैनेतरही येत. ते प्रवचने करीत. त्यांच्या प्रवचनातून कुठेही विद्वत्तेचा जडपणा नव्हता. साध्या व सरळ बोलीभाषेतून ते प्रवचने करीत. आपला विचार अधिक स्पष्ट करताना जनमाणसांत रुजलेल्या ज्ञानेश्वरांच्या ओव्या, तुकारामाचे अभंग आणि कबिराच्या दोह्यांचा ते आवर्जून उपयोग करीत. प्रसंगी अभंग आणि दोहे गात. विचार सहजपणे पटविताना त्यांनी जनमाणसात रुजलेले संतकवीच घेतले आणि संतांचेच जागृतीचे कार्य आधुनिक सुविधांची जोड देत पार पाडले.

स्वतः दुःख भोगले व इतरांना दूर केले!

आचार्य महामुनी आनंदऋषिजी यांचे मूळ नाव नेमीचंद! त्यांनी गरीब कुटुंबात जन्म घेतला आणि गरीबीचा दाहक अनुभव घेतला. ते ११ वर्षांचे झाले तोच त्यांचे वडील मृत्युमुखी पडले. ते निराधार झाले. आधीच गरीबी आणि त्यातच पोरकेपणा अशा उध्वस्तपणाचे जे भयानक दुःख असते ते त्यांनी अनुभवले. त्यांच्या मनात वैराग्य भावना



निर्माण झाली. तथापि वैराग्यामुळे तपश्चर्या करीत स्वतःपुरता उद्धार करण्याच्या मार्गाला लागले नाहीत. या देशात लाखो लोकांना जे दुःख भोगावे लागते ते इतरांचे दुःख दूर करण्याच्या मार्गाकडे वळले. रत्नऋषिंची व्याख्याने ऐकून ते प्रभावित झाले आणि अहमदनगरमधील मिरी गावात त्यांनी वयाच्या १३व्या वर्षीच जैन धर्माची दीक्षा घेतली. नेमीचंद आनंदऋषि झाले. यानंतर चंदनाप्रमाणे त्यांनी देह झिजविला. मानवी षड्रिपूंवर शुद्ध चारित्र्याने मात करताना समाजासाठी ममत्व बाळगले. विसाव्या शतकातील अंधःकार हा सवंग स्वार्थाचा आणि भोगलालसेच्या भ्रष्टाचाराचा आहे. हा अंधःकार सर्वत्र दाटत चालला आहे. अशा काळात ते निःस्वार्थ राहिले, पण विद्वानाप्रमाणे व साधुप्रमाणे तटस्थ राहिले नाहीत. त्यांनी जैन धर्माला समाजसेवेचा सहावा 'याम' बहाल केला. जैन धर्म पंचयाम होता आणि आनंदऋषिंमुळे 'षड्याम' झाला आहे. जैन धर्मियात लखपती-धनपती अनेक आहेत. ते दानधर्मात अग्रेसर आहेत. पण त्यांच्या दानधर्मात एका बाजूला प्राप्तीकर वाचविण्याचा हेतू असतो, तर दुसऱ्या बाजूला स्वतःच्या किंवा कुटुंबाच्या नावाची पाटी शाळा व कॉलेजच्या महाद्वारांवर झळकविण्याचा लोभ असतो. आनंदऋषिंनी निर्लोभ भूमीतून समाजसेवेचे वटवृक्ष जागोजागी उभे केले. लोकांचे दुःखहरण हीच त्यांची प्राप्ती होती आणि लोकांच्या दुःखहरणातून धर्माची कीर्ति वाढत होती.

जैन धर्माचा प्रचार त्यंनी केवळ प्रवचनांनी केला नाही. भुकेलेल्यास भाकरी, निराधाराला घरकुल, निराश झालेल्यांना आशावाद, विफल झालेल्यांना प्रेरणा, आजाऱ्याला हॉस्पिटल आणि मुलाला पायावर उभे करणारी शाळा अशा स्थायी स्वरूपातील सेवेने केला. वृत्तपत्रातून आणि दूरदर्शनवरून त्यांची कधीही कसलीही प्रसिद्धी आम्ही वाचली नाही आणि पाहिली नाही. हिमालयात उगम पावणारी नदी ज्याप्रमाणे कुठलाही अडथळा दूर करून हजारो मैल वाहत राहते आणि आपल्या दोन्ही किनाऱ्यांवर संपन्नता व सुख पसरवीत जाते, त्याप्रमाणे सेवाभावी महापुरुषांची प्रसिद्धी घराघरात व मनामनात आपोआप पसरत असते. अहमदनगरमध्ये देशभरातील लाखो लोक त्यांच्या अंत्यदर्शनासाठी धावत आले. या प्रचंड लोकसंख्येने हेच सांगितले, आचार्य आनंदऋषिजी आम्हाला कधी विसरले नाहीत आणि आम्हीही त्यांना कदापि विसरणार नाही. आदर बाळगणाऱ्या या अफाट जनसमुदायामध्ये आम्हीही कोठेतरी आहोत!

संपादकीय, दै. नवाकाळ, मुंबई,
दि. ७ एप्रिल ९२





भगवान महावीर और सर्वोदय

■ शान्तिलाल भंडारी

'पर्यावरण', 'प्रदूषण' जिस प्रकार आजकल अर्थात् वीसवीं शताद्वि के उत्तरार्द्ध के प्रतिनिधि शद्ब हैं, वैसे ही 'सर्वोदय' भी वीसवीं शताद्वि की मध्यावधी और आज का प्रातिनिधिक शद्ब है।

'सर्वोदय' की संकल्पना का मूलस्रोत कहाँ है यह कहना मुश्किल है। तो भी यह निश्चित है कि सर्वोदय का अंगीकार किस-किसने, कब-कब और कितनी मात्रा में किया। इसका यथाशक्ति अनुसंधान हो सकता है, और महापुरुषों के चरित्रों के चिन्तन-मनन परिशीलन करने पर एक बात प्रकर्षरूप से जानी जाती है कि पच्चीस सौ वर्ष पहले तीर्थंकर भ. महावीर और महात्मा गौतम बुद्ध अथवा महामानवों ने सर्वोदय की संकल्पना को केवल मूर्त स्वरूप ही नहीं दिया अपितु सर्वोदय के लिए उन्होंने उसमें स्वयं को अर्पित कर दिया। विशेषरूप से तीर्थंकर महावीर के बराबर सर्वोदय का आन्तरिक विचार किसी और के द्वारा किया हुआ दिखाई नहीं देता। महावीर ने सवोंदय का मात्र विचार ही नहीं किया, अपितु वह आचरण में दिखाई दे इस बात पर जोर देकर तद्नुरूप आचरण करने की एक उज्ज्वल परम्परा को पुनर्जीवित किया। वैसे यह परम्परा सनातन थी। उसे अधिक कारगर ढंग से उन्नत करने का कार्य भ. श्री महावीर ने किया। 'श्रमण' के नाम जानी जानेवाली इस परम्परा को भ. महावीर ने अधिक प्रतिष्ठा दिलाई।

चातुर्वर्ण समाज व्यवस्था में समाज एक संघ न रहने से उसके असंख्य टुकड़े हो गये। जो जाति, उपजाति के रूप में पहचाने जाने लगे। इनमें परस्पर सौहार्द सामंजस्य का लोप हो गया। केवल आवश्यकतानुसार परस्पर व्यवहार होता, परन्तु ऐसे बाजारी व्यवहार में व्यक्तिगत आत्मीयता नहीं रहती। इसका कारण विषमता? इस प्रकार की सामाजिक विषमता को दूर करने का कार्य प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने किया।

श्री ऋषभदेव वैरागी थे ऐसी एक भावना है परन्तु इस पृथ्वीतल के वे पहले कर्मयोगी थे यह भुला दिया जाता है। कृषि करना, मानव समाज की वसाहत की स्थापना करना, परस्पर एक दूसरे की सहायता के लिए पूरक उद्योगधंधे करना, इस निमित्त से लुहार, कुंभकार, आदि कारीगरों की कृषिप्रधान प्रदेश में स्थापित करना, यह सब प्रेरणा मानव समाज को सर्वप्रथम श्री ऋषभदेव ने दी। इस प्रकार की भौतिक सुधारणा करके न रुकते हुए आगे जाकर वैरागी जीवन में उन्होंने अध्यात्म के द्वारा 'चतुर्विध' समाज व्यवस्था का उपदेश किया, श्रावक श्राविका श्रमण, श्रमणी ऐसी आचार धर्मपर आधारित समाज व्यवस्था सर्वोदय



की गंगोत्री थी। इस प्रकार सर्वोदय की परम्परा प्रारंभ की जो 'श्रमण परम्परा' के नाम से निरन्तर प्रवाहित रही। वातुर्वर्ण्य को नकारने वाली और सभी में समताभाव जागृत करने वाली यह परम्परा चालू तो रही परन्तु आगे चलकर उसमें हित शत्रुओं के द्वारा असंख्य बाधायें उत्पन्न करने से होनी चाहिए वैसी गतिमान और स्फूर्त नहीं रही। उसे गतिमान करने के युगप्रवर्तक कार्य भ. महावीर और बुद्ध ने किया।

भ. महावीर के समय में 'सर्वोदय' शब्द अस्तित्व में नहीं था। बाद में इस शब्द से जो जाना गया, उसे सबसे पहले आचरण में लाने वाले तीर्थंकर महावीर जो इस सर्वोदय की परम्परा के एक श्रेष्ठ और करीब करीब २५-२६ सौ वर्षों में ज्येष्ठ पुरुष थे। इसवी सन के द्वितीय शतक में जैनाचार्य समन्तभद्र ने इस शब्द का सर्वप्रथम लिखित उल्लेख किया।

'अप्प इव सव्व भूयेसु' महावीर की परम्परा ने प्राकृत में तो 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' ऐसा संस्कृत में जो कहा गया वह सर्वोदय का ही सारभूत तत्त्व है अपने अनुसार सभी जीव जीते हैं इसका मतलब सर्व जीव सम-समान है। सभी जीव ही नहीं परन्तु सभी अजीवों में भी जाना-माना गया है, वह समभाव सर्वोदय के लिए प्रेरणा देता है। 'सव्व भूयप्पभूवस्स समं भूयाइं पासवो' इस दशवैकालिक के सूत्र का अर्थ भी क्या है? (पभूव : पभूत : समुदाय) अर्थात् सब जीवों को अपने समान समझना। ऐसा समझने वाले जीवात्मा परमात्मा होते हैं। परमात्मा सृष्टि के प्रथम क्षण में नहीं, प्रारंभ के आविष्कार में नहीं बल्कि वह प्रत्येक जीव व व्यक्ति में रहे। अर्थात् परमात्म पद यही प्रत्येक व्यक्ति। जीव की चरम उपलब्धि है। जीवात्मा का आत्मा मे अर्थात् आत्मा का परमचैतन्यमय मूल स्वरूप में संस्करण अर्थात् उस जीव का उदय यही जीव का उद्धार है। इस प्रकार सभी जीवों का उद्धार अथवा उदय ही सर्वोदय, जिसके लिए भ. महावीर ने अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया।

भ. महावीर ने स्वयं का उद्धार तो किया ही, साथ ही साथ असंख्य जीवों का उद्धार किया, ऐसे अनेक उदाहरण भ. महावीर के चरित्र ग्रन्थ में पृष्ठपृष्ठ पर लिखी गई हैं।

संस्कृत के माध्यम से ज्ञात ज्ञान के द्वार जन सामान्य के लिए उस समय तथाकथित शास्त्रकार और पंडितों ने बंद कर दिये थे। भ. महावीर ने आगे आकर ज्ञान को जनसामान्य के लिए प्राकृत अर्थात् जनसामान्य की भाषा में विस्तृत किया। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित विद्वद्वर और संस्कृत के कट्टर पुरस्कर्ता प्रखर अभिमानी इंद्रभूति गौतम इस श्रेष्ठब्राह्मण को श्रमण बनाकर उसके द्वारा भ. महावीर ने प्राकृत में प्रतिबोध देने का चमत्कार किया, इंद्रभूति गौतम भ. महावीर के मात्र पहले शिष्य शिष्योत्तम प्रथम गणधर ही

नहीं थे अपितु वे ुनके भाष्यकार भी थे। सर्वोदय के लिए स्थापित वह पहला स्तंभ था।

जाति निरपेक्ष समाज व्यवस्था में गृहस्थी जीवन को श्रावक, श्राविका और संन्यस्त जीवन के श्रमण श्रमणी इस प्रकार एकंदर ऐसे चार प्रकर का व्रती समाज भ. महावीर ने बनाया था। स्वयं को प्रतिष्ठित समझने का उस समय समाज ने जिनको दुत्कार दिया वह हरिकेशी अथवा तथाकथित शूद्र चांडाळ को भ. महावीर ने अपने चतुर्विध संघ में सम्मान देकर उसे श्रमण बना लिया। यह घटना सामान्य नहीं हैं।

'कम्मुणा बंभणो होई,
कम्मुणा होई खतिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ
सुद्दो हवइ कम्मुणा।।

कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है। मनुष्य जन्म से ही नहीं कर्म से ऊँच नीच होता है। यह भ. महावीर ने हरिकेशी का उद्धार करके दुनियाँ को दिखा दिया। हरिकेशी का उद्धार सर्वोदय के फलस्वरूप हुआ और अन्त्योदय का श्रीगणेश बना।

दास प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई वह भी भ. महावीर ने। अंग देश की राजधानी चम्पानगरी से अपहरण की गई राजकन्या चंदना को दासी बाजार में बेच दिया गया, उसी के हाथ से कोदों का आहार लेकर एक सौ पचास दिन के दीर्घ उपवास का पारणा करनेवाले मुनि महावीर एक अद्वितीय पुरुष थे। वे सर्वोदय के महामन्त्र



को आचरण के द्वारा प्रस्थापित करनेवाले असामान्य इतिहास पुरुष थे। 'सती' शब्द का तात्कालिक रूढ अर्थ समाप्त करके सती साध्वी यह जोड़ शब्द रूढ करनेवाले और चंदनबाला को 'श्रमणी संघ की मुख्य आर्यिका' पद प्रदान करनेवाले अन्य अनेक स्त्रियों को सती-साध्वी के सिंहासन पर आरूढ करनेवाले भ. महावीर एकमेव पुरुष तो थे ही। परन्तु सर्वोदय के सर्वश्रेष्ठ प्रस्थापक थे।

सर्वोदय के लिए लगातार जूझने वाले महावीर तीर्थंकर परंपरानुसार समवसरण के द्वारा समता, समभाव, श्रम-प्रतिष्ठा दमन, शमन का प्रतिबोध देते और उस वर्तुलाकार 'समवसरण' प्रवचन सभा में चींटी, कीटक पशु-पक्षिओं को मनुष्यों के समान ही सहभागी होने का अवसर प्राप्त हो रहा था।

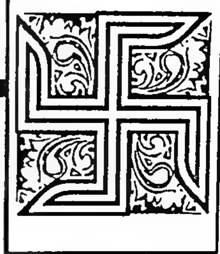
श्रमण महावीर सच्चे अर्थों में श्रमण थे। सर्व समाज के लिए श्रम करनेवाले 'समन' मानव समाज के स्वास्थ्य व सुख को दूर करनेवाले राग, द्वेष, लोभ, मोह, मायादि विकारों पर विजय करनेवाले 'शमन को। इसीलिए 'अप्प इव सव्व भूयेसु' ही उनके जीवन की पीठिका थी। अपने को जो चाहिए वह दूसरों को भी चाहिए। जो अपने लिए अच्छा नहीं वह दूसरों को भी अच्छा नहीं है, इस प्रकार की भावना ही धर्म। धर्म अर्थात् शास्त्र नहीं, क्योंकि शास्त्र विचारों पर आधारित हैं तो धर्म आचार-पर। अपने समान सबको मानना,



समझना और तदनुसार बोल-चाल व्यवहार होना आचार धर्म है, समभाव से करुणा का जन्म होता है, करुणा समता का स्थायी भाव है, दया प्रेम, विश्वबंधुत्व सहृदयता ये सभी करुणा समता का स्थायी भाव है, दया प्रेम, विश्वबंधुत्व सहृदयता ये सभी करुणा के ही विविध स्तरीय विविध रूप हैं। समभाव और करुणा का अटूट संबंध है। वह सर्वोदय की प्रेरणा देती है। इसीलिए इंद्रभूति गौतम जैसे द्विजश्रेष्ठ हरिकेशी जैसे चाण्डाल, चंदना जैसी अपहृता सर्वोदय की दिशा में जानेवाले समभाव को समवसरण में समान अवसर देकर सभी को एकत्र लाता है। शापितों शोषितों को आश्वस्त करता है।

श्रमण धेष्ठ महावीर के चतुर्विध संघ में मगध के श्रेणिक बिंबसार जैसे तपश्रेष्ठ के साथ अवंती के चन्द्रप्रथित, वत्स देश का शताविक आदि अनेक राजाओं को अभयकुमार, मेघकुमार, नंदिषेण जैसे राजपुत्रों को, मृगावती, शिवादेवी जैसी राजरातियों को, सुभद्रा, सुलसा जैसी सामान्य स्त्रियों को, आनन्दश्रावक, परिव्राजक स्कंदरु, कुंभकार सद्दालपुत्र, सौमिल ब्राह्मण, इसी प्रकार ी अर्जुनमाली रोहणियडाकू जैसे खूनी डाकुओं और अन्य अनेक उपेक्षितों को स्थान प्राप्त था। श्रमण, समन शमन के सामने 'शरण' में जाते हेतु सभी जीवों को समवसरण में प्रवेश और स्थान था। और इसके लिए ही सर्वोदय का महान और महायशस्वी प्रयोग था। इस प्रयोग से ऊँच नीच, राजा-रंक, नर-नारी, शूद्र-श्रेष्ठ, जाति-पंथ, वर्ण-वर्ग के सभी भेद गल गये थे। पिछडा हुआ कोई न रहे इसके लिए समवसरण एक क्रान्तिकारी अभियान था। श्रमण-विहार-भ्रमण करते है इसलिए 'श्रमण-परंपरा' केवल भ्रमण परम्परा नहीं थी। बल्कि आगे आगे जानेवाली 'संक्रमण-परंपरा थी राजगृही, नालंदा, चम्पा, वैशाली, कौशाम्बी, मिथिला आदि स्थानों में भरने वाले 'समवसरण' संक्रमण के ऊर्जा केन्द्र थे। तीर्थंकर शासित चलते-फिरते विद्यापीठ थे जिसमें सभी को मुक्त प्रवेश था। जनसामान्य के लिए समवसरण ही विद्यापीठ भी और ज्ञानियों के लिए भी ये विद्यापीठ ज्ञानीपीठ थे।

ऐसे अनेक समवसरण के द्वारा भ. महावीर ने अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहादि व्रतों का प्रतिपादन किया। अनेकान्त का विश्वकल्याणकारी सिद्धान्त प्रतिपादन किया। समस्त शुभाशुभ कर्मबन्धनों से मुक्त होने के लिए कर्म सिद्धान्त का विवेचन किया, यह सब सभी जीवों के उद्धार हेतु अर्थात् सर्वोद के लिए ही। कीचड़ में उत्पन्न और जलाशय में रहते हुए कमल, जल और कीचड़ में अलिप्त मुक्त रहता है। ऐसे निर्मल भव्य जीवों के उद्दिष्ट सर्वोदय का चरम लक्ष होता है।इस प्रकार का जनजागरण प्राणीमात्र के लिए महामानव महावीर ने समवसरण की दिव्यध्वनि के माध्यम से समाज प्रबोधन किया।



इस प्रकार समवसरण सर्वोदय की सर्वोत्तम व्यासपीठ था। इसीलिए इस व्यासपीठ से महायोगी श्रेणिक बिंबसार का सारथी नाग इसकी सुस्वभावी, सुशील, पत्नी सुलसा धाविका को 'धर्मलाभ कहना' उसके ही हित शत्रु अंबड के द्वारा भेजता है और 'चम्पानगरी से राजगृही आऊँगा तब तेरे दर्शन करूंगा' ऐसा समाचार देता है। इस प्रकार के दृष्टान्तों के मूलस्वरूप के अध्ययन करके और अभ्यास/साधना करके उसमें मनस्वी भव्यत्व अनुभव ग्रहण करने जैसे हैं। और उस अनुभव को यथाशक्ति जीवन में उतारने योग्य हैं।

'खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा समंतु मे। मित्ती मे सव्वभूयेसू, वेरं मज्झ न केणई'' इस प्रकार दुनिया के समस्त जीवों से प्रार्थना करके 'मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें, पृथ्वीपर सभी से मेरी मैत्री है मेरा कोई शत्रु नहीं है। ऐसे वचन, व्यासपीठ से सर्व जगत को नम्रता के साथ कहता है। इसके पीछे सर्वोदय की अत्यन्त तलस्पर्शी भावना है विलक्षण आस्था हैं। दया, क्षमा, शान्ति, सर्वोदय के ही लोकोत्तर प्रतीक शब्द है।

पृथ्वीपर से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जितने जीव हैं उनमें पृथ्वीकाय जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, और वनस्पतीकाय के रूप में रहने वाले पाँच प्रकार के 'पंचास्तिकाय' जीव हैं। उन सभी सामान्य जीवों के विषय में भी इस महामानव को कितनी असाधारण आत्मीयता थी। यह उनके द्वारा प्रतिपादित आहार संबंधी नीति-नियमों से स्पष्ट होता है। पंचमी, अष्टमी, चर्तुदशी आदि तिथियों की हरी (सचित्र) शाक-सब्जी, कंदमूल, आदि का आहार में निषेध किया। इसके पीछे एकेन्द्रिय जीवों के प्रति करुणा भावना थी। व्रतविधान मात्र में प्रदर्शन नहीं है अपितु सर्वोदय का दर्शन होता है। करुणापूर्वक कायिक, वाचिक, मानसिक हिंसा का निषेध, मानने से कम से कम हिंसा मतलब कम से कम विनाश, कम से कम विनाश अर्थात् सर्वोदय, यही इसका प्रतिबोधन है। जीव एक दूसरे पर अवलंबित होने से 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' इस महामन्त्र में भावानुसार परस्पर प्रेम करने का सन्देश है। सर्वोदय का ही एक अंग और नैसर्गिक जीव-सृष्टि में सन्तुलन सिद्ध करनेवाला पर्यावरण का महत्त्व प्रस्थापित होता है। पर्यावरण इस प्रातिनिधिक शब्द में यही महान आशय है, जो कि सर्वोदय से संबंधित है। आजकल की दुनिया को प्रदूषित करनेवाली पर्यावरण की समस्या को भ. महावीर ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व दूरदर्शिता से जान लिया था इस दृष्टि से वे एक सच्चे दूर द्रष्टा थे।

भ. महावीर का उज्जवल चरित्र सर्वोदय का ही इतिहास है। सर्वोदय की यह तेजस्वी गाथा है जो राख में रहने वाले पक्षी के अनुसार आकाश की ओर उड़ान भरने की उत्तेजना (प्रेरणा) देता है।





साधु और समाज

■ श्री आदर्शऋषिजी

साधु और समाज का संबंध क्या है? एक दूसरे का दायित्व क्या है? इस पर विचार करने का अब वक्त आ गया है। किन्तु अभी भी ऐसे विषयों पर सोचने से हम कतराते हैं, दूर भागते हैं। यह एक आश्चर्य है!

यह विषय काफी गहरा, गंभीर, विस्तृत और विवादास्पद है। संक्षिप्त, सूत्र रूप में हम इस पर विचार करेंगे।

यह एक वास्तविकता है कि साधु आत्मार्थी होता है। सभी धर्मों में यह माना गया है कि साधु का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है।

दूसरी ओर यह भी एक हकीगत है कि भारतीय समाज को साधु-समाज ही मार्गदर्शन करता आया है। आज जो भी समाज परम्पराए है, रीति, रिवाज, नियम है, साधुओं का उसमें कही न कही योगदान रहा है।

भारतीय संस्कृति का उद्गम भी तपोवन से हुआ है। जहाँ ऋषि मुनि तपस्या करते थे। संस्कृति के प्रवर्तक हमारे ऋषि-मुनि थे। वे जंगल में रहते थे पर राज्य का संचालन, राजा को मार्गदर्शन ऋषि-मुनि किया करते। कुछ प्रत्यक्ष ही समाज, राज्य के कारभार में हस्तक्षेप करते थे। कुछ अप्रत्यक्ष रूप में। किन्तु जो किसी भी रूप में समाज-राज्य में हस्तक्षेप नहीं करते थे, वे भी समाज के लिए एक जबरदस्त प्रेरणा उदाहरण बन जाते। वे समाज में सक्रिय नहीं होवे हुए भी समाज के लिए उच्च आदर्शों के प्रतीक माने जाते।

भ. महावीर ने अपने संघ में साधना के दो मार्ग की व्यवस्था दी। पहला मार्ग है समाज के बीच में रहकर स्व-पर का कल्याण करना, जिसे स्थविर कल्प की संज्ञा दी। बहुत चिंतन पूर्वक भ. महावीर ने साधक की योग्यता, शक्ति (क्षयोपशम) को देखकर ये दो मार्ग तय किए।

जिनकल्पी साधक अपनी साधना में किसी का भी आलम्बन स्वीकार नहीं करते। स्थविरकल्पी-साधक अपनी साधना में समाज को औरों को सहयोगी बनाते है।

भ. महावीर का शासन (तीर्थ) चार स्तंभ पर आधारित है। उसमें दो स्तंभ श्रावक और श्राविका है।

भ. महावीर के निर्वाण के पश्चात् संघ (समाज) पर, वैसे ही साधु समाज पर काफी संकट आए। दोनों उस समय एक दूसरे के लिए बने।

इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि साधु और समाज का आपस में क्या संबंध है, और क्या होना चाहिए।

समाज की उथल-पुथल का साधु समाज पर प्रभाव पडता है। यह एक सत्य

हकीगत है। उसे कोई नकार नहीं सकता। युगीन परिस्थितियाँ साधु-समाज को काफी प्रभावित करती हैं, बदलती रही हैं। समाज पहले बदलता है, बाद में साधु-समाज पर उसका असर होता है। इस बदली हुई परिस्थिति में आचार विचार, मूल्य परिवर्तित हो गए हैं।

ऐसी स्थिति में दोनों का एक दूसरे की ओर देखने का दृष्टिकोण बदल गया है। जो काफी खतरनाक है। साधु और समाज दोनों ही अपनी भूमिका क्या है यह भूल गए हैं। इसी कारण ये दोनों ही गलत दिशा में जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में दोनों एक दूसरे को दोषी ठहराएँ यह स्वाभाविक है। किन्तु इससे समस्या हल नहीं होगी। समस्या का समाधान समझपूर्वक ही संभव है।

अभी तक साधु और समाज का संबंध सिर्फ पूज्य और पूजक का रहा है। मार्गदर्शक का काफी कम।

समाज जिसे केवल पूजता है, मात्र जय-जयकार करता है, उसके प्रति अपने मन में एक प्रतिमा स्थापित कर लेता है। मनुष्य समाज का एक बार किसी के बारे में अपने मन में प्रतिमा बना लेता है, धारणा बनाता है, तो उसमें परिवर्तन वह मंजूर ही नहीं कर पाता। परिवर्तन सृष्टि का सनातन सत्य है। यह जानते हुए भी किसी विषय में दृढ़ धारणा बना लेना प्रकृति विरुद्ध है, साथ ही अज्ञान का द्योतक है।

इसी मोड पर आकर साधु और समाज में संघर्ष की भूमिका दिखाई देती है। श्रावक समाज अपने मन में स्थापित पूज्य प्रतिमा में कोई परिवर्तन नहीं चाहता। इधर साधु समाज भयंकर परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। दोनों में कही मैल बैठ ही नहीं रहा। कोई ऐसे आसार भी नजर नहीं आते कि दोनों बैठकर कुछ सोचें, कोई रास्ता निकाले। इस संघर्ष में दो बातें हो रही हैं जैन धर्म की अपरिमित हानि। दूसरा अनुयायी वर्ग का दूर होते जाना।



समस्या का हल कैसे हो? प्रश्न बड़ा आसान है, समाधान उतना ही कठिन है, क्योंकि धर्म अभी भी उन कुछ लोगों के हाथों में है जो धर्म को ही नहीं समझ पाए। धर्म की व्याख्या उन्हें गलत सिखायी गई। वही उन्होंने रट रखी है। उसी को पकड़ बैठे हैं। ये तथाकथित धार्मिक ही धर्म के विकास में बाधक बने बैठे हैं। वे समझ ही नहीं रहे है वक्त की रफ्तार को। साधु-समाज ऐसे भागा जा रहा है कि उसे सोचने की भी फुरसत नहीं। ऐसी स्थिति में दोनों में संवाद कैसे सधेगा? समस्या के समाधान के लिए संवाद की जरूरत होती है। पर समस्या से ग्रस्त कोई होना नहीं चाहता। सभी समस्या से मुह चुराते हैं, पलायन करते है। उस कबूतर की तरह जो बिल्ली को देखकर आँख मीच लेता है। आज स्वयं साधु-समाज अपनी समस्याओं में इतना उलझा हुआ है कि वह समाज के प्रश्न कैसे हल कर पाएगा? मार्गदर्शन दे सकेगा?



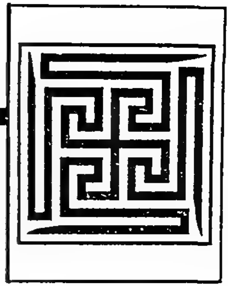
साधु समाज, समाज के प्रति जो उत्तरदायित्व है उसे ठीक ढंग से निभा नहीं पाया है। जैन समाज को एक नेतृत्व देने में असफल रहा है। कोई भी समाज बिना सशक्त नेतृत्व के भाव में प्रगति नहीं कर सकता। समाज को नेतृत्व देना, संगठित करना तो अलग रहा उल्टे समाज को (साधुओं ने) सम्प्रदायों, पंथों में विभक्त कर दिया। अपनी प्रतिष्ठा अपनी पूजा, अपने स्वार्थ, गुरुड़म को चलाने के लिए साधुओं ने क्या क्या नहीं किया? कभी सम्प्रदाय के नाम पर, कभी झूठी मान्यता के नाम पर कभी क्रियाकांड के बलपर , तो कभी बाप-दादा गुरु का वास्ता देकर, श्रावक समाज को साधुवर्ग नचाता रहा है। इसी कारण जैन समाज कई पंथों सम्प्रदायों में बंटा हुआ है। जो बंटे हुए है वे क्या कर पाएंगे? वे सिर्फ रांग-द्वेष की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे सकते हैं, इससे अधिक उनकी कोई क्षमता नहीं है।

आश्चर्य इस बात का है कि ये काम उन लोगों ने किया जो महावीर के अनुयायी हैं। जो अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह के प्रतीक माने जाते हैं। महावीर का नाम लेकर ही महावीर के अनुयायियों मे फूट डालना, क्या यह महावीर के प्रति अपराध नहीं है? और यह अपराध बड़ी सफाई से साधु वर्ग वर्षो से करता रहा है।

एक अपरिग्रही साधु, श्रावक-समाज को अपनी संपत्ति मान कर मन चाहा वैसे उपयोग करता रहा इससे महावीर के धर्म की बहुत बड़ी हानि हुई है।

श्रावक समाज भी अपना कर्तव्य भूल गया। वह सम्प्रदाय पंथ की भूल-भूलय्या में भटक गया। गुरुजी ने कहा शास्त्र में ऐसा लिखा है, उसने विश्वास कर लिया। अपनी मान्यता है, उसके लिए चाहे जो करने के लिए तैयार हो गया। श्रावक समाज भी यश-लोभ के चक्कर में लाखों-करोंडों रुपये बरबाद करता रहा है। इन पचास वर्षों में श्रावक समाज ने व्यर्थ के कार्यों में अरबो-रुपये खर्च किए उसकी मिसाल नहीं। विश्वास नहीं होता कि यह यही वर्ग है जो बुद्धिमान माना जाता है। जो पैसा कमाने में बड़ा ही बुद्धिशाली है। फिर खर्च करने में उसने बुद्धिमानी का परिचय क्यों नहीं दिया? आज तक जो पैसा खर्च किया गया उसको सही ढंग से सही कार्य में उपयोग किया जाता तो जैन समाज का इतिहास, भविष्य बहुत ही शानदार होता। वह सुन्दर तरीके से अपने समाज और देश के लिए उपयोगी भूमिका निभा पाता। ऐसा हुआ नहीं। इस बात का बड़ा गहरा दुःख है। सबसे बड़ा नुकसान समाज के तथाकथित उन नेताओं ने किया जो अपनी नेतागिरी के लिए चाहे जैसा समाज का उपयोग करते रहे। गिरगिट की भांति रंग बदलते रहे। धर्म स उन्हें कोई लेना देना नहीं। धर्म उनके जीवन में ही नहीं। ऐसे लोगों के साथ साधु वर्ग मिलकर समाज को हंमेशा गलत रास्ते पर ले जाते रहे।

समाज के साथ वर्षो से खिलवाड़ होता रहा और समाज निष्क्रिय बना उदासीन अपने को (लुटते) बिखरते देखता



रहा। यह बात तय है कि जब तक सारा-समाज (हर घटक) सक्रिय नहीं बन जाता, वहाँ तक कोई क्रान्ति नहीं हो सकती। न कोई समाज में परिवर्तन हो सकता। क्यों ऐसा होता रहे कि धर्म तो सर्व साधारण जनता करती रहे, धर्म को टिकाए रखे, मेहनत खर्च करे और वाहवाही नेता लोगों की हो, नाम उनका हो, मलाई वे चट कर जाएँ, यह समाज को समझ लेना होगा कि वर्षों से उसके कंधों का उपयोग कर नेता गण बनने की कोशिश करते रहे, अब उसे सावधान हो जाना चाहिए। अब कोई उसका गलत इस्तेमाल न करे ऐसी जागृति समाज में आनी चाहिए।

साधु समाज भी समाज की उपेक्षा कर तथाकथित नेताओं की खुशामदी में लगा हुआ है। यह स्वयं का अपमान ही नहीं, पवित्र मार्ग का, उद्देश्यों का, सिद्धान्तों का साथ ही समाज का भी अपमान कर रहा है। उसे चिन्ता अपने स्वार्थ, संस्था, सम्प्रदाय, परम्परा की नहीं, समाज की करनी चाहिए। जो गलत तत्त्व है, व्यक्ति है उसे गलत कहने का साहस करना होगा, यही उसकी समाज, महावीर के प्रति प्रामाणिकता होगी. यही उसका कर्तव्य है।

साधु समाज को अब समय रहते अपने आप को एक निश्चित दिशा देनी होगी। स्पष्ट विचार धारा, स्पष्ट व्यापक उद्देश्य स्व-पर हित में स्वीकार करना ही होगा। एक महत्त्वपूर्ण बात कहना चाहूंगा, अगर साधु समाज अध्यात्म का पूर्ण नेतृत्व समाज को नहीं भी दे पाया तो कोई बात नहीं किन्तु समाज को नैतिक नेतृत्व, सही दिशा, मार्ग, संगठन, एकता के सूत्र में भी बांध सका तो इससे बड़ा कोई कार्य नहीं होगा। यही समाज की आवश्यकता है, वक्त की पुकार है।

समाज को भी जागृत होना होगा, वक्त को पहचानना होगा अब हठ धर्मीसे काम न चलेगा। संकुचितता, संप्रदाय के प्रति मोह, कट्टरता, आत्मविकास के बजाय विनाश की ओर ले जायेगी। प्राथमिकता अपनी सम्प्रदाय, पंथ, मान्यता धारणा को न देकर वह धर्म को महावीर के सिद्धान्तो को दे। इसमें ही समाज का, स्वयं का कल्याण सन्निहित है।



- *शब्द-रूप रसादि के भोग शल्यरूप हैं, विष हैं। इनकी अभिलाषा करने वालों को अनिच्छा से दुर्गति में जाना पड़ता है।*
- *महान् आत्माएँ विषयों से दूर भागती हैं तथा उनसे विमुख होकर अपनी आत्मा के कल्याण में जुट जाती हैं।*
- *विषयों से विमुख होना ही आत्मोन्नति तथा आत्मशुद्धि का प्रथम चरण कहलाता है।*



परिवर्तन के बढ़ते आयाम

■ साध्वी निधिश्री

आज का युग विचार-प्रधान युग है। जो केवल सत्य को ही स्वीकार करता है, अनर्गल बातों को नहीं। विज्ञान और शिक्षा ने मानव को बौद्धिक-विकास की चरम सीमा का स्पर्श करा दिया है। पुराने लोग नास्तिक उसे कहते थे जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता था, परंतु नये लोग उन्हें नास्तिक कहते हैं जिसे स्वयं में विश्वास नहीं।

एक युग था मान्यता का, उसमें मान्यता के आधार पर धर्म चलता था। आज वैज्ञानिक युग है, यह तार्किक युग है। इस युग में धर्म भी वही चल सकता है जो प्रयोगसिद्ध और हमारे अनुभव का विषय बनें। जो अनुभव में नहीं उतरता, जिसका परिणाम हमें प्रतीत नहीं होता, जिसका फल हमें उपलब्ध नहीं होता। उस धर्म के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि रखनेवाले व्यक्ति का कोई आकर्षण नहीं हो सकता।

धर्म की परिभाषा भी हमें आधुनिक ढंग से करनी है। क्योंकि आधुनिक ढंग से दिया गया मान्य है। अतः धर्म की परिभाषा सुंदर जीवन जीने की कला। पर सही ढंग से उसे नहीं समझने से आज धर्म स्वयं समस्या बन रहा है। व्यवहार और धर्म के बीच में इतनी दरार पड गई है कि उससे धार्मिक बहुत बदनाम हो गया है और हो रहा है। और अनास्था भी बढ़ती जा रही है।

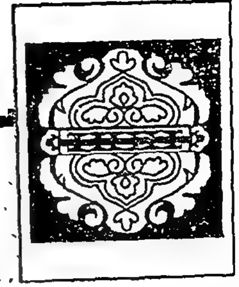
आज धर्म को स्वीकार किया उपासना, पूजा और क्रियाकांड के रूप में। अब समय हुआ। ब्राह्ममुहूर्त में उठो, माला जपो, मंदिर जाओ, प्रार्थना एवं प्रवचन सुनो। बस, हमारा धर्म समाप्त। यह है हमारे आज के धर्म का चिंतन। धर्म से जो जीवन की दिशा में परिवर्तन आना चाहिए और वह धर्म जो हमारी समस्या का समाधान बनकर प्रस्तुत हो, ऐसा धर्म हमने छोड दिया। इसलिए आज की नयी पीढ़ी में धर्म के प्रति आस्था नहीं रही है। वह देख रहा है कि धर्म करनेवाला व्यक्ति जैसा आचरण और व्यवहार करता है, तो मैं बिना धर्म किए भी कर सकता हूं तो फिर मुझे धर्म करने की क्या जरूरत है? यदि दवा लिये बिना मैं स्वस्थ रह सकता हूं तो फिर दवा लेने की जरूरत क्या है?

आज का धार्मिक, धर्म के मर्म को समझे बिना वह भय और प्रलोभन से धर्म करता है। नरक में जाने का भय और स्वर्ग का प्रलोभन। बात सचमुच टेढ़ी है। आदमी विपर्यय के वात्याचक्र में फंसा हुआ है। धर्म में हम खोते है पर आदमी चाहता है कुछ पाना। विपरीतता है। अन्य क्षेत्र में पाने की लालसा समझ में भी आती है पर धर्म में भी वह सब कुछ पाना ही चाहता है। शिष्य ने गुरु से पूछा "इतने वर्ष हो गये, आपको साधना करते, आपने क्या पाया? गुरु बोले - मैंने पाया कुछ भी नहीं

है और खोया बहुत कुछ है। सब कुछ खोता रहा हूं, मैंने अपने कषायों एवं बुराईयों को खोया है। और मेरी साधना का लक्ष्य भी खोना है।

आज की धार्मिक दुनियाँ इसलिए धर्म करती है कि हमारा परलोक सुधर जायेगा। अब इस सूत्र को बदलने की जरूरत है। आज का सूत्र यह होना चाहिये धर्म करो वर्तमान क्षण सुधरेगा, जीवन का क्षण सुधरेगा। जिस क्षण धर्म किया उसी क्षण में आनंद नहीं मिला तो समझना चाहिये कि हमने धर्म नहीं किया। पर धर्म के नाम कुछ और क्या किया है। वस्तुतः धर्म की कसौटी परलोक नहीं पर इहलोक है।

बीसवीं सदी में धर्म प्राचीनता एवं आधुनिकता के बीच में बंट गया। है। प्राचीनता को महत्त्व देनेवाले कहते हैं। यह पुराना है इसलिए यह अच्छा है, और आधुनिक दृष्टिकोण रखनेवाला कहता है यह नया है इसलिए यह बेहतर है। गतिशीलता जीवन है जहाँ गति है वहाँ परिवर्तन अवश्यंभावी है। जिस पर अतीत ने अपना पर्दा डाला वह प्राचीन बन गया। और उन्हीं अतीत के प्राचीन एवं वर्तमान के आधुनिक जीवन विधाओं से हमारी संस्कृति का निर्माण होता है। संस्कृति वह, जहाँ अतीत वर्तमान एवं भविष्य का समाहार होता है। Methew Arnold ने Culture and Anarchy में लिखा है। कि सत्यं शिवं सुदरं का समन्वित रूप ही संस्कृति है।



आज की बातें कल के लिए प्राचीन बन जाती है। आज का चिंतन-मनन आनेवाले काल के लिए परंपरा बन जायेगा। कई बार हम प्राचीनता को ही हमारे पवित्रता का मानक बना देते हैं। यदि किसी ने प्राचीनता के विरुद्ध कर लिया तो हम धर्म की दुहाई देकर शोर मचाने लगते हैं।

प्रत्येक पदार्थ में नित नई पर्याय का उदय होता है, जिसमें नयापन ग्रहण करने की क्षमता नहीं, वह पदार्थ भी नहीं। यह शरीर भी नित नये-नये कोशों को तैयार करता है। बचपन में नये कोश अधिक बनते है इसलिए बच्चा प्रगति की ओर अग्रसर होता है, वृद्धावस्था में नये कोश का निर्माण हो जाता है इसलिए वहाँ विकास का अवसर नहीं रहता। वह प्राणवान समाज है जिसमें युगानुकूल स्वस्थ परिवर्तन कर देने की अपनी क्षमता है। नित नई लहर का उदय पानी को निर्मलता प्रदान करती है।

प्राचीनता तो वस्तुतः परंपरा है। और परंपरा एक जीवन प्रक्रिया जो अपने परिवेश में संग्रह तथा त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर क्रियाशील रहती है। परंपरा पर से पर तक अर्थात पहले से दूसरे, दूसरे से तीसरे और आगे आगे तक पहुंचनेवाली एक अनवरत विकाससमान श्रृंखला जिसमें निरन्तर्य एवं तारतम्य दोनों विद्यमान हैं। परंपरा एवं युगबोध के पश्चात् द्वन्द्व में परंपरा के



जर्जर रूढ तत्त्व उससे निष्क्रसित होते रहते हैं एवं सार्थक तथा उपयोगी तत्व जुडते हैं।

परंपरा की प्रकृति परिवर्तनशील हैं। जब तक उसमें युगानुरूप परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं परिमार्जन होता रहेगा उसका स्वरूप स्वस्थ बना रहेगा। एकनीतिवाक्य में कहा है - ''चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्यन्थेन बुद्धिमान्:'' अर्थात् बुद्धिमान पुरुष एक पैर खड़ा रखता है और दूसरे से चलता है यही खड़ा पैर हमारी प्राचीनता की ओर बढ़ता पैर आधुनिकता है। कितनी बार यह पढ़ा जाता है कि मनुष्य वहीं महान है जो पूर्व पुरुषों के पदूचिन्हों पर चलता है - ''महाजनो येन गतः स पंथा'' किंतु यह नितांत गलत धारणा है कि मनुष्य कभी पीछे लोटकर ठीक हुबहू उन्हीं विचारों को अपनाएगा जो पहले थे। वे विचार उसी युग के अनुरूप थे, हो सकता है उनमें से कुछ अंश ऐसा निकल आए जो आज भी ठीक बैठे परंतु संपूर्णतः वैसा हो, यह असंभव है।

मनोमस्तिष्क की संकीर्णता के कारण यदि हम प्राचीनता और नवीनता के वात्याचक्र में सिने रहे तो हम प्राप्त तो कुछ भी नहीं कर पायेंगे, प्रत्युत अपना विकास खो देंगे। डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि ''सभी मनोभाव के मूल में कुछ पुराने संस्कारों को नए अनुभव की धरातल पर खडा करना हमारा ध्येय होना चाहिये। कोई भी आधुनिक विचारक आसमाँ से उतरकर नहीं आता बल्कि सबके विचार एवं चिंतन की जड़ परंपरा के गहराई में गई हुई होती है। जिस प्रकार सुंदर से सुंदर फूल जड़ से भिन्न अपने अस्तित्व का दावा नहीं भर सकता, कोई भी वृक्ष मिट्टी से भिन्न अपने जीवन का दंभ नहीं भर सकता, इसी प्रकार कोई भी आधुनिक विचारक अपने को परंपरा से नितांत मुक्तक्षेत्र का दावा नहीं कर सकता। परंपरा आधुनिकता को आधार देती है उसे शुष्क और नीरस तथा बुद्धिविलास बनने से बचाती है।

परंपरा यात्रा के बीच पड़ा हुआ अंतिम चरण है जबकि आधुनिकता आगे बढ़ा हुआ गतिशील चरण हैं। ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं परंतु पूरक हैं। परंपरा का नवीनता से विरोध है, यह भ्रामक धारणा है। यथार्थ में परंपरा का विरोध जड़ता एवं रूढिवादिता से ही है। जड़ता की उपासना जब परंपरा के नाम पर चलने लगती है तब परंपरा न रहकर रूढि या कुप्रथा का रूप लेती है। परंपरा में स्पंदन हैं, कुरीति में जड़ता हैं। स्पंदन तब तक होगा जब तक परिवर्तन होता रहेगा।

महाकवि कालीदास ने लिखा है - पदे पदे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः - पग पर जो नवीनता को प्राप्त करता है, रमणीयता का वही रूप है। मानवीय भावों का इस पंक्ति में स्फुट चित्रण हुआ है। मनुष्य सदाकाल नवीनता प्रिय रहा है। वह हर स्थिति में नयापन चाहता है। नया या-

तावरण, नये चेहरे, नये मित्र, नई डिझाईन, नये वस्त्र, नये जेवर, नया मकान, नई विधि नई शैली, नये कानून, नया चिंतन, नया कार्य और नये विचार जीवन के इस कोने तक जा पहुँचता है। इतना ही नहीं आदमी अपने आपको भी हर बार नये ढंग में प्रस्तुत करना चाहता है।

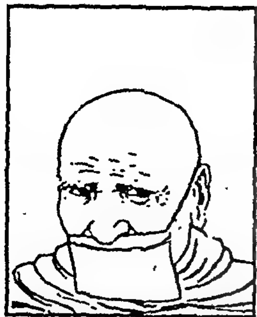
हर नवीनता के साथ जुड़ी हुई होती है आलोचना, निंदा और उपेक्षाभाव। लगता है नवीनता की नियति यही बनी है। इस विरोध को सहकर भी वह अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिये नवीनता चाहता है। परंपरा में परिवर्तन लाने के लिये दूरगामी चिंतन की जरूरत है। कोई चाहे या नहीं चाहे, करे न करे, परिवर्तन को टाला नहीं जा सकता क्योंकि परिवर्तन ही जीवन है। परिवर्तन में देश, काल और परिस्थिति को ध्यान में रखकर दीर्घकालीक चिंतन और विवेक के योग से करना चाहिये। विवेकाभाव में जल्दबाजी में किया गया परिवर्तन दुर्गति का कारण भी बन सकता है।



हमारी आस्था अनेकांत में है। परिवर्तन होना ही चाहिए या नहीं होना चाहिए, ऐसे एकांगी आग्रह में लाभ की संभावना कम है। रूढ़िवादी परिवर्तन को रोकना चाहेंगे और प्रगतिवादी करना चाहेंगे। पर ऐसे में बुद्धिमान अनुकूल चिंतन कर दृढता के साथ परिवर्तन करेगा तो समय के साथ साथ उसका लाभ भी समझ में आ जायेगा। क्योंकि भगवान महावीर ने विवेक को ही धर्म का मूल बताया है। अतः विवेकपूर्वक परिवर्तन होगा तो अवश्य हमारी भावपीढी भी हमारी संस्कृति को अक्षुण्ण रख पायेगी।

■ ■

- *विषयों में अत्यन्त राग ही मन का मैल है और विषयों से वैराग्य होने को निर्मलता कहते हैं।*
- *जिनकी आत्माओं में कषायों की अग्नि धधकती रहती है, उन आत्माओं में सम्यक्ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र का आविर्भाव नहीं होता।*
- *मन में कषायों के प्रवेश करते ही अन्य समस्त सद्गुण एक एक करके बाहर निकल जाते हैं।*
- *क्रोध वह प्रचण्ड अग्नि है, जिसे मनुष्य अगर वश में नहीं कर लेता तो स्वयं को जला डालता है और वश में कर लेने पर उसे बुझा देता है।*
- *क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रांत हो जाती है, स्मृति भ्रांति से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि नष्ट होने पर प्राणी स्वयं नष्ट हो जाता है।*



जाग सके तो जाग

■ साध्वी कृपाश्री

हम देखते हैं आज के आदमी के पास समय कम है, शक्ति सीमित है और जीवन छोटा है। अतः वह किसी भी वस्तु को संक्षिप्त में समझना चाहता है, शीघ्रता से जानना चाहता है। भगवान महावीर ने अपने संदेश को संक्षिप्त रूप में समझाते हुए कहा कि 'जागो' उन्होंने मानव मात्र के लिए जागृति का उपदेश दिया क्योंकि जैसे कुशल तैराक अपने आपको तूफानों से, भंवरों से तो पार निकाल लेता है किन्तु असावधानीवश किनारे के पास आकर डूब जाता है, जैसे पर्वतारोही शिखर को छूने के लिए पर्वत की चढाइयों को तो अच्छी तरह पार कर लेता है। किन्तु शिखर के नजदीक होने पर असावधानी से उसका पैर फिसल जाता है अतः वहां सावधान रहना जरूरी है। मानव जन्म भी भवसागर से किनारा पाने की तरह ही मिला है जहां पग पग पर जागृत रहने की आवश्यकता है। 'जागो' इस शब्द को शब्दरूप से जान लेना अलग बात है एवं इसे अपने जीवन में उजागर कर पाना अलग बात है। जहां तक मस्तिष्क का प्रश्न है हम 'जागृति' शब्द को बड़े आसानी से समझ सकते हैं, जान सकते हैं, दूसरों को समझा भी सकते हैं तथा अपना सारा जीवन भी इस शब्द की चर्चा में बीता सकते हैं किन्तु जब तक इस शब्द के बोध व समझ को नहीं जानेंगे तब तक वह हमारे जीवन में नहीं आ सकता, अतः अब हम चिंतन की आंख से यह देखने का प्रयास करेंगे कि 'जागना' शब्द का अर्थ क्या है? कब जागना चाहिए? जागने के अभाव में हमारा क्या नुकसान हो रहा है? जागने के उपाय क्या है?

जागृति शब्द का अर्थ? - वैसे तो हमें पता है कि हम हर सुबह जागते हैं परन्तु आंखों को खोल लेना ही जागना नहीं है। यह तो बाह्य चक्षु इंद्रिय की बात है कि आंखों का बंद होना नींद है और खोल लेना जागना है। हम तो सोये ही हुए हैं रात तो हम आंख बंद कर के सोते हैं, दिन में आंख खोलकर सोते हैं। रात तो सपने देखने में बीत जाती है और दिन इच्छाओं की पूर्ति में। इच्छा से द्वन्द्व पैदा होते हैं और यह द्वन्द्व ही हमारी नींद का आधार है। हम दो में बटे हैं इसलिए सो गये हैं। मनुष्य सदा ही यह मिल जाय, वह मिल जाय, ऐसा हो जाऊँ, वैसा हो जाऊँ, यह कर लूँ, वह कर लूँ, इसकी दौड में लगा रहता है। इस दौड़ का नाम है काया / इच्छा। यदि कोई इसमें बाधा डालता है तो हमें उस व्यक्ति पर क्रोध उठता है। यदि कोई व्यक्ति धन पाना चाहता है और कोई दूसरा व्यक्ति उससे प्रतियोगिता करता है तो उसे क्रोध आ जाता है। कोई पद पाना चाहता हो और उसमें कोई बाधा डाले तो शत्रुता पैदा होती है और बाधा



तो पड़ेगी ही क्योंकि सभी लोगों की वैसी ही इच्छा है जो कि हमारी इच्छा है। वे भी उन्हीं चीजों को पाने चले हैं जिनको हम पाने चले हैं। जिसको पाने हम निकले हैं, मान लो कि वह हमें मिल भी जाय तो भी द्वन्द्व खतम होनेवाला नहीं है। क्योंकि ऐसी स्थिति में मद पैदा होता है। मद का अर्थ है काम सफल हो गया; अन्य किसी को भी नहीं मिल पाया मुझे मिल गया। बात यही पर समाप्त नहीं होती। जिसका अहंकार तृप्त हो गया उसे लोभ पैदा होता है। (जहां लाहो तहा लोहो) जैसे जैसे लाभ बढता है लोभ बढता चला जाता है। लोभ का मतलब है जो मुझे मिल गया वह तो मेरे पास रहे ही और ज्यादा मुझे मिल जाय, जो मंत्री हो जाय वह मंत्रीपद से नीचे नहीं उतरना चाहता बल्कि मुख्यमंत्री बनना चाहता है। जहां बैठा है वहां तो पकड़ कर बैठा रहे और आगे कोई बैठा हो तो उसको धक्के देता रहे कि कोई जगह खाली हो जाय और वह आगे पहुँच जाय। फिर दूसरी इच्छा उत्पन्न होती है और वही चक्र इच्छा, क्रोध, अहंकार और लोभ। इस नींद में हमारा सारा जीवन इस कदर व्यतीत होता चला जा रहा है कि जब कभी व्यक्ति अपनी अंतिम घडियां गिन रहा हो तब होश आ पाता है कि जीवन व्यर्थ ही बीत गया, इसीलिए 'जागो' शब्द हमें जागने का संदेश दे रहा है।

कब जागें? ऐसा भी नहीं है कि हमने जागने का प्रयास ही न किया हो। जागने की जिज्ञासा को लेकर कई बार पुरुषार्थ भी किया है किन्तु अभी तक सफल नहीं हो पायें और हमारा मन यह जानता है कि प्रयास करने पर भी यदि सफलता नहीं मिल रही है तो जरूर हमारी क्रिया में कहीं न कहीं कोई भूल है। और भूल यह है कि हम अपने जीवन में जागते तो अवश्य हैं किन्तु या तो समय से पहले जागते हैं या समय निकल जाने के बाद जागते हैं, समय पर नहीं जाग पाते। और होता यह है कि जो समय से पहले जागते हैं वे आलस्य में पडे रह जाते हैं, जो समय निकल जाने के बाद जागते हैं वे पश्चात्ताप में लग जाते हैं। जागने का क्षण तो वर्तमान का क्षण है। जैसे क्रोध करने से पूर्व तो हम बड़े संकल्पशील रहते हैं कि अब कभी क्रोध नहीं करेंगे किंतु जब हम क्रोध करते हैं तब हमें होंस नहीं रहता कि हम क्रोध कर रहे हैं व क्रोध शांत होने के बाद गहन पश्चात्ताप में डूब जाते हैं। समय पर न जागने से हमारी नींद गहरी होती चली जाती है, जागने में श्रम तो होगा ही क्योंकि हमारी नींद की आदतें बहुत पुरानी है, लंबी है, अतिप्राचीन है।

क्यों जागें? जागना इसलिए आवश्यक है क्योंकि हम नींद में अपना ही नुकसान कर रहे हैं। एक रूपक के माध्यम से बात स्पष्ट हो जायेगी। जैसे एक आदमी ने एक बहुत सुन्दर बगीचा लगाया लेकिन एक अड़चन शुरू हो गई कि कोई रात में आकर बगीचे के वृक्ष तोड़ जाता, पौधे उखाड जाता और सुबह सारा बगीच आधी उजडी हालत में आ जाता,



शक हुआ कि शायद पडौसी ईर्ष्या कर रहे हैं। अतः उसने आदमी रखें, जासूस लगाए लेकिन पता लगा कि कोई पडौसी गडबड नहीं कर रहा है। तब उसे शक हुआ कि हो न हो कोई भूतप्रेत या दुष्टात्मायें उपद्रव कर रही हैं। उसने गंडे ताबीज बंधवाये पर कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। तब वह बहुत घबडा गया। एक फकीर गांव में आया था उसके पास गया अपनी सारी कथा सुनाई, फकीर ने कहा तू एक काम कर, ठीक आधी रात का अलार्म अपनी घडी में भर दें और सात दिन तक जब अलार्म बजें तो जागकर पांच मिनट अपने आसपास देखना व सो जाना। सात दिन में कोई घटना तुझे दिखाई दें तो मेरे पास आ जाना। उसे कुछ भरोसा न आया कि अलार्म इसमें क्या करेगा, फिर भी अलार्म भरके घडी में सो गया। तीन दिन तो कुछ भी न हुआ। लेकिन चौथे दिन उसने पाया कि जब अलार्म बजा तो वह बगीचे में खडा अपने झाड उखाड़ रहा था, फूल, पत्ते तोड़ रहा और अपने बगीचे को अपने ही हाथों तहस नहस कर रहा था तो भागा हुआ गया फकीर के चरणों में और कहा आप अगर मुझे न जगाते तो मैं न मालूम कितने व्यर्थ उपाय करता। पर मुझे पता चला कि कोई दूसरा हानि नहीं पहुँचा रहा था, मैं ही अपनी नींद में अपने वृक्षों को उखाड़ रहा था और ऐसी ही दशा प्रत्येक की है। हम खुद ही अपनी नींद में अपने जीवन की बगीचा को उजाडते हैं, दुःख, पीडा पाते हैं और इसीलिए हमारा जागना आवश्यक हो गया है।

कैसे जागें? भ. महावीर ने जागने के उपाय भी बताये हैं क्योंकि जागने के लिए जागे हुए व्यक्ति का साथ चाहिए। जैसे कोई व्यक्ति सोया हुआ हो और हम उसे जानना चाहते हैं तो तीन उपाय हैं -

१) सुप्त व्यक्ति के नाम से आवाज लगाने से वह जाग सकता है।

२) जो आवाज देने से न जागे वह हिलाने से जाग जाता है।

३) सुप्त व्यक्ति को भूख लग जाय तो वह स्वयं जाग जाता है।

ठीक उसी तरह तीन उपाय हैं। हमारे जन्मों जन्मों की नींद से जागने के लिए -

१) श्रवण = सुनने से आत्मा जाग उठती है।

२) सत्संग = जिसमें भाव लहरियाँ जाग उठती है और आत्मा की नींद टूट जाती है।

३) जिज्ञासा = जिससे आत्मा स्वयमेव जाग उठता है। अब प्रत्येक उपाय को हम थोडा विस्तृत रूप से समझने का प्रयास करेंगे -

प्रथम है श्रवण = अर्थात् सुनना। भ. महावीर ने श्रवण को कला कहा है, उन्होंने कहा है दशवैकालिक सूत्र में -

सोच्चा जाणइ कल्याणं सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयंपि जाणइ सोच्चा जं सेयं तं समायरे॥

श्रवण से ही शुभ एवं अशुभ का ज्ञान मिलता है। दोनों को श्रवण कर जो श्रेष्ठ है उसका आचरण करना चाहिए। प्रश्न है कैसे सुनें? सुनना एक विज्ञान है जिसके साथ पूरा दर्शन जुडा हुआ है। व्यक्ति कान से सुनता है पर उसे कोई बोध नहीं होता। कान से सुना कि एक ग्लास में दूध पडा है? पर दूध क्या है? कहां पडा है? कान कुछ भी नहीं जानता। कान का केवल शब्द को सुनना है, व्यक्ति को केवल सुनने मात्र से कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। सुनने का एक पूरा क्रम निर्दिष्ट है। कहां गया कि -

श्रवणमिन्द्रियेण स्याद्,
मनसार्थोऽ वगम्यते।
बुद्ध्या विविच्यते तावत्,
सर्वांगं श्रवणं भवेत्।।

इंद्रियों से श्रवण, मन से अर्थ का बोध और बुद्धि के द्वारा उसका विवेचन सर्वांग श्रवण कहलाता है। शब्द के साथ मन जुडा और शब्द के अर्थ का पता लग गया। बुद्धि के द्वारा हेय ज्ञेय उपादेय का विवेक होता है। जब कान, मन, बुद्धि तीनों एक साथ होते हैं तब सर्वांग श्रवण होता है। जो जीवात्मा ऐसा श्रवण कर पाती है उसकी आत्मा जागृत हो जाती है। कई आत्माएँ एक बार प्रवचन सुनती है और जाग जाती है।

दूसरा है सत्संग - जैसे हिलाने से व्यक्ति की नींद टूट जाती है उसी तरह जब भीतर में, मन में भाव-ऊर्मिया लहराती है तब सत्संग के माध्यम से



आत्मा जाग उठती है। जैसे कोई कुशल वीणावादक है और एक ऐसे कमरे में वीणा बजाने बैठा है जिस कमरे के एक कोने में वीणा पडी हुई है। ऐसे समय कहते हैं उस पडी हुई वीणा के तार भी अपने आप झंकृत हो उठते है, ठीक यही घटना सत्संग में घटित होती है। सत्संग के माध्यम से हमारे भीतर की तारे भी ऐसे ही झंकृत हो उठती हैं या समझ लीजिए एक जला हुआ दीपक है और उसके पास एक ऐसा बुझा हुआ दीपक रखा हुआ है जिसमें तेल और बाती दोनों मौजुद है, संभावना यह है कि उस जलते दीपक की लौ हवा के माध्यम से लपट द्वार उस बाती का स्पर्श कर लेगी और वह दीपक भी जल उठेगा। सत्संग भी ऐसा ही है, अपनी पूर्व तैयारी से भावयुक्त चित्त से सत्संग में नित्य आयेंगे तो हमारे मन की तारें भी हिलेगी व इक दिन आत्मारूपी वीणा जाग उठेगी।

तीसरा है जिज्ञासा - यह आत्मा की भूख है, जहां आत्मा स्वयं ही जाग उठती है परंतु शर्त इतनी है कि जिज्ञासा तीव्र होनी चाहिए। एक ऐसा व्यक्ति है जिसे तैरना न आता हो और वह पानी में डूबकी ले तो ऐसी परिस्थिति में उसकी एक ही इच्छा होती है कि मैं जल्दी से यहां से निकलूं - यदि ऐसी ही छटपटाहट व इतनी तीव्र रूचि हमारे भीतर जाग जायेगी तो नींद अपने आप टूट जायेगी। सूरज निकला ही हुआ है, अब अपनी आंखें



खोलें, क्योंकि आंख खुलेगी तभी सवेरा है! बहुत समय हमने गंवाया है, अब और समय नहीं है गंवाने को। जितनी जल्दी जाग जाओ और चल पडो उतना अच्छा है।

जागो! रात में सुबह छिपी है उसकी खोज करें। उठो! धूल में हीरे दबे पडे हैं उसकी तलाश करें। जागने के लिए इन उपरोक्त सभी चिंतन को जानना आवश्यक है क्योंकि तो जानेगा वही जागेगा और जागना ही काफी है - एक बार जाग जाय तो मंजिल हमसे दूर नहीं!



सच्चिदानंद

■ गणपत पंसारी वकील

सच्चिदानंद शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द है। इस शब्द में सारा वैदिक वाङ्मय सारे ब्रह्म की अभिव्यक्ति, सारे जीवन सागर का नवनीत समाहित है अगर यों कहें कि इस शब्द से हर चीज शुरू होती है या सभी कुछ इसमें समाप्त हो जाता है। सच्चिदानंद शब्द आत्म-अनुभूति के प्राप्ति से ज्यादा लबालब है और व्याकरण के रूप से बेहद जटिल शब्द है। बहुत से मानव इसे नमस्कार की तरह अभिवादन में काम में लेते हैं। भाषा की दृष्टि से इसमें तीन वाक्यों का सम्मिश्रण है जो क्रमशः सत्, चित्, आनन्द है। आनन्द इस शब्द का आधार वाक्य है, यह एक दार्शनिक युक्ति है और आनंद को समझना ही इस मूल वाक्य का विवेचन है। पर आनंद समझने का विषय नहीं, आनंद कोई शब्दों का प्रमेय नहीं, गणित का कोई सिद्धान्त नहीं। शब्दों में आनन्द की व्याख्या उसी प्रकार नहीं हो सकती जैसे कोई मूक किसी मीठे का वर्णन करने से वंचित रहता है। पर शब्दों में भी कभी प्राण आ जाते हैं, शब्द भी जीवंत हो जाते हैं। बुद्ध ने भी शब्दों में स्वयं को प्रगट किया था। भगवान कृष्ण ने भी शब्दों में गीता के गूढ अर्थ को परिभाषित किया था। किन्तु आनन्द पर कब्जा नहीं किया जा सकता, उस पर कोई स्थलता नहीं की जा सकती। वह एक वसन्त है जो आता है, कब आता है और कब लौट जाता है यह अनुभूतिगत सत्य है, वस्तुगत सत्य नहीं। आनंद स्थितप्रज्ञ है, आनंद कैवल्य है जिसे आनन्द मिल गया उसे 'स्वयं' मिल गया, उसे निर्वाण मिल गया उसको जगत के रहस्यों की कुंजी मिल गई, उसे द्वन्द्वातीत स्थिति मिल गई, उसे अद्वैत मिल गया। जब ही अष्टावक्र ने करोडों ग्रंथों का सार यह कह कर ही दिया कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है और जीव ही ब्रह्मरूप है।

वस्तुतः प्रश्न यह है कि आनंद क्या

है? इसका स्रोत क्या है? इसको शब्दों में कैसे आवृत्त किया जा सकता है? शब्दों के बाहर क्या इसकी स्थिति है? इसको हम विचारों की आंखों से जानने का थोडा-सा श्रम करते हैं!

अंग्रेजी विद्वान गार्लियर ने कहा है कि किसी टोपी को टांकने के लिये, किसी दिवार पर, किसी लोहे की कील की आवश्यकता होती है उसी प्रकार विचारों को टांगने के लिए शब्द शीर्षक की आवश्यकता होती है। योगदर्शन में इसी शब्द शीर्षक को धारणा कहते है। धारणा के बाद उस बिन्दु का ध्यान ही आगे जाकर समाधि बन जाती है जिसे उस धारणा का पूरा अर्थ चिन्तन में परिणित होकर समाधान के रूप में व्यक्त होता है।

सच्चिदानंद शब्द में सत्-चित्-आनन्द है जिसे यदि और भी समझें तो ये दो फूल हैं एक फूल है सत् और दूसरा फूल आनंद है, जिसके मध्य चित् एक कांटा है। भगवान श्रीकृष्ण ने इसी चित्त के बारे में कहा है, उन्होंने इसे दस इन्द्रियों के बाद ग्यारहवीं इन्द्रिय माना है और वह यह मन है। यह मन चंचल है इसकी चंचलता को निग्रह करना ही योगदर्शन में योग का विषय माना है कि 'चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। पर इसके लिए उन्होंने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये शरीर के बाहरी जीवन को, क्रियाओं को साधक बनाने में सहायक है और अन्तर्मन के लिए वही ध्यन, धारणा और समाधि है। आगे श्रीकृष्ण ने और भी कहा



कि हे अर्जुन! मन को निग्रह करना बहुत मुश्किल है परंतु अभ्यास और वैराग्य से इसको निग्रह किया जा सकता है। इस मन की गति प्रकाश वर्ष से भी ज्यादा है इसको केन्द्रित करने के लये साधना आवश्यक है।

फिर यह प्रश्न है कि चित् की भावदशा बेहद अजीब है यह हर स्थिति में जब तक रहता है तब तक भोग भी है तो योग भी है, प्यास भी है तो तृष्णा भी है, इसके बाहर की स्थिति को ही ज्ञानी लोग परमहंस, स्थितप्रज्ञ कहते हैं। निर्वाण कहते हैं, वीतरागी कहते हैं, जिसे राग से भी नहीं विराग से भी दूरी हो तो वही चित्त की परम अवस्था है।

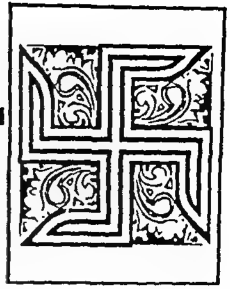
सत् क्या है? शायद यह वह तराजू है जिससे संसार का हर कण तुल सकता है, सत् की तराजु का आनन्द-आनन्द से भी बाहर है, आनन्द हर स्थिति को स्वीकार करने की परम अवस्था है पर सत् बहुत ही कडवी दवा है जिसे पिये बिना रोगी का सन्निपात दूर नहीं हो सकता। सत् प्रमाण है, कसौटी है, ध्रुव है, एक सीढी है, पहली मंजिल बिना सत् के सारा महल टूट कर गिर सकता है। सत् की सार्थकता ही सत्यता है। सारे तारों के मध्य प्रकाश यही है, वीणा के मध्य बोलना स्वर यही है सत् को जानने के लिए न शब्द है, न संस्कार है न योग न दर्शन है न सत् परिभाषित है न अभिव्यक्त है। सत् का जन्म भी नहीं हो सकता, सत् हर



परिस्थिति का सापेक्ष है, हर मनःस्थिति का अपना विचार सत् है। सत् न दाहक है, न सागर में डूब सकनेवाला है, बूंद में समुद्र समा रहा है वैसे ही सत में जगत लिप्त है पर पार्थक्य नहीं, न तारे सत्य है, न सूर्य सत्य है सब परिवर्तनशील चक्र है, हर क्षण परिवर्तित है, कोई भी वस्तु, क्षण, कण स्थिर नहीं है, कोई भी चीज अंतिम नहीं है, न जन्म सत्य है न मृत्यु सत् है, न भाव चक्र सत्य है न कोई विचार सत् है, न कोई विचार सत् है न जीवन सत् है। फिर यह क्या हो रहा है, यह कौनसा बिन्दु है फिर यह कैसी खोज है जिससे यह चराचर जगत बंधा है, चल रहा है, द्रष्टव्य है, इसे समझना क्या संभव है? जब वस्तु सत् नहीं तो खोज सती नहीं, जो विषय सत् नहीं तो फिर विषयगत सत् नहीं सारा संसार चक्रित है, सारी व्यवस्था निर्मित है, सारा संसार भ्रमीत है। अन्तस्तः कुछ और वह सत् से परे वह असत् से पर है वह जल से परे है, आकाश से परे है वह समय से परे है।

जो जितना जानता है वह उतना ही असत् है फिर क्या सृष्टा सत् है या रचना सत् है कहां तक प्रज्ञा जा सकती है पर यह भेद है कि सृष्टा सत् है शून्य सत् है, चराचर जगत सत् है जो सबको विलीन करता है वह सत् है जो सबको सृजनात्मक शक्ति दे रहा है वह सत् है, उसका नियम, नियमक सत् है, जिसने सारे चक्र को चक्रित कर रखा है वह सत् है और वह शून्य है, अंतरिक्ष है उस तक जाने के लिए शून्य ही चाहिए वही जानना अंतिम सत् है।

मेरा चिंतन है कि शायद सत् को चित्त के द्वारा समझ कर, जान कर अनुभूत करके आनन्द तक पहुँचा जा सकता है या सत्, चित्त से गुजरने के बाद ही आनन्द में परिवर्तित हो सकता है। चित् सत् हो जाय तो भी आनन्द के दर्शन हो सकते हैं, अनुभूति हो सकती है। हो सकता है चित् व सत् के द्वन्द्व की समाप्ति पर ही कोई अद्वैत अवस्था का नाम आनंद हो। लगता भी है कि चित् वाद हो, सत् प्रतिवाद हो तो आनन्द संवाद हो, कभी ऐसा लगता है कि आनन्द ही चित् में सत् हो, यह चित् वह रंगभूमि है जिस पर सत् अभिनय करके सानन्द में परिवर्तित होता हो, ऐसा भी हो कि सत् चित् ही आनन्द हो, पर जीवन की इन सारी परिभाषाओं में भिन्नान्तर है, इसीलिए भगवान महावीर सही कहते थे कि वस्तु के अनंत धर्म है, स्याद्वाद जैसा सिद्धान्त उनकी विचार मीमांसा का अद्भूत रतन है। कभी तो लगता है कि सब कुछ जानना सब कुछ से अनजान हो जाता है, एक कदम भी आगे, एक शब्द भी आगे कहना मुश्किल है, शब्दों में झूठ आ जाता है, लालित्य आ जाता है, शास्त्रों के उधार शब्द आ जाते हैं और सत् पर आवरण ही आवरण चढ़ जाते हैं। सत् का साक्षात्कार स्वयं को जानने से है। माध्यमों से जाना गया सत् अधूरा होता है उसमें व प्रज्ञा होती है न शील होता है।



आनन्द की मां चित् है पर उसका पिता सत् है। चित् विहीन आनन्द की परिकल्पना असंभव है, चित् की निर्मलता पर ही आनन्द का फूल खिलता है, सुवासित होता है, प्रस्फुटित होता है, सूर्य की तरह उसके आंचल से उठता है, किरणों की तरह उद्भासित होता है। फिर उस आनन्द का सत्व सागर किसी सापेक्ष की आवश्यकता नहीं रखता वह बोधिपुरुषों का सा ओजस्व लिये धरती का सूर्य बन जाता है, मानवता का हिमालय बन जाता है, करुणा का बादल बन जाता है, मानव उसके पीछे चलता है वह दिशाओं को अपना संदेश देता है, पक्षी भी उसका ज्ञान सुनकर ठहर जाता है। वह स्वयं ज्ञाता होता है वह स्वयं शास्त्र बन जाता है, उसका जीवन व्यष्टि से समष्टि में परिवर्तित हो जाता है, आकार से निराकार में बदल जाता है वह जीवन जीवन ही मोक्ष का प्रणेता होता है।

उपरोक्त तीनों शब्द जीवन, जीव और जगत के महान द्योतक हैं। तीनों शब्द जगत के शाश्वत मूल है जिसके अंतरतम सूत्रों में सच्चिदानंद समाहित है। सच्चिदानंद को समझने के लिए, जानने के लिए, हृदयंगम करने के लिए शब्दों के इन तीनों तीर्थों की मौन यात्रा करनी होगी, बार बार उनकी प्रदक्षिणा करनी होगी, जिस केन्द्र पर आकर सारे शब्द, सारी हलचल, सारा कोहराम ठहर जाय, जहां कोई अंक नहीं हो, जहां कोई गणित नहीं हो वहां सिर्फ शून्य हो वही आनंद की अंतिम अवस्था होगी, वह निर्वाण का आकाश होगा, वहां सारे बंधन, सारे वासनाओं के झोके, सारी जगत की दलदल समाप्त होगी, सब कुछ शून्य सा होगा, सागर सा होगा, सोती हुई चांदनी की तरह फैला हुआ प्रकाश होगा, आंतरिक शून्यता से बाहर की शून्यता का सहज मिलन होगा, एक नये आनन्द के आनन्द के आकाश का प्रकाश से भरा जगत होगा, चेतनता में महान विस्फोट जैसा होगा वहां जीवन की कोई आतुरता नहीं होगी, मृत्यु का कोई स्पन्दन नहीं होगा, वहां प्राणों का गीत अन्तर समस्वरता के साथ लयबद्ध होगा। वहां दृष्टा व द्रष्टता का भेद समाप्त होगा। फिर ज्योति स्वरूप उस आनन्द से सारा जगत सरल होगा। निर्मल वाणी से फिर मानव का कोई नवीन कल्याण का रास्ता तय होगा और उस मानव का स्वयं का स्वयं से महामिलन होगा तब उस महाआनन्द के उस ज्योति स्वरूप को जो स्वयं से ही निर्मित हुआ है, देखना भी आननद का विषय होगा, उसके सामने संसार के हर कार्य सहज संपादित होंगे और वह महान आनन्दऋषि होगा।

ऐसे ही महापुरुष को जिसका जीवन करोडों मानवों के लिए समर्पित था उस देवदूत को शत शत नमन के साथ मेरा हार्दिक अभिवन्दन!





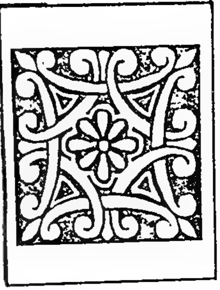
जिनधर्म और जैनधर्म

■ मूललेखक : प्रो. श. मो. शाह, पुणे
■ हिन्दी अनुवादक : कमलकुमार जैन, पुणे

जिन शब्द का अर्थ इन्द्रियं, मन व रोगादिक विकारों को जीतनेवाला होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो जैन, बौद्ध, आजीवक, सांख्य इत्यादि निवृत्तिपरक श्रमण-संस्कृति में आत्मसाक्षात्कारी एवं वीतरागी महापुरुषों को 'जिन' इस नाम से संबोधित किया गया है। इस प्रकार 'जिन' इस नाम का मूल अर्थ साम्प्रदायिक न होकर पूर्णता को प्राप्त व्यक्ति ऐसा होता है। धर्म शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। 'जिनधर्म' इस शब्द का अर्थ 'जिन' का स्वभाव, आत्मा की नैसर्गिक स्थिति, परमविशुद्ध आत्मानुभव, 'जिन' द्वारा आत्मानुभूति के बलपर प्रतिपादित धर्म अथवा आत्मानुभूति का मार्ग ऐसा होता है।

यद्यपि आत्मद्रव्य का, परमसत्य का स्वभाव एवं एतद्‌विषयक अनुभूति के स्वरूप एक ही हुए तो भी स्थान, काल, एवं व्यक्तिपरत्व आत्मानुभूति के साधनों में विविधता उत्पन्न होती है। वैसे ही आत्मानुभुति के भाषिक आविष्कारों में भी अन्तर पड़ता है, परन्तु इस विविधता के मूल में सार्वकालिक वा सार्वदेशिक अन्तिम मूल्यों में एकता दिखाई देती है, इसका अर्थ यह हुआ कि पूर्णत्त्व, विशुद्ध आत्मस्वभाव, साक्षात्कार अथवा 'जिनत्व' इस पर विशिष्ट व्यक्ति, समाज, अथवा सम्प्रदाय का एकाधिकार न होकर वह सार्वजनिक होता है। परन्तु जब 'जिन' की अनुभूति पर कोई सम्प्रदाय विशेष खड़ा होता है, तब उस अनुभूति विश्व व्यापक मूल स्वरूप में भेद उत्पन्न होकर अनेक मर्यादायें आ जाती है, उदाहरणार्थ जिनधर्म का रूपान्तर जब जैन धर्म (जैन सम्प्रदाय) में हुआ, तब यही हुआ साम्प्रदायिक दृष्टि से केवल जैनधर्म ही श्रेष्ठ, जैनधर्म के ही प्रवर्तक सर्वज्ञ, वीतरागी, तीर्थंकर केवल जैनागम ही सत्य और पूर्ण, अन्य धर्मप्रवर्तक, उनके धर्मग्रन्थ और उनका सम्प्रदाय मिथ्या पाखण्डी। इस प्रकार के अज्ञान व अभिनिवेश से उत्पन्न भ्रम जैन सम्प्रदाय में सर्वत्र रूढ दिखाई देता है, परन्तु सत्य संशोधक एवं तटस्थ दृष्टि से देखा जाय तो केवल ऋषभदेव पार्श्वनाथ महाविरादि जैन तीर्थंकर ही नहीं अपितु बुद्ध कृष्ण, कंपिल, गौतम, कणाद, येशू, झरतुष्ट, मोहम्मद इत्यादि महापुरुष भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हुए हैं। और उनकी आत्मानुभूति पर आधारित धर्मग्रन्थ जैनागम ग्रन्थों की अपेक्षा कम महत्त्व के नहीं है। बौद्ध त्रिपिटक, वेद, उपनिषद, गीता, पातंजल, योगसूत्र, बायबिल, कुराण, अर्वस्ता इत्यादि साहित्य का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट होता है

कि विविध धर्मग्रंन्थों में दिखाई देनेवाला विरोध यह स्थान, काल, व्यक्ति भाषा आदि भेदों के कारण दिखाई देते हुए भी आध्यात्मिक अनुभूति के स्वरूप में अन्तिम मूल्यों में एकत्वपना दिखाई देता है। वैसे ही ज्ञान, ध्यान योग, समाधी, तप, संयम, त्याग, निष्कामकर्म भक्ति, सदाचार, चित्तशुद्धि सेवा इत्यादि आत्मसाक्षात्कार के चिरन्तन साधनों का अवलंबन ही सर्वत्र न्यूनाधिक प्रमाण में मुक्त रूप से किया हुआ दिखाई देता है। परन्तु जब महापुरुषों के आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर अधिष्ठित विविध सम्प्रदाय उत्पन्न होते हैं, तब कालान्तर से मूलभूत साम्य की अपेक्षा वैषम्य पर अधिक जोर देकर उनका पर्यवसान संघर्ष के रूप में होता है। खण्डन, मण्डन व प्रचार-प्रसार के आवेग में सत्य धूमिल होता है। अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। धर्म के नाम पर अधर्म की पूजा होने लगती है। फिरसे तहापुरुषों के कर्तृत्व से उन में नव चैतन्य निर्माण होकर नये युग के सन्दर्भ में उनको नये स्वरूप प्राप्त होते हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा कितने ही प्राचीन धर्म और पंथों का अस्त हो जाता है और कितनों का ही पूनर्जन्म होता है और कितने ही नये सम्प्रदाय उत्पन्न होते हैं। प्रस्तुत लेख में जिनधर्म का मूलस्वरूप क्या है? उसके रूपान्तर जैनसंप्रदाय में होने पर क्या फेरबदल हुए वर्तमान युग के सन्दर्भ में उसे कौनसा स्वरूप प्राप्त होना आवश्यक है, और उसी दृष्टि से जैनों का आज क्या कर्तव्य होना चाहिए केवल यही विचार करना है।



जैन यह शब्द 'हिन्दू' शब्दानुसार अर्वाचीन होते हुए भगवान महावीर के समय अथवा उसके कुछ समय पश्चात उनके अनुयायिओं को 'जैन' यह सम्प्रदायवाचक नाम प्राप्त नहीं हुआ था। उसके लिए निर्ग्रन्थ श्रमणोपासक ये शब्द रूढ थे। जैनों के चौबिस तीर्थंकरो में से वृषभ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन चार तीर्थंकरों सम्बन्धी।

पार्श्वनाथ व महावीर संबंधी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। तुलनात्मक वाङ्मयीन प्रमाणों के आधार पर ऋषभ व नेमिनाथ के अस्तित्व सम्बन्धी तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं। परन्तु अन्य तीर्थंकरों के अस्तित्व विषयी साम्प्रदायिक परम्परा पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है।

भारत में वैदिक-संस्कृति के पहले से आज तक श्रमण संस्कृति का अस्तित्व किसी न किसी रूप में दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति की रचना मुख्यतः श्रमण और वैदिक इन दोनों संस्कृतियों के प्रवाह से होकर संघर्ष, समन्वय, परस्पर प्रभाव इत्यादि अनेक अवस्थाओं से गुजरते हुए अपने-अपने स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखकर एक ही भारतीयता के छत्र के नीचे आज भी पल्लवीत है। प्राचीन श्रमण संस्कृति में जैन, बौद्ध, सांख्य, आजीवक, शैव, वैष्णव इत्यादि का समावेश होते हुए भी आगे वैष्णव, शैव व सांख्य इनका वैदिक संस्कृति से विरोध समाप्त होकर उनका वैदिक संस्कृति में समावेश हो गया। परन्तु

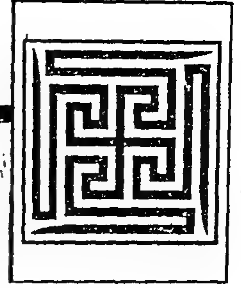


जैन और बौद्ध संस्कृति के स्वतन्त्र अस्तित्व आज भी हैं। श्रमण व वैदिक संस्कृति की तुलना करना हो तो इस प्रकार की जा सकती है कि श्रमण संस्कृति साम्य के आधारपर तो वैदिक संस्कृति वैषम्य के आधारपर अधिष्ठित है। ये साम्य और वैषम्य तीन प्रकार से दिखाई देते हैं १) समाज-विषयक २) साध्य विषयक और ३) प्राणिजगत विषयक दृष्टिकोण। वैदिक संस्कृति में समाजरचना और धर्माधिकार संबंधी की अन्य वर्षों की तुलना में ब्राह्मणवर्ण जन्मसिद्ध श्रेष्ठ माने जाते थे। तो श्रमणसंस्कृति में समाजरचना व धर्माधिकार जन्म के आधारसे न होकर गुणों पर आधारित थे। सद्गुणी शूद्र भी दुर्गुणी ब्राह्मण की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता था। वैसे ही सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों के समान स्थान दिये थे। वैदिक वा ब्राह्मणधर्म का साध्य अभ्युदय का मतलब ऐहिक समृद्धि, राज्य, पुत्र. पशु, आदि का लाभ इन्द्रपद व स्वर्गीय स्वर्गसुख की प्राप्ति तो श्रमण संस्कृति का साध्य निःश्रेयस अर्थात विविध ऐहिक व पारलौकिक सुख के त्याग से प्राप्त होनेवाली साम्यावस्था। इसी कारण वनस्पति, कीटक, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि समस्त जीव जगत में समानत मानी गई है। किसी भी देहधारी जीव का वध अधर्म माना गया, इसके वितरीत वैदिक संस्कृति ने यज्ञ को अभ्युदय का साधन मानकर अज्ञात रूप से होनेवाली निरपराध पशुओं की हिंसा को अनिवार्य माना। इस कारण प्राणीजगत की ओर देखने का उसका दृष्टिकोण आत्मसमानता की अपेक्षा आत्मविषमता का दिखाई देता है। साम्यदृष्टि यह श्रमणसंस्कृति का प्राण है। 'समण' इस शब्द के राग, शम, व श्रम इन तीन अर्थों में से वह एक मुख्य अर्थ है। साम्यभावना की पोषक होने से साम्यसिद्धि मूलक अहिंसा यह श्रमणसंस्कृति का प्राण माना गया। अहिंसा की पूर्णसिद्धि वीतराग भाव के बिना संभव नहीं। उसके लिए अपरिग्रह, तप, संयम, त्यागादि मूल्यों को साम्यभाव की प्राप्ति के साधन के रूप में महत्त्व प्राप्त हुआ। श्रम में तपस्या तो शम में अपरिग्रह, तप, संयम, त्याग इत्यादि का समावेश होता है। अहिंसा सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये पाँच मूल्य ही साम्यभावना अथवा आत्मौपम्यदृष्टि का विस्तार होते हुए जैनों के पंचमहाव्रत. पातञ्जलयोग के पाँच यम और बौद्धों के पंचशील थे पंचमहाव्रत के ही रूपान्तर है। वैदिक और श्रमणसंस्कृति में जैसे साम्य और वैषम्य के आधार पर भेद होता है वैसे ही प्रवृत्ति-निवृत्ति के आधार पर भेद किया जा सकता है। श्रमण-संस्कृति निवृत्ति प्रधान है तो वैदिक संस्कृति प्रवृत्ति प्रधान है। प्रवर्तक धर्मानुसार काम, धर्म और अर्थ ये तीन ही पुरुषार्थ माने जाते हैं। ऐहिक अथवा पारलौकिक स्वर्गसुख के लिए धर्मानुष्ठान करना और समाज व्यवस्था की रचना इस प्रकार करना जिसमें परस्पर सहयोग से परस्पर विपयी कर्तव्य के द्वारा

उक्त तीन पुरुषार्थ सिद्धकर इस जन्म और जन्मान्तर में अधिकाधिक सुख प्राप्ति हो। देवऋण, पितृऋण व गुरुऋण ये तीन ऋण चातुवर्ण पद्धती, ब्रह्मवर्य और गृहस्थ ये दो आश्रम, यज्ञ-यागादि कर्मकाण्ड ये वैदिक संस्कृति की विशेषताएँ हैं।

वैदिक संस्कृति में गृहस्थाश्रम को महत्त्वपूर्ण स्थान होते हुए प्रत्येक व्यक्ति को समाज में रहते हुए ऐहिक जीवन संबंधी सामाजिक कर्तव्य और पारलौकिक जीवनविषयी यज्ञ-यागादिक धार्मिक कर्तव्य करना अनिवार्य माना गया। इसके विपरीत निवर्तक श्रमण-संस्कृति व्यक्तिगामी है। क्योंकि मोक्ष अथवा आत्मसाक्षात्कार यह उसका अन्तिम साध्य होने से एकान्त चिन्तन, ध्यान व तप करना आवश्यक होता है। उसके लिए व्यक्ति को गृहस्थाश्रमी अथवा समाजगामी होने की आवश्यकता नहीं है। उसके मत में आत्मसाक्षात्कार के द्वारा पुनर्जन्म का नाश करना यही व्यक्ति का ध्येय होता है। वानप्रस्थ और संन्यास इन दो आश्रमों को श्रमणसंस्कृति ने प्रधानता दी है। भगवान ऋषभदेव व सांख्य कपिलमुनि श्रमणसंस्कृति के बहुधा आद्यप्रणेता माने गये। सारांश भगवान महावीर व बुद्ध के समय तक निवृत्तिपटक श्रमणसंस्कृति में निम्नांकित वैशिष्ट्य हजारों वर्षों में विकास को प्राप्त हुई

१) जीवन का मुख्य उदेश्य ऐहिक अथवा पारलौकिक सुख की अपेक्षा आत्मशुद्धि आत्मसाक्षात्कार अथवा मोक्ष।



२) इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राग-द्वेष, मोह, अज्ञान और तृष्णा का नाश करना।

३) साधन के रूप में तप, ज्ञान ध्यान योग व पंचमहाव्रतों का पालन।

४) ईश्वरीय व अपोरुषेय वेदों की अपेक्षा आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त व्यक्ति के आध्यात्मिक अनुभवों के विवरण करनेवाले वचनों को प्रमाण मानना।

५) जन्मसिद्ध वर्ण की अपेक्षा आध्यात्मिक शुद्धि ही गुरुपद की कसौटी. उस कारण स्त्री, शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रियादिक में समानता।

६) मद्यमांसादिक अभक्ष्य पदार्थों का सामाजिक व धार्मिक जीवन में निषेध।

श्रमण संप्रदाय में से ही विद्यमान जैन धर्म का उदय हुआ है। भ. पार्श्वनाथ व महावीर के समय यह निर्ग्रंथ सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता था। भ. महावीर के माता-पिता भ. पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा के अनुयायी थे। पार्श्वनाथ के धर्म को चातुर्याम धर्म कहते हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह इन चार मूल्यों को उन्होंने पुरस्कार किया। ब्रह्मचर्य का समावेश उन्होंने अपरिग्रह में किया था, उनके मार्ग की सचैतक मार्ग कहा जाता है। त्रिपिटक ग्रन्थों में उनके अनुयायीओं को एकशाटक कहा गया है। कालान्तर में वस्त्र और स्त्री विषयक शिथिलता आने से महावीर भगवान ने अचैलधर्म (नग्नता) और ब्रह्मचर्य (स्त्री-विरमण) पर जोर दिया



और अपरिग्रह से ब्रह्मचर्य अलग करके पंचमहाव्रतों का पुरस्कार किया यह परिवर्तन पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायियों ने स्वीकार किया। महावीर की समन्वय दृष्टि तथा धीरोदात्त व्यक्तित्व के कारण उनके नेतृत्व में पार्श्वनाथ की परम्परा के वस्त्रधारी भिक्षु और स्वयं की परम्परा के नव-दिक्षीत नग्न (अचेल) भिक्षु एक ही संघ में स्नेहपूर्वक रहने लगे। परन्तु कुछ समय पश्चात् प्राचीनता और अर्वाचीनता के आधार पर वाद-विवाद उपस्थित होने से प्राचीनता की दृष्टि से सचैलत्व तथा गुणवत्ता की दृष्टि से सचैलत्व तथा गुणवत्ता की दृष्टि से अचैलकत्त्व प्रधान इस प्रकार महावीर भगवान ने उनका समाधान प्रस्तुत किया हुआ दिखाई देता है। परन्तु महावीर के पश्चात् दो ढाई सौ वर्षों के बाद दोनों पक्षों में अभिनिवेश और खींचतान उत्पन्न हो कर जैन सम्प्रदाय दिगम्बर और श्वेताम्बर दो पन्थों में विभाजित हो गया और उत्तरकालीन जैन वाङ्मय में भी इस मुद्दे पर मतभेद रहे। वस्तुतः इन दोनों पन्थों में तात्विक दृष्टि ज्यादा महत्त्व के भेद न होते हुए भ. महावीर के मूलभूत अनेकान्त तथा अहिंसा के सिद्धान्त एक तरफ रह गये और साम्प्रदायिक अस्मिता तथा अभिनिवेश के कारण जैन संघ की पराकोटी की हानि हुई।

भ. महावीर के समय राजकीय, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में अत्यन्त अराजकता उत्पन्न होते हुए उन्होंने अपनी तपश्चर्या व आत्मानुभूति की शक्ति के आधार पर अहिंसक क्रान्ति करके समाज जीवन को बदल दिया। पार्श्वनाथ प्रतिपादित सिद्धांन्तों का विकास करते हुए उन्होंने जो प्रमुख कार्य किये वे निम्नानुसार है।

१) जाति व वर्णभेद न मानते हुए शूद्रों को भी साधुपद और गुरुपद का मार्ग मुक्त किया। श्रेष्ठता जन्मानुसार न होकर गुणों पर आधारित होती है यह निश्चित रूप से प्रतिपादित किया।

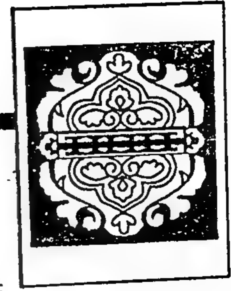
२) आत्मविकास के क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर मानकर ज्ञान तथा आचारसंबंधी योग्यता की पूर्णतः समान मान्यता दी।

३) धर्मोपदेश अल्पसंख्याक विद्वानों की संस्कृत भाषा में न देकर बहुजनों की प्राकृत भाषा में दिया और आध्यात्मिक उन्नति के द्वार सभी को खोल दिये।

४) ऐहिक और पारलौकिक सुख के लिए हिंसामय यज्ञकर्म के द्वारा देवताओं की कृपा पर अवलंबित रहने के बजाय संयम, तपस्या तथा अहिंसा अथवा पुरुषार्थ प्रधान मार्ग पर जोर दिया।

५) पार्श्वनाथ की परम्परा में कालान्तर से त्याग व तपस्या के नामपर भोग और शिथिलाचार के प्रतिष्ठित होने पर सत्य-त्याग और तपस्या की महिमा स्थापित की।

अर्थात भ. महावीर ने अहिंसा व अनेकान्त के सिद्धान्त पर जोर देकर आचार्य-विचार और सहिष्णुता का महत्व



तत्कालीन समाज को दिखाया। ये दोनों सिद्धान्त उनकी जीवनानुभूति से स्फुटित होकर प्रत्यक्ष कार्य (आचरण) रूप में आने से अत्यन्त प्रभावशाली होकर भ. महावीर के अनन्तर जैन संस्कृति के प्रमुख लक्षण हो गये। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि जैनेतर धर्मों में इस तत्त्वज्ञान वा इन सिद्धान्तों का अभाव है। आत्मानुभव किसी भी धर्म और तत्त्वज्ञान का अंतरंग होने से और आत्मानुभवी महापुरुष सभी सम्प्रदायों में हुए होने से वैदिक परम्परा की वेदान्त, न्याय इत्यादि शाखाओं में वैसे ही सांख्य व बौद्ध तत्त्वज्ञान में एक ही वस्तु के निरुपण विविध दृष्टियों से करने की पद्धती और अनेक पक्षों का समन्वय करने की दृष्टि सामान्यरूप से दिखाई देती है। वैसे ही अहिंसा की महिमा भी सर्वत्र गुंजित दिखाई देती है। परन्तु जैन परम्परा ने जितना जोर अहिंसा और अनेकान्त पर दिया उतना अन्यत्र दिखाई नहीं देता। यह निर्विवाद सत्य है। भ. महावीर के बाद भी जैनाचार्य ने विविध आचार-विषयक ग्रन्थों की रचना कर मूलभूत पंचमहाव्रतों और अहिंसा का सांगोपांग विस्तार किया है। वैसे ही अनेकान्त के आधारपर अधिष्ठित नयवाद तथा स्याद्वाद या उपसिद्धातों का अनेक शाखा प्रशाखाओं में विस्तार करके जैन तर्कशास्त्र तथा प्रमाणशास्त्र की नींव डाली और उन विषयों पर समृद्ध साहित्य का निर्माण किया।

यहाँ महावीर पूर्व और महावीर कालीन जिनधर्म का मूलस्वरुप समझा। अब जिनधर्म का रुपान्तर महावीर के पश्चात् जैनधर्म अर्थात् जैन सम्प्रदाय में होते हुए समय के प्रवाह में कौन-कौन से परिवर्तन हुए देखिए-

१) सबसे पहले जैनसंघ में दिगम्बर यापनीय, श्वेताम्बर, स्थानकवासी इत्यादि सम्प्रदाय छोटे छोटे मतभेदों से उत्पन्न हुए। महावीर की अहिंसा तथा अनेकान्त का अवलंबन लेकर मतभेद दूर करके एकता निर्माण करना तो दूर रहा परन्तु परस्पर इतनी कटुता निर्माण हुई कि महावीर के उदात्त धर्मोपदेशों का स्मरण किसी को नहीं रहा। इस कारण जैनसंघ की अपार हानि हुई और आज भी हो रही है।

२) प्राचीन जैनागमों के स्वरूप का विचार किया जाय तो ऐसा दिखता है कि संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना के आवेग में आकर श्वेतांबरों को स्वीकृत आगम दिगम्बरों ने प्रक्षिप्त और अप्रामाणिक मानकर पूर्णरूपेण अस्वीकृत कर दिये। स्वतः केवल षट्खण्डागम के अपवाद को छोड़ दिया जाय तो मूल आगम साहित्य का संरक्षण नहीं कर सके। इधर इसवीं सन के पन्द्रहवें शतक में उदित स्थानकवासी संप्रदाय ने भी दिगंबर सम्प्रदायानुसार श्वेताम्बर आगमों को सर्वथा बहिष्कृत न करते हुए उनमें से मूर्ति व मूर्तिपूजा सम्बन्धी भाग नामंजूर करके कुछ भाग का अर्थ अपनी नवीन विचारधारानुसार मूल परम्परा से भिन्न किया। दिगंबर तथा श्वेताम्बर परम्परा में



तात्त्विक एवं आचारपरक विपुल आगमोत्तर साहित्य की रचना हुई। अन्य सम्प्रदायानुसार जैन सम्प्रदाय में भी तीर्थंकर अथवा प्रवर्तक व उनका साक्षात्कारी मूल विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभवों और तत्त्वों का संरक्षण किया यह सत्य है; परन्तु उसके साथ उनके स्पष्टीकरण हेतु अनेक तर्क व कल्पनाओं का आश्रय लिया। विशेषतः सांप्रदायिक दृष्टिकोण से परमत के खण्डन और स्वमत के प्रतिपादन हेतु ऐसा किया। केवल जैन ही नहीं अपितु बौद्ध, वैदिक, सांख्य इत्यादि सभी संप्रदायों ने भी अपने तत्त्वों की श्रद्धा के प्रतिपादन के लिए अनेक प्रकार की कल्पनाओं का आश्रय लेकर मूल तीर्थंकरों प्रणीत वा प्रवर्तक प्रणीत वैसे ही श्रुतिसदृश प्रामाणिक माना और अन्य सांम्प्रदायिक साहित्य को सर्वथा अप्रामाणिक मानना शुरु कर दिया। यह बात दर्शन अथवा शब्द अर्थात काल के प्रवाह में पड़े हुए अन्तर से स्पष्ट होती है। दर्शन का मूल अर्थ आत्मदर्शन, आत्मसाक्षात्कार, आत्मानुभव होता है। आगे चलकर 'तत्त्वार्थप्रदानं सम्यग्दर्शनम्' सूत्रानुसार श्रद्धा यह अर्थ रुढ हो गया और अन्त में खण्डन मण्डन के द्वारा तत्वचिंतन यह अर्थ प्राप्त हुआ। साम्प्रदायिक तत्त्वचिंतन अपने तत्त्वचिंतन में कितनी भी न्यूनता हुई अपने तर्क कितने ही सदोष हुए तो भी उस ओर ध्यान नहीं देता, इसके विपरीत विरोधी संप्रदाय के तत्त्वचिंतन में कितने ही सद्‌गुण हुए तो भी उनको स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार जब दर्शन अथवा तत्त्वज्ञान साक्षात्कार अथवा आत्मानुभूति के स्तर पर से केवल श्रद्धा के स्तर पर आये और उसमें आगे जाकर कल्पना, सत्यासत्य तर्कों का समावेश होने लगा तब संकुचित साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण वे विकृत होकर मूल स्वरुप में शुद्ध होते हुए भी अनेक दोषों के घर बन गये। आज इस दार्शनिक चिन्तन अथवा साहित्य में केवल कल्पनात्मक भाग कौनसा, सत्य कौनसा, असत्य कौनसा, इसका निर्णय करना कठिन हो गया है। प्रत्येक सम्प्रदाय का अनुयायी चाहे वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित हो पण्डित हो, विद्यार्थी हो, यह मानकर सिद्धांन्त ग्रंथों का श्रवण, अध्ययन व अध्यापन करता है कि हमारे तत्त्वग्रंथों में जो लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। हमारी श्रुति में संश के लिए जगह नहीं, हमारे ग्रन्थों में जो है वह अन्य ग्रंथों में नहीं है। यदि अन्यत्र कहीं मिला तो वह हमारे सम्प्रदाय से लिया गया है इत्यादि।

सारांश, आज जो जैनागम व आगमोत्तर साहित्य है वह अन्धश्रद्धा से तीर्थंकरवाणी समझकर शब्दशः सत्य न मानकर ऐतिहासिक, तुलनात्मक व वैज्ञानिक दृष्टि से उसका अध्ययन करके उसमें से महावीर की मूल आत्मानुभूति व उपदेश का पोषक भाग कौनसा है उसका विसंगत और प्रक्षिप्त भाग कौनसा इसकी परीक्षा करना अत्यन्त जरुरी है। उसके लिए अन्धश्रद्धा और सांप्रदायिक दृष्टि का त्याग करके बुद्धि प्रामाण्य एवं आत्मानुभव



की साधना करनी चाहिए। इसके बिना मूल श्रुति का मर्म नहीं समझा जा सकता। धर्म और बुद्धि में तिलमात्र विरोध नहीं है यह निश्चित रुपेण कहने का आज समय आ गया है। केवल पारम्परिक तात्त्विक ग्रन्थों के ही नहीं आचारपरक ग्रन्थों का भी इस दृष्टि से विश्लेषण करके बहुत ही धैर्यपूर्वक मूल जिनधर्म में सम्मत व पोषक आचार विचारों का स्वीकार और असंमत व घातक आचार-विचारों का कठोरता के साथ त्याग करने के लिए आगे आना चाहिए।

३) मूल जिनधर्म के रूपान्तर बीते हुए ढाई हजार वर्षों में जैनधर्म व सम्प्रदाय में होते हुए वैदिक सम्प्रदाय के प्रभाव से पद्मावती क्षेत्रपाल इत्यादि अनेक संसारी गौण देवताओं को जैन सम्प्रदाय में स्थान मिलकर ऐहिक एवं भौतिक सुखपूर्ति के लिए उनकी उपासना करना, उनकी मिन्नत करना इत्यादि रूढ हो गया जब कि यह मूल जिनधर्म से विसंगत है,

४) मूल रूप से वीतराग मूर्ति का श्रृंगार करके उपासना में जगमगाहट एवं बाह्य आडंबर को जो स्थान मिला है वह भी निन्दनीय है।

५) भ. महावीर ने जातिभेद का तीव्र विरोध किया। स्त्री-पुरुषों को सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से समान दर्जा दिया। परन्तु वैदिक धर्म के प्रभाव से जैन सम्प्रदाय में भी जाति का भेदभाव बढ गया और स्त्री को पुरुषों की अपेक्षा सभी मामलों में आज भी हीन समझा जाने लगा यह चिंतनीय विषय है।

६) मन्त्र, ज्योतिष इत्यादि विद्याओं को जैन संस्कृति में आध्यात्म की बराबरी का स्थान न होतें हुए भी आध्यात्मिक जीवन स्वीकार करनेवाले मुनियों ने भी धर्म प्रसार के निमित्त उनका अवलंबन कर लिया।

७) वैदिक संस्कृति के प्रभाव से जैन सम्प्रदाय में यज्ञ यागादि की नकल करनेवाले, होमहवन आदि का अवलंबन, विवाह, मंदिर प्रतिष्ठा,वास्तुशांति इत्यादि प्रसंगों में किया जाने लगा और उसके लिए ब्राह्मण पुरोहितों के अनुसार स्वतन्त्र जैन पुरोहित वर्ग की स्थापना हो गयी। जिनसेनाचार्य जैसे महान व्यक्ति ने मध्य युग में मनुस्मृति का अनुसरण करके गर्भावतरण से मृत्युपर्यन्त के सर्व हिन्दु-संस्कार और अग्निपूजा इत्यादि कर्मकाण्ड बहुधा हिन्दुसमाज से जैन समाज में आये हुए अनुयायियों के लिए रुढ किये। उसका दुष्परिणाम जो कि वैदिक कर्मकाण्ड के विरुद्ध भ. महावीर ने क्रांति की वही पिछले दरवाजे से जैन समाज में रुढ हो गया।

८) श्रीमत् शंकराचार्य प्रणीत मठ व मठाधीश की संस्थाओं की नकल होकर दक्षिण भारत में भट्टारक सम्प्रदाय उदित हुआ। और बाद में धर्म के नाम पर शिथिलाचार बढ़ गया।

९) आचार्य सोमदेव के त्रैवर्णिक आचार जैसे श्रावकाचार सम्बन्धी ग्रंथ



निर्मित होकर हिंदुत्वानुसार स्पृश्यास्पृश्य भेद, छुआछूत सूतक, गृहशान्ति इत्यादि कर्मकाण्ड धर्म के नाम पर उदित हुए।

१०) भ. महावीर महान् तपस्वी थे परन्तु उन्होंने उपवास कायक्लेश आदि बाह्य तपों का समन्वय स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि आभ्यन्तर तप समन्वय किया। परन्तु मध्ययुग से व्रतवैकल्य, उपवास तपास इत्यादि बाह्य साधनों पर अधिक जोर देकर स्वाध्याय, ध्यान जैसे आन्तरिक साधनों की तरफ जैन श्रावकों व श्रमणों का दुर्लक्ष होने लगा। आज जैन समाज में आत्मज्ञान, आत्मध्यान की अपेक्षा इतर कर्मकाण्ड को अधिक महत्त्व दिखाई देता है। केवल ध्यान का ही विचार किया तो वैदिक व बौद्ध परम्परा में उसका विकास होकर उसपर विशाल साहित्य निर्माण हुआ। वैसे जैन परंपरा में दिखाई नहीं देता। उदाहरणार्थ शुक्लध्यान की चर्चा दो ढाई हजार वर्ष में केवल परम्परिक तान्त्रिक शब्दों के आगे नहीं गई। उसके मर्म का अनुभवजन्य विवरण (विश्लेषण) दिखाई नहीं देता। इसके विपरीत बौद्ध व वैदिक परम्परा में ध्यान प्रक्रिया पर अनुभवजन्य भरपूर साहित्य है। आज वीसवें शतक में भी रामकृष्ण परमहंस, योगी अरविंद, रमणमहर्षि, विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, जे. कृष्णमूर्ति इत्यादि महापुरुषों की ध्यान विषयक अनुभवजन्य एवं शास्त्रीय इस प्रजन के भरपूर विवेचन किये गये हैं।

बौद्ध परम्परा में 'विपश्यना' यह ध्यानपद्धति आज पुनर्जीवित होकर श्री गोयंकाजी के अनुभवजन्य विवरण व प्रशिक्षण अनेक लोगों को मिल रहे हैं। परंतु जैन परम्परा में ध्यानपद्धति केवल इने गिने लोगों में मर्यादित होकर बहुजनों के समक्ष नहीं आती ऐसी वस्तुस्थिति है।

११) जैन परम्परा यदि मूलरूप में निवृत्तिप्रधान हुई तो भी कोई भी समाज निवृत्ति-प्रवृत्ति के समन्वय के शिवाय जीवित नहीं रह सकता। किंबहुना निवृत्ति व प्रवृत्ति ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोष वा अशुभ भावों से निवृत्त होने ने के समान ही कल्याणमय शुभ भावों में सद्गुणों में प्रवृत्त होना चाहिए। उदाहरणार्थ - पाँच पापों में से हिंसा त्याग के साथ प्रेम व आत्मोपम्य बुद्धि इन विरोधी सद्गुणों को जीवन में स्थान मिलना चाहिए। असत्य की जगह सत्य ने परिग्रह व लोभ की संतोष व त्याग को मिलना चाहिए। परन्तु मुनियों और श्रावकों के व्रतपालन में केवल नकारात्मक निवृत्ति को महत्त्व दिये जाने से समाजोपयोगी सद्गुणों का प्रवृत्ति की ओर दुर्लक्ष्य होता है। केवल निवर्तक धर्म यह व्यक्तिगामी होता है। एकान्त में आत्मा का ध्यान, चिंतन तप करके आत्मसाक्षात्कार अथवा मुक्ति प्राप्त कर ली कि व्यक्ति का कर्तव्य समाप्त, इस प्रकार का एक गलत धारणा निर्माण हुई है। वस्तुतः अहिंसादिक पंच व्रत समाज सापेक्ष है, व्यक्ति के हित समाज से भिन्न नहीं किये जा सकते। ऐसा होता तो भ.



महावीर को केवल स्वयं की ही मुक्ति का विचार करना सरल था। परन्तु उन्होंने करुणावृत्तिपूर्वक सम्पूर्ण समाज को धर्मोपदेश देकर सामाजिक क्रान्ति की। आज धर्म का विचार केवल व्यक्तिगत होकर मनुष्य के दैनंदिन, कौटुम्बिक, सामाजिक, आर्थिक, राजकीय, और राष्ट्रीय जीवन से उसकी दूरी बढ़ गई है। जैन मुनि हो अथवा श्रावक वे जीवन का साकल्य विचार न करते हुए तथाकथित व्यक्तिगत धार्मिक आचार सामाजिक जीवन से कृत्रिमरीति से अलग करते हैं। और इतर समस्याओं की ओर साधारण रीति से दुर्लक्ष्य करते हैं, उसका गंभीर परिणाम ऐसा हुआ कि रोज कुछ समय स्वाध्याय, सामायिक, पूजा-अर्चना की, मुनियों की आहारादिक सेवा, कभी कभी उपवास व व्रत किये, नवीन मन्दिरों की स्थापना बड़े थाटमाट से प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, कर ली कि समझो धर्माचरण हो गया। इस प्रकार की धारणा रुढ होती जा रही है। इस तरह प्रतिदिन एक दो घण्टे धार्मिक कार्यों में लगाकर बाकी समय, हिंसा, असत्य, चोरी, परिग्रह व अब्रह्मचर्य में व्यतीत करने के लिए मनुष्य मुक्त हो जाता है । इसीलिए दंभ व दोगली वृत्ति बढने लगती है। धर्म का मतलब शुष्क-क्रियाकाण्ड अथवा नियमित व निश्चित समय पर की जाने वाली कसरत नहीं। सत्य, प्रेम, संतोष, शान्ति, क्षमा, सरलता, त्याग, सेवाभाव, सहिष्णुता, औदार्य, इत्यादि सद्गुणों की सुगन्ध धार्मिक व्यक्ति के जीवन में निरन्तर महकना चाहिए। इससे उस व्यक्ति को ही नहीं अपितु उसके आस-पास की समाज को भी शान्ति व प्रसन्नता मिलेगी अथवा उस व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन ही धर्ममय, सद्गुणयुक्त होकर उस व्यक्ति का कौटुंबिक, सामाजिक, आर्थिक राजकीय, व राष्ट्रीय जीवन में भी सहजता से सत्य, प्रेम, सेवा, क्षमा, आदि सिद्धांतों का आविष्कार होगा। भ. महावीर के अहिंसा व अनेकान्त इन विश्वव्यापी चिरन्तन मूल्यों में जीवन की कोई भी समस्या सुलझाने का सामर्थ्य होते हुए हम सिर्फ इन मूल्यों की दूर से पूजा करते हैं। उनके अभिमान को छोड़कर उनका उद्घोष करते हैं, परन्तु वैसा जीवन नहीं जीते। हमारा उस परसे विश्वास ही उड़ गया है।

इस कारण जैन संम्पदाय महावीर के मूल जिनधर्म से दूर हो गया है। जात, भाषा, प्रान्तीयता, सम्प्रदाय इत्यादि विविध भेदों के कारण खोखला हो गया है। परस्पर कलह और विद्वेष में उफान आ गया। श्वेताम्बर और दिगंबर सम्प्रदाय में तो समझो अहि-नकुल जैसा बैरभाव हो गया।

स्त्रियों का समाज में स्थान अत्यन्त निम्न है। स्त्री-जन्म का अर्थ पूर्व पापों का परिपाक, कन्या मतलब संकट, ऐसी धारणा हो गयी है। दहेज प्रथा की अघोरी चाल पराकोटि को पहुँच चुकी है। स्त्रियों में भी उनके सुप्त सामर्थ्य का ज्ञान नहीं



तब वह पुरुषों में कैसे हो सकती है? भ. महावीर ने स्त्री-पुरुषों को आध्यात्मिक आदि क्षेत्रों में समान माना था। समाज में उन्हें प्रतिष्ठा का स्थान दिया था। इसका हमें पूर्ण विस्मरण हो गया है। समय की चाल को पहचानकर बुद्धिमत्ता, विज्ञान,साहस व दीर्घोद्योग का अवलंब करके जैन बन्धुओं ने स्वतः सर्वांगीण उन्नति क्यों नहीं करनी चाहिए। अहिंसा संबंधी चमत्कारीक कल्पना के कारण जैन लोगों ने क्षात्रवृत्ति (क्षत्रिय) की उपासना नहीं की। कितने जैन मल्लविद्यादि क्रीडाक्षेत्र में मिलिटरी, पुलिस इत्यादि व्यवसाय में दिखाई देते हैं? समाजसेवा, राजनीती आदि क्षेत्रों में भी जैन लोग बहुधा उदासीन दिखाई देते हैं। इस प्रकार 'जिन धर्म' का जैन धर्म अथवा जैन सम्प्रदाय में आज तक परिवर्तन (रूपान्तरण होते हुए मुख्य रूप से कौनसे परिवर्तन हुए हैं इसे समझा। अब अन्तिम मुद्दा वर्तमान युग-के सन्दर्भ में जैन संप्रदाय को कौनसा स्वरूप प्राप्त होना जरूरी है और उस दृष्टि से जैनों के आज क्या कर्तव्य हों इसका विचार करे।

जिनधर्म और जैनधर्म में अन्तर

जिनधर्म और जैनधर्म इन दोनों शब्दों के अर्थ में मुख्य अन्तर यह है कि जिनधर्म से जैन परंपरा के मूल आन्तरिक स्वरूप का बोध होता है, जिसको हम जैन संस्कृति का प्राण हृदय आत्मा कहते हैं। अनेकान्त, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, तप, त्याग, संयम, ध्यान, ज्ञान, भक्ति इत्यादि आध्यात्मिक सद्गुणों का समावेश जिनधर्म में होता है। ये सद्गुण ही आध्यात्मिक उत्कर्ष की जिनावस्था-आत्मसाक्षात्कार मोक्ष प्राप्त करने के मूलभूत साधन हैं। ये सभी साधन सर्वाकालीन व विश्वव्यापी होने से केवल जैन ही नहीं अपितु सभी सम्प्रदायों में उनका दर्शन (दिखाई देना) होता है। क्योंकि परमात्मा, विशुद्ध आत्मस्वभाव, अन्तिम सत्य ये सभी एक ही होते हुए उनका आविष्कार स्थल, काल, व्यक्ति, जाति, निवेदन पद्धति, भाषा, इत्यादि के कारण भिन्न होता है। उदाहरणार्थ हम केवल साम्प्रदायिक दृष्टि से महावीर, बुद्ध, कृष्ण, उपनिषदों को रचयिता सृष्टि इनको भिन्न भिन्न समझते हैं। परन्तु उनके मौलिक उपदेश में, सत्य में शब्दभेद के अलावा अन्तर दिखाई नहीं देगा। महावीर की आत्मानुभूति अहिंसा व अनेकान्त की भाषा में बुद्ध तृष्णा त्याग व मध्यमप्रतिपद की भाषा में कृष्ण निष्काम कर्मयोग का भाषा में तो औपनिषद ऋषि अविद्या-निवारण व परा-अपरा विद्या की भाषा में व्यक्त करते हैं ये सभी एक ही सत्य का प्रतिपादन भिन्न भिन्न पद्धति से करते हैं क्योंकि अहिंसा, तृष्णात्याग, निष्कामकर्मयोग, अविद्या अथवा अज्ञान निवारण ये परस्पर अवलंबी साधन होते हुए एक ही स्थिति में ले जानेवाले हैं। इसका अर्थ धर्म का आत्मा यह विशिष्ट सम्प्रदाय के लिए मर्यादित न होकर वह सर्वत्र दिखाई देता है देश, काल, जाति,

भाषा, वेष, आचार इत्यादि सीमान्त वैसे ही सीमाबाह्य भी उसका अस्तित्व दिखता है। जीवनशुद्धि यही धर्म की शुद्ध आत्मा है। वही जिनधर्म है। वह शाश्वत होते हुए उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं और वह संभव भी नहीं है। धर्म का मतलब वस्तु (द्रव्य) का मूलस्वभाव उसमें परिवर्तन कैसे किया जा सकता है?

समयानुसार परिवर्तन, सुधारणा करनी पड़ती है। वह धर्म के देह में, बाह्य आविष्कार, बाह्य व्यवहार में और इस बाह्य व्यवहार में स्नान, संध्या, उपास-तपास (उपवास) मूर्ति-पूजन, व्रत-विधान, तीर्थयात्रा, देहदमन, कर्मकाण्ड, सामाजिक रीति-रिवाज, रूढ़ि इत्यादि कार्य आते हैं। यह व्यावहारिक धर्म, आध्यात्मिक आत्मधर्म और जीवनशुद्धि के लिए पोषक होना चाहिए। वैसा न हुआ तो उसमें कालोचित परिवर्तन करना अनिवार्य होता है। जैन सम्प्रदाय का आत्मा धर्म है, तो शरीर में संघरचना, साहित्य,तीर्थक्षेत्र, मन्दिर, शिल्प एवं स्थापक कला, उपासनाविधि ग्रन्थालय आदि का समावेश होता है। जैन-सम्प्रदाय के विशाल साहित्य, तीर्थक्षेत्र व मन्दिर इनका महत्त्व निर्विवाद है। प्राचीन जैन ग्रन्थभण्डारों में केवल आध्यात्मिक विषयों पर ही नहीं परन्तु वैद्यक, ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र, संगीत, भाषा शास्त्र, काव्य, नाटक, अलंकार, पुराण, कथा, व्याकरण इत्यादि लौकिक विषयों पर भी अनेक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। उन ग्रन्थों का सम्पादन, प्रकाशन, व संवर्धन आध्यात्मिक ग्रन्थों के समान करना जरूरी है। परन्तु सच्चे अर्थो में परिवर्तन करना है तो संघरचना मे



श्रावक श्राविका व मुनि आर्यिका इनके आचार-विचारों में मतलब जैन समाज में परिवर्तन करना होगा।

यह फेरबदल करने का निकष मतलब अहिंसा, अनेकान्त, बुद्धिप्रामाण्य, मानवता, समाज संरचना, अन्य सम्प्रदायविषयी सहिष्णुता, राष्ट्रप्रेम, किसी भी समस्या को ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक दृष्टि से देख-परख कर सत्यान्वेषण करना और विज्ञान यह आज का युगधर्म होने से आचार विचारों की परीक्षा वैज्ञानिक दृष्टि से करना। आज जैन सम्प्रदाय का आत्मा जैसे मूर्छित हो गया है। धर्म चेतना का स्पन्दन अत्यन्त मन्द हो रहा है। भ. महावीर के बाद अनेक दिगंबर व श्वेतांबर आचार्यों ने समय-समय पर धर्मजागृति करने के प्रयत्न किये यह सत्य, परन्तु उसका प्रभाव मर्यादित और अल्पकाल ही रहा। बीसवी शताब्दि में दिगंबर जैन समाज में आचार्य शान्तिसागर व कानजी स्वामी ने खूब धर्म-जागृति की और चैतन्यता निर्माण की। परन्तु उनके कार्यक्षेत्र केवल दिगंबर जैन सम्प्रदाय तक ही सीमित रहे। भ. महावीर की अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह, सत्य, ब्रह्मचर्य स्त्री-पुरुष समानता, अस्पृश्यता, निवारण, वर्गसमानता निवृत्तिप्रवृत्ति-समन्वय आदि तत्त्व स्वतः आचरण में उतारकर उनका सामर्थ्य केवल भारत को ही नहीं अपितु समस्त दुनिया को दिखाने के युग प्रवर्तक काम किसी ने किया है तो

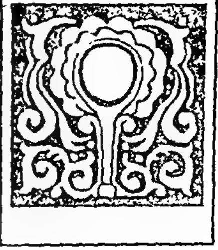


वह तीर्थंकर सदृश महात्मा गांधी ने किया। भ. महावीर ने अनेकान्त व अहिंसा का प्रयोग प्रमुखता से आध्यात्मिक जीवन के सन्दर्भ में किया था। परन्तु महात्मा गांधी ने दुनिया के इतिहास में पहली बार उनका अवलंबन लेकर राजकीय, क्षेत्र में करके सत्याग्रह व अहिंसक प्रतिकार के द्वारा खण्डप्राय भारत को स्वतन्त्रता दिलाई। महात्मा गांधी का जीवन, कर्तृत्व व विचार इसका अध्ययन जैन संप्रदाय में फेरबदल करने की दृष्टि से अत्यावश्यक है।

आज जैनसमाज में विद्यमान कुछ अत्यावश्यक कालोचित सुधार निम्नानुसार व्यक्त किये जा सकते हैं।

१) जिस प्रकार कोई विशाल जलाशय का पानी कम हो गया अथवा सूख गया तो उसकी जमीन फटकर दरारें पड़ जाती हैं उसी प्रकार आज जिनधर्म रूपी चैतन्य क्षीण होने से जैनसम्प्रदाय रूपी देह के अनेक टुकडे हो गये हैं और साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण वे टुकडे परस्पर झगड़ने लगे हैं। अहिंसा, अनेकान्त आदि धर्म-चैतन्यता की वृद्धि करना तो दूर रहा,परन्तु मात्र बाह्य जीर्ण-शीर्ण देह से स्वामित्व हेतु संघर्ष में ही इतिश्री मानकर एक दूसरे के विनाश में कारणीभूत हो रहे हैं। अनेकान्त व अहिंसा का अवलंबन लेकर दिगंबर और श्वेताम्बर समाज के मतभेद समाप्त किये जायें तो उत्तम होगा। ज्यादा नहीं तो परस्पर वैर भावना को छोड़कर सहिष्णुता से सहजीवन जीना आ जाये तो बहुत ही अच्छा होगा। इन दोनों सम्प्रदायों में जो छोटे मोटे सैद्धान्तिक मतभेद हैं उन्हें अनेकान्त के माध्यम से निम्नानुसार हटाया जा सकता है। उदहारणार्थ नग्नत्व-वस्त्रधारण संबंधी विवाद पर द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नय का आश्रय लिया जा सकता है। जैनत्व अथवा वीतराग यह द्रव्यसामान्य तो नग्नत्व अथवा वस्त्रधारण की विविध अवस्थाओं की पर्याय कहा जा सकता है। वीतरागीयता यह शाश्वत तो नग्नत्व वस्त्र-धारणादिक पर्याय यह यदि द्रव्य-संबद्ध द्रव्य पोषक हुए तो सत्य और यदि द्रव्य विनाशक हुए तो असत्य वैसे ही जीवनशुद्धि यह द्रव्य है, स्त्रीत्व और पुरुषत्व ये दोनों पर्याय जब तक जीवनशुद्धि के पोषक हैं तब तक सत् अथवा असत् है। ऐसी ही पद्धति से तीर्थक्षेत्र, मन्दिर, जातिभेद, पंथ, सम्प्रदाय इत्यादि सम्बन्धी मतभेद अनेकान्त व अहिंसा के आश्रय से दूर करना चाहिए।

२) प्रवृत्ति-निवृत्ति सम्बन्धी भी अनेकान्त के अवलंबन से जैनधर्म कैसे उभयमार्गावलंबी है यह दिखाया जा सकता है। व्यावहारिक धर्म का मतलब सत् सम्यक् शुभ भावों में कार्य में प्रवृत्ति तो अक्षत् अशुभ भावों के द्वारा कार्य से निवृत्ति होती है और शुभ भाव से ही निवृत्त होकर विशुद्ध आत्मस्वभाव में प्रवृत्त होना यह पारमार्थिक धर्म हुआ। परन्तु आत्मस्वभाव में क्षणभर के लिए स्थिर

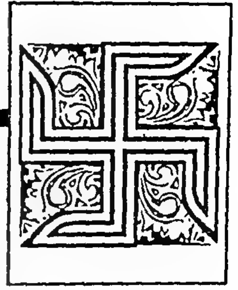


होना भी अत्यन्त कठिन कार्य है। बाकी सर्व काल ध्येयभूत शुद्ध भाव का लक्ष्य शुभ भाव में व्यतीत करने के अलावा गति नहीं है। मुनियों व श्रावकों के अहिंसादि सभी व्रत अशुभ भावों से और क्रिया से निवृत्त होकर शुभ भाव में कार्य में प्रवृत्त होने के लिए हैं। केवल प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति यह एकान्त है। इसीलिए प्रेम, सत्य, संतोष, क्षमा, करूणा, परस्पर सहकार्य इत्यादि आध्यात्मिक सद्गुणों को प्रथम उपासना करके उनका उपयोग इस जगत में परस्पर समाज और राष्ट्र का विकास करने के लिए करना चाहिए। इसीलिए जैन श्रावकों व मुनियों को अब वैयक्तिक आध्यात्मिक सद्गुणों का विकास करने हेतु स्वतः के कार्य क्षेत्र में क्रान्तिकारी पद्धति से परिवर्तन करना पडेगा। क्योंकि यह वर्तमान काल की आवश्यकता है। उसे बडे स्तर पर मिशन्स अथवा सेवाभावी संस्थाओं की स्थापना करके समाज और राष्ट्र का ही नहीं बल्कि अखिल मानव समाज का सर्वांगीण विकास एवं उन्नति के कार्य में लगाना पड़ेगा। दारिद्र अज्ञान, बेरोजगारी, भूखमरी, अन्याय, आदि में फंसे हुए बहुजन समाज की ओर आँख बन्द करने से नहीं चलेगा। समाज की ओर पीठ फेरने अथवा वन के एकान्त में जाकर तपस्या करने के दिन बीत गये। क्योंकि प्राचीन अरण्य गये और उनका एकान्त भी गया, जब भारत में सुवर्णयुग होते हुए सधन व सम्पन्न था। लोकसंख्या कम थी, जीवन सादा और सरल था, लोगों के पास भरपूर समय था। खाने-पीने की समृद्धि थी। इसलिए ऐहिक पुरुषार्थ करने की भी विशेष रूप से आवश्यकता नहीं थी। त्यागी व साधुवर्ग का भार समाज को भारी नहीं था। इसलिए तपोवन में जाकर तपस्या, शास्त्राभ्यास, ध्यान, चिन्तन, मनन, सुलभतापूर्वक किया जा सकता था। दीक्षा का उद्देश्य आत्मशुद्धि, जीवनशुद्धि होते हुए जिस प्रकार वह स्वाध्याय, ध्यान व तप के द्वारा प्राप्त की जा सकती है उसी प्रकार मानवता की सेवा भी की जा सकती है। आज यदि त्यागी वा गृहस्थ निवृत्ति के नाम पर निष्क्रिय, आलस्य पुरुषार्थहीन, व परावलम्बी बसकर समाज की सेवा करने के बजाय यदि समाज पर भार डालकर समाज से ही सेवा करवाते रहे तो आत्मगुणों का विकास न होकर उन्हें इहलोक भी नहीं सकते और परलोक भी नहीं साधा जा सकता। जैन लोग दुर्दैव से अहिंसादि व्रतों का नकारार्थी अर्थ लेकर केवल अशुभ वृत्ति टालने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु सत्य, सेवा, प्रेम, त्याग, इत्यादि आध्यात्मिक सद्गुणों का आश्रय लेकर कठोर और वास्तविक जीवन के समक्ष नहीं जाते। इस कारण पलायनवादी वृत्ति निर्माण होकर धर्म केवल आदर्श ही माना जाता है। दैनंदिन जीवन के विविध क्षेत्रों में सहजता से आचरण में नहीं लाया जाता। जैन त्यागी और गृहस्थों की इसीलिए बड़ी विचित्र मनःस्थिति हो गई है। परम्पराप्राप्त अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि आदर्श तत्वों के मूल्य हमें मान्य हैं



परन्तु ये महान सिद्धान्त आचरण में दिखाई नहीं देते, रोज के व्यवहार में मात्र हम हिंसा, असत्य व परिग्रह का ही अवलंबन करते है। जैनों में ऐसी धारणा व्याप्त है कि कुटुंब, समाज, ग्राम, राष्ट्र इत्यादि से सम्बन्धित होनेवाली प्रवृत्ति, सांसारिक, ऐहिक व व्यावहारिक होते हुए भी ऐसी सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक व राजकीय प्रवृत्ति में न सत्य साथ देता है, न ही अहिंसा काम कर सकती है, न ही अपरिग्रहादि सिद्धान्त कार्यसाधक होते हैं। ये सभी धर्म-सिद्धान्त उच्च हैं। उनका परिपूर्ण पालन या व्यवहार में संभव नहीं है। उसके लिए संसार (गृहस्थ जीवन) का त्याग करके एकान्त में जाना चाहिए। त्यागी जन भी दिनरात सत्य, अहिंसा व अपरिग्रह का उपदेश देते हुए व्यवहारिक जीवन में उनका सम्यक् अवलंबन कैसे किया जाय कह नहीं सकते। सच्चे अर्थों में धर्म का पालन करना हो तो घरदार, परिवार, समाज व राष्ट्र की जवाबदारी छोड़ना और दीक्षा ले लेना यही दिखाई देता है। ये जबाबदारीयाँ और सत्य अहिंसादि व्रतों का शुद्ध पालन एक ही समय में संभव नहीं। ऐसा उनको मन में लगा रहता है। इसी कारण जैन समाज चैतन्यहीन गतानुगतिक निष्क्रिय व विविध सामाजिक व धार्मिक एवं निरर्थक रूढियों का गुलाम बनता जा रहा है। महात्मा गांधी ने आध्यात्मिक गुणों का विकास समाज सेवा के रचनात्मक कार्यों को लेकर ऐहिक जीवन में कैसे किया जाता है यह स्वयं आचरित करके दिखाया है, जैनों के लिये उनके अनुभव दृष्टव्य हैं।

३) जैन समाज में करीब आधी संख्या स्त्रियों की होगी, स्त्री पर्याय में मुक्ति नहीं। स्त्रियों को उच्चतम ध्यान संभव नहीं, उनका मनोबल हीन है, वे अबला है, वे चंचल होती है, नरदेह प्राप्त होना यह पुण्य का फल और नारीदेह प्राप्त होना यह पूर्वजन्म के पापों का परिणाम है। स्त्रियों को स्वतन्त्रता मत दो। उनमें अक्कल कम होती है, उनको ढील दी तो वे मस्तकपर चढ जाती हैं। वे मत्सरी व मायावी होती है। भाई भाई में झगड़ा करवाती है, घर उनके कारण ही विघटित होते हैं। कन्या जन्म की अपेक्षा पुत्र श्रेयःस्कर है। किसी को लड़की होना मतलब संकट, इस प्रकार के बखान खूब हुए। परन्तु आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मात्र लैंगिक भेद, गर्भधारण के नैसर्गिक जबाबदारी व शारीरिक शक्ति की अपेक्षा स्त्री-पुरुषों में भेद नहीं है। बौद्धिक और मानसिक दृष्टि से स्त्री पुरुष कम नहीं है। उसे समान सन्धि और अवसर दिये गये तो वह सभी कार्यक्षेत्रों में पुरुषों की बराबरी पर रह सकती है। यह आज सभी जगह अनुभव किया जाने लगा है। आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो नीतिमत्ता, धार्मिकता, आत्मगुण व जीवन शुद्धि में वह कहीं भी हीन दिखाई नहीं देती। महावीर ने एक समय स्त्री-समानता का पुरस्कार किया था, उनके संघ में आर्यिकाओं की संख्या मुनियों की अपेक्षा तिगुनी थी। समाज की यह प्रचण्ड सुप्त



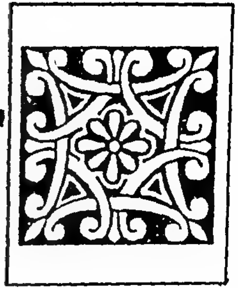
शक्ति आज केवल चूले चौक के बन्धन में जकड़ी हुई है। एक उपभोग्य वस्तु के अलावा उसे समाज में सम्मान का स्थान नहीं है। दहेज प्रथा जैसे घातक और अपमानास्पद रीति से स्पष्ट होता है उसे पुरुषों के समान शिक्षण देकर पारिवारिक कर्तव्यपालन के साथ साथ विविध सामाजिक व राष्ट्रीय कार्यों में समाविष्ट करके उसका सर्वांगीण विकास करना जरुरी है। यदि विधुरों को पुनर्विवाह का बन्धन नहीं तो विधवा को क्यों? ब्रह्मचर्य व संयम यह बाहर से लदने की वस्तु नहीं है। यदि उसमें शक्ति नहीं है तो सम्मानपूर्वक दूसरा विवाह करने में अड़चन नहीं आनी चाहिए। विवाहित जैसे ही परीत्यक्ता का विवाह योग आया नहीं इसलिए अविवाहित कुमारिका वृद्धा, इनको साध्वी बनाकर य न बनने पर भी समाजसेवा के द्वारा निश्चित रूप से आत्मविकास किया जा सकता है। यह प्रचण्ड स्त्रीशक्ति जागृत होकर समाजकार्य के लिए उसका बड़े स्तरपर उपयोग करने के अलावा जैन समाज उन्नत नहीं हो सकता।

४) आंज सुशिक्षित जैन युवक भी जैन संप्रदाय से दूर जा रहा है। उसे पूजा-अर्चना व्रत-विधान, उपवास, स्वाध्याय, साधुओं का धर्मोपदेश में लगन नहीं है। आधुनिक शिक्षण के कारण वह बुद्धिवादी होने से जो मत (बात) उसकी बुद्धिपर जमता नहीं है उसे केवल श्रद्धावश स्वीकार करने को वह तैयार नहीं होता, वस्तुतः जिनधर्म शत प्रतिशत वैज्ञानिक होते हुए बुद्धिप्रामाण्य को अत्यन्त महत्त्व देता है। केवल जैन ही नहीं अपितु प्रत्येक धर्मसंप्रदाय का इतिहास यही कहता है कि अमुक धर्म की उत्पत्ति व प्रवर्तन अमुक बुद्धिमान व्यक्ति ने किया। प्रत्येक धर्मसम्प्रदाय के धर्मगुरु व विद्वान हमारा धर्म बुद्धि, तर्क, विचार व अनुभव सिद्ध है। अभिमान पूर्वक कहते हैं। भगवान महावीर अलौकिक बुद्धिमान व प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे। परस्परविरोधी मतों के समन्वय के लिए अनेकान्त का आश्रय लेना उनका अनुभव सिद्ध बुद्धिवाद का सूचक (द्योतक) है। इस प्रकार धर्म और बुद्धि में विरोध न होकर बुद्धि यह धर्म की उत्पादक, संशोधक, पोषक व प्रचारक तत्त्व है। क्योंकि सत्य के समक्ष जाने का वह एक प्रबल साधन है, ऐसा होते हुए भी धर्म का इतिहास देखा जाय तो धर्म व बुद्धि में हंमेशा विरोध दिखाई देता है। उसका कारण यह कि सत्य, अहिंसा क्षमा, नम्रता, संतोष इत्यादि धर्म के अन्तरंग से यदि बुद्धि का विरोध न हुआ, तो भी जब धर्म का स्नान संध्या मूर्तिपूजा, उपवास, देहदमन (परिषह) इत्यादि क्रियाकांड पर बहिरंग के उपरोक्त अंतरंग से, आन्तरिक आत्मशुद्धि से संबंध नहीं रहता। जब धर्म के नामपर अज्ञान अंधश्रद्धा, दुराचार, दीमुखापन (दुटप्पीपणा) दंभ उभरता है, तब बुद्धि स्वस्थ नहीं रहती। वह धर्माचार्य और पण्डितों से प्रश्न पूछती है। आत्मानुभव व बुद्धिमत्ता के अभाव से उसका समाधान



करने की सामर्थ्य न होने से धर्माचार्य व पंडित अपनी दुर्बलता ढंसने के लिए प्रश्नकर्ता को नास्तिक, पाखण्डी, धर्म द्रोही ऐसी निम्न पदवियां देकर उनकी निन्दा करते हैं। जब कोई सम्प्रदाय बुद्धि को अपना शत्रु समझता है तब उसका विकास अवरुद्ध होता है। वह आत्मशुद्धि व जीवनोन्नति के लिए कदापि हितकारक नहीं होता। ऐसा बुद्धिविरोधी धर्म अस्वीकार करने में ही आत्मशुद्धि व जीवनोन्नति सिद्ध की जा सकती है। आज इस्लाम, हिन्दु व जैन संप्रदाय बुद्धिवाद से घबडाते हैं। विज्ञान का विरोध करते हैं। उनके अनुयाइयों को वैचारिक स्वतन्त्रता न होने से ये धर्म मृतप्राय हो गये हैं। युवकों में उनका आकर्षण नहीं हैं, आज का युवा वर्ग विज्ञान, तर्कशास्त्र, इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, मानसशास्त्र, अर्थशास्त्र इत्यादि का अध्ययन करने लगा है। इसीलिए स्वतन्त्र व निर्भय होने लगा है। जैन युवावर्ग भी आज जैनसंप्रदाय के बाह्य आचरण पर प्रहार करने लगा है। तो भयभीत होने का कोई कारण नहीं है, इसके विपरीत कठोर आत्मपरीक्षण होकर सुधार होगा। महावीर के जिनधर्म का सार बुद्धिवाद व मानवता में निहित है। व्यक्ति की उन्नति समाज व राष्ट्र की उन्नति में मानता है। विश्व बंधुत्व व स्वतंत्रता ये जिनधर्म के अंतरंग अंग है। वह विज्ञान व धर्म, त्याग व भोग, निष्काम कर्मयोग व संन्यास में भेद नहीं मानता। वह दैववादी न होकर पुरुषार्थवादी है। वहाँ निराशा को स्थान नहीं है। यह सब युवकों को पटने जैसी हैं। इस युवाशक्ति को भी जैनसमाज व देश के विकास कार्यों में लगाना अत्यावश्यक है। कल का जैनधर्म उनके हाथ में है यह नहीं भूलना चाहिए। जैन धर्म का ऐतिहासिक तुलनात्मक व वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन व विश्लेषण करके उसे कालोचित नूतन रूप प्रदान करना उन्हीं पर अवलंबित है। उदाहरणार्थ सूर्य पृथ्वी को चक्कर लगाता है, मनुष्य चन्द्रमा पर नहीं जा सकता, केवल जैन धर्म ही मोक्षदायी है। अन्य सम्प्रदाय मिथ्या है उन सम्प्रदायों के साधु मिथ्यात्वी, अज्ञ व पाखण्डी हैं, अस्पृश्य जैन मुनिधर्म नहीं पालन कर सकते क्योंकि उनका पिण्ड शुद्ध नहीं है। इस प्रसार के वचन विज्ञान व बुद्धिवाद के आगे चलने योग्य नहीं, अपना वर्तमान जीवन बहुतांश विज्ञान पर आधारित है। एक ओर विज्ञान से होनेवाले लाभ उठाना है तो दूसरी ओर विज्ञान को धर्म विरोधी समझ कर उसकी उपेक्षा करना इसमें विसंगति व द्विभेदीपना दिखता है। धर्म और विज्ञान ये सत्य के साधन होने से उनकी पद्धति भिन्न हुई तो भी वे परस्पर मारक न होकर एक दूसरे के पूरक हैं।

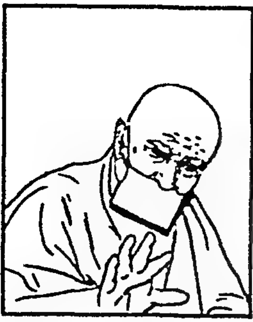
५) पहले जैन साधु तपोवन में प्रकृति के सान्निध्य में ग्रामों से दूर रहते थे। बाह्य नग्नत्व तव अपरिग्रह तपस्या, कायक्लेश व निर्विकारता के प्रतीक रूप प्रतिष्ठित थे। तव खूब समृद्धि व खुशहाली होने से स्वयं उत्पादक श्रम न करते हुए एक दूसरों की श्रमशक्ति पर रहकर सुखपूर्वक



ध्यानधारणा आदि की साधना करते थें। उसमें कुछ भी अनुचित नहीं था। परन्तु पहले के वनवासी साधु अब चैत्यवासी नगरवासी हो गए हैं। तथापि मुनियों के बाह्य आचरण में अब भी अन्तर नहीं आया, नग्नत्व व वीतराग भाव में अविनाभावी संबंध नहीं है। आत्मशुद्धि वस्त्रों के भाव-अभाव पर अवलंबित नहीं है। ध्यानमग्न योगियो को वस्त्रों का क्या देह का भी भान नहीं रहता। एक तरफ अपरिग्रह के द्योतक वस्त्रों का भी त्याग करना और दूसरी तरफ कार, मोटर, रसोडा, खेती इत्यादि विविध प्रकार का परिग्रह खड़ा करना इसमें विसंगति दिखती है। अपरिग्रह के संरक्षण के लिए परिग्रह, अहिंसाव्रत के रक्षण हेतु हिंसा ऐसा होता है। अब इन सभी का गंभीरता के साथ विचार-विमर्श करने का समय आ गया है। आज के जैन साधुओं में आहार-विहार की सादगी कम होने लगी है दीक्षा का मुख्य उद्देश ज्ञानोपासना, तपस्या, ध्यान इत्यादि साधनों से आत्मसाक्षात्कर वा आत्मशुद्धि सिद्ध करना है। आज आत्मानुभवी, ज्ञानी, वीतरागी और दूसरों के लिए आत्मानुभव सम्बंधी मार्गदर्शन करने में समर्थ साधू दुर्लभ होने लगे हैं। इसी कारण उनके प्रति भक्तिभाव व आदर में कमी आने लगी हैं और लोगों को बोझ होने लगे हैं। कुछ नगरों में भरपूर जैन लोगों के रहते हुए भी आज चन्द लोगों को भोजन करना हो तो लोगों को कहना पड़ता है। वस्तुस्थिती ऐसी है। उद्दिष्ट भोजनत्याग का नियम केवल शास्त्रों में ही बचा है। समाज सेवा करना दीक्षा का एक प्रमुख हेतु होते हुए समाज से सेवा करवाने का प्रमाण बढ़ता जा रहा है। कोई भी गुणवान और उपयोगी वस्तु अनादर को प्राप्त नहीं होती वह बोझ नहीं जानी जाती। चाहे वस्तु सजीव हो निर्जीव। जैन साधूओं को अपनी गुणवत्ता, उपयुक्तता व अनिवार्यता नवीन रूप से सिद्ध करने का समय आ गया है। गुण और उपयोगिता की ओर दुर्लक्ष्य करके केवल ,दीक्षित नग्न साधू होकर नई पीढ़ी से आदर प्राप्त करना संभव कम ही है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात, जैन-श्रावकों अथवा मुनियों को अपने-अपने कर्तव्य निरपेक्ष, निरासक्ति से करते हुए दैनंदिन जीवन से अध्यात्म को धर्म से अलग न करते हुए जीवन यह अध्यात्म के विकास की प्रयोगशाला मानना चाहिए। जैन श्रावक किसी भी व्यवसाय/उद्योग में हो उसे व व्यवसाय प्रामाणिकतासे, कर्तव्यभावना और सेवाभाव से की तो जीवनशुद्धि के लिए अलग से व्रत-पालन की आवश्यकता नहीं होगी।

अपने कर्तव्य-पालन करते हुए प्रत्येक श्रावक को उसकी योग्यतानुसार पुरुषार्थानुसार अवश्य ही सुखोपभोग और शुभफल की प्राप्ति होगी। परंतु इससे भी महत्त्वपूर्ण कार्य उसका जीवन नित्य विकसित और शुद्ध होकर भरपूर मानसिक शान्ति व सन्तोष प्राप्त होगा। इसपर कोई ऐसा कह सकता है कि ये सभी आदर्श

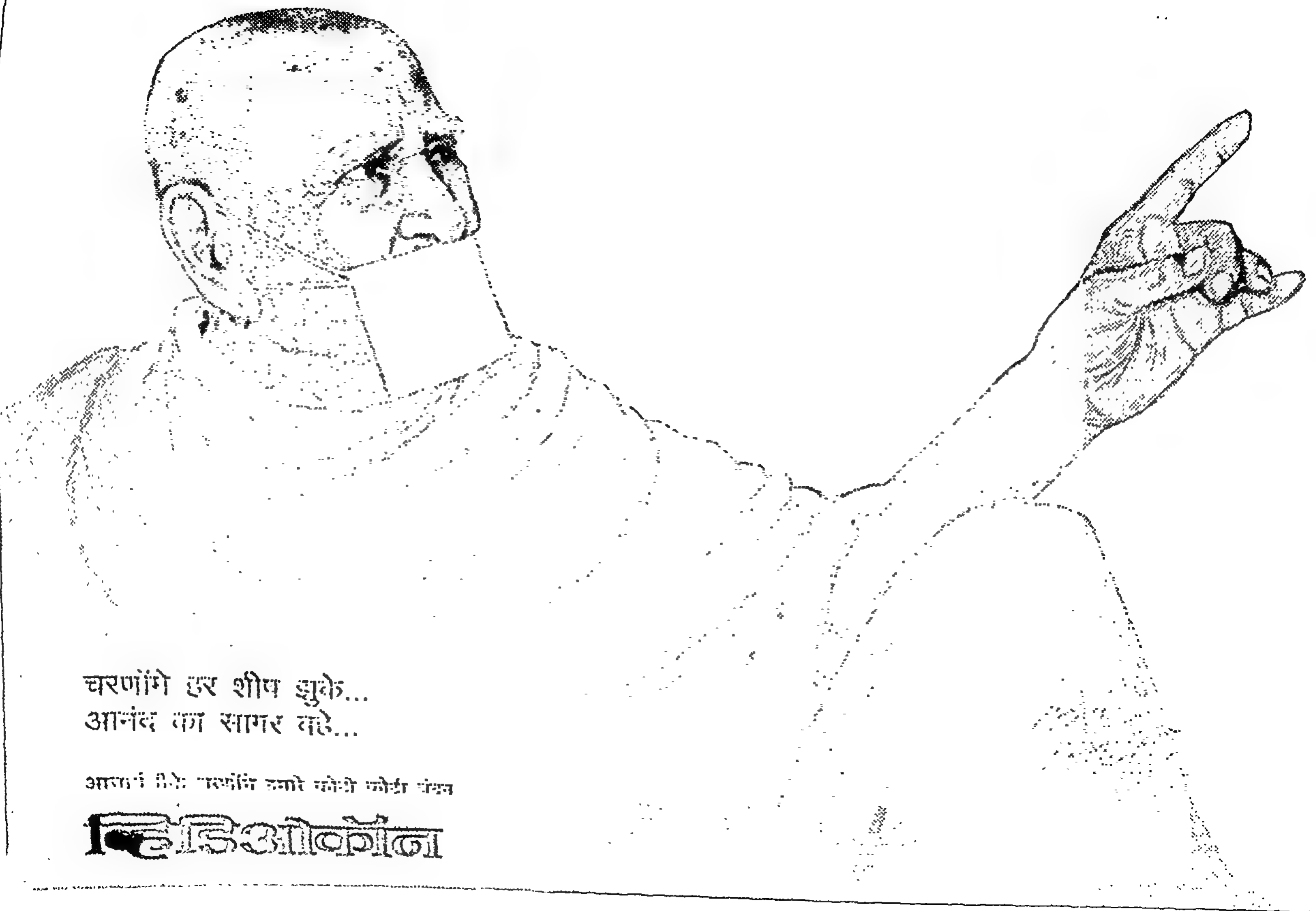


केवल स्वप्न हैं। क्योंकि व्यवहारिक दुनिया में असत्य, हिंसा व परिग्रह के अतिरिक्त चलता नहीं है इत्यादि। परन्तु धार्मिकता का अर्थ मुख्य रूप से स्वयं के सुख दुःख के साथ-साथ दूसरों के सुखदुःख का विचार करना। आत्मोंपम्य बुद्धि की उपासना करना। अपने को स्वतः विषयी और परिवार के प्रति ममता, मोह रहता है, उसके लिए हम श्रम करते हैं स्वार्थों का त्याग करते है यह भी धर्म ही हुआ,परन्तु इस धर्म की व्याप्ती केवल स्वयं के परिवार के प्रति मर्यादित होकर जब वह समाज, राष्ट्र, अखिल मानव समाज, पशु, पक्षी, कीटक, वनस्पती इस प्रकार विश्वव्यापक होती है तब ही उसे निरासक्त प्रेम अथवा अहिंसा कहते हैं। यह महान स्वप्न वर्धमान स्वामी को हुआ। कृष्ण, बुद्ध, मोहम्मद, येशू, झरतुष्ट्र, रामकृष्ण, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों को भी हुए और उन्होंने उन स्वप्नों को यथाशक्ति व्यवहारिक सत्य-सृष्टि में लाकर लोंगो को प्रेरित किया। अनेकान्त, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रहादि अर्थात् जिनधर्म की उन्होंने साधना की और उसका साक्षात् अनुभव प्राप्त किया।

जैनों को उनसे प्रेरणा लेकर जैन धर्म का प्राण 'जिनधर्म' का यथाशक्ति अवलंबन किया तो यह जीवन श्रेयस्कर, कल्याणमय, शान्तिदायी,सुखकर व सफल होकर ही रहेगा।



- *जो मनुष्य सदाचारी है, विषय-भोग से निस्पृह है, उसे समय पर निद्रा आए बिना नहीं रहती।*
- *निद्रा व्याधिग्रस्त की माता, भोगों की प्रियतमा और आलस्य की कन्या है।*
- *विषधर प्राणी अधिक समय तक सोते रहें तो अच्छा, किन्तु सन्त, महात्मा और साधक को तो अल्प निद्रा लेकर ही जाग उठना चाहिए।*
- *जागना (ज्ञान) ऐश्वर्यप्रद है तथा सोना दरिद्रता का मूल है।*
- *जिन बातों में कोई सार नहीं होता ऐसी बेसिरपैर की तथा इधर-उधर की बातें करके व्यर्थ में ही कर्मों का बन्धन करना मनुष्य की अज्ञानता का लक्षण है।*
- *यह मत भूलो कि कहे हुए शब्द और बीता हुआ समय, ये पुनः लौटकर नहीं आ सकते।*
- *समय को तो संसार में सबसे शक्तिशाली अर्थात् परमात्मा से भी अधिक बलशाली माना जाता हैं।*
- *हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।*



चरणोंमे हर शीष झुके...
आनंद का सागर बहे...
व्हिडिओकॉन
SURAJ

।। श्री आनंदप्रभवे नमः ।।

स्वाहासहित नित्य जप जागृत,
सर्वशक्तिकर साध्य समादृत ।
उल्कापात-विवर्त-प्रशामक
अनावृष्टिहर जीवनग्रामक ।
सन्तारक संस्कारक साधक
गुरुवरनाम विपत्ति-विराधक

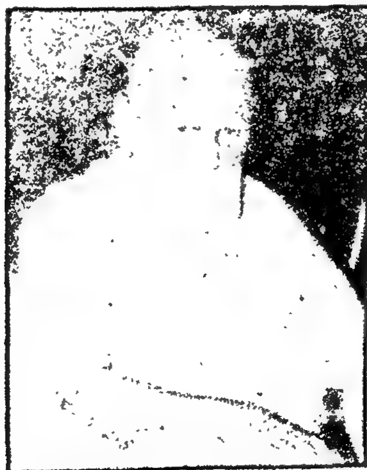
जिन्होंने अपने दिव्य व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जैन-अजैन जनता में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर भारतीय संस्कृति के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर धार्मिक, आध्यात्मिक चेतना को प्रसारित-प्रवाहित कर मम सदृश जीवों को सामाजिक-धार्मिक कार्यों के प्रति प्रेरित किया, ऐसे

युग पुरुष, प्रातः स्मरणीय, राष्ट्रसंत, जैनधर्म दिवाकर,
महामहिम पूज्य आचार्य सम्राट् श्री १००८

श्री आनन्दऋषिजी महाराज

की ९३ वीं जन्मजयन्ती

के पावन प्रसंग पर श्रद्धा भक्ति पूर्वक भावाञ्जलि



नेमनाथ जैन
प्रेस्टीज

कार्यालय
जावरा कम्पाऊंड, इन्दौर
दूरध्वनि : ४६६७१४

निवास
न्यू पलासिया, इन्दौर
दूरध्वनि : ४४३३४६

अंकुश मत्स्यशंखधरजातक
मुक्तिरमापति सौख्यप्रपातक।
सन्मतिदूत महाव्रतधारी,
अमितकीर्ति शुभचरणविहारी॥
महापात्र पात्रधरयोगी
शिव संकल्प निरभ्र नियोगी।
रजोहरणधर मतिमलहारी,
मुखवस्त्रिका गोप्य सुखकारी॥

परमश्रद्धेय, राष्ट्रसंत, महामहिम, पूज्य गुरुदेव

आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की

९३ वीं जन्म-जयंती

के अवसर पर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भाववंदन



शंकरलाल भण्डारी
रमेश भण्डारी
प्रकाश भण्डारी
दिलीप भण्डारी (देवलाली प्रवरा निवासी)

१, कोणार्क अपार्टमेंटस्, १७५, ढोले पाटील रोड,
पूना ४११ ००१ ■ दूरध्वनि : ६६४३४३, ६६५४५४

॥ श्री आनंदप्रभवेनमः ॥

महामनीषऋजुल सन्धाता,
योगानलवपु विभु व्याख्याता।
वाचस्पति वाग्मी विज्ञानी
व्रात्य वरद विश्रुत सुविमानी॥
महास्थविर भवपोत धुरन्धर
महामहिम अनिकेत-पुरन्दर।
जय पादारविन्द द्वैपायन,
पारमितामित भक्तिरसायन॥



पूज्य आचार्य सम्राट् की
९३ वीं जन्म-जयन्ती

के अवसरपर कोटिशः वन्दनपूर्वक श्रद्धा-सुमन समर्पित



डी. खीमूलाल छाजेड़

५८/१ जी स्ट्रीट, अलसूर बाजार,
बेंगलोर ८ (कर्नाटक)

समितिजय गुप्तीश गुणाकर, मैत्र करुण माध्यमस्थ मिताक्षर।
आदिनाम नेमीचन्द्रायुत, देवीचन्द्र तनय श्री सफल।।

जिन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा, तेजस्विता से जन-मानस को
एक नयी दिशा प्रदान कर सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर
भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करके हमारे जैसे लोगों को
धार्मिक-सामाजिक सेवा हेतु प्रवृत्त किया।
ऐसे प्रातःस्मरणीय, महामहिम, राष्ट्रसंत, जैनधर्म दिवाकर,
ज्ञान महोदधि, युगपुरुष

स्व. आचार्य सम्राट् श्री आनंदऋषिजी म. की

९३ वी जन्म-जयन्ती

के अवसर पर उनके पावन चरणों में
भक्ति-भाव वन्दनपूर्वक हार्दिक श्रद्धाभिव्यक्ति

जयप्रकाश, अनिल, राजेश, राहूल, अमित
एवम् ललवाणी परिवार

आनन्द आनन्द आनन्द सरसिज नयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
शान्तं दान्तं प्रशान्तं नमाम्यहं तं आचार्य प्रवरम्।।

जो अपनी अमृतवाणी से भक्तजनों को तृप्त कर
आनन्द की निर्झरिणी सदैव प्रवाहित करते हुए
संगठन एवम् ऐक्यता हेतु सतत चिन्तन मनन में
निमग्न रहे है, ऐसे ऋषि वरेण्य प. पू. आचार्य सम्राट्

श्री आनन्दऋषिजी महाराज

की

९३ वीं जन्मजयंती

पर भांव भक्ति पूर्वक वन्दन।

॥ श्री आनंदऋषये नमः ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जिनके रग-रग में दया, अहिंसा, करुणा की निर्झरिणी
प्रवाहित होती रहती थी, ऐसे परमोपकारी, परमश्रद्धेय,

पूज्य आचार्य सम्राट् श्री आनन्दऋषिजी म. को

९३ वीं जन्मजयन्ती पर भावपूर्वक वन्दन।

आनंद डिस्ट्रीब्युटर्स

कॉटन बँडेजेस और मेडिसीन सप्लायर्स,
१३२०, कसबा पेठ, पुणे ११ ● फोन : ४२५८४८



आनंद सेल्स कार्पोरेशन

सिमेंट, सनला, टाईल्स् एवम् बिल्डींग मटेरियल सप्लायर्स
४१६, न्यू मंगळवार पेठ, मालधक्का चौक, पुणे ४११ ०११
फोन : ऑफ़ीस - २९०३५ निवास - ४३९६६०



सिद्धार्थ सप्लायर्स

सिमेंट, सनला, टाईल्स एवम बिल्डींग मटेरियल सप्लायर्स
५२/१ चंदन नगर, पुणे-नगर रोड, पुणे १४ ● फोन : ६८०७८४

सुखलाल, सुरेशलाल, रमेशलाल, दिलीपचंद भटेवरा
एवम् भटेवरा परिवार (राहूवाले)

परमश्रद्धेय राष्ट्रसंत, ज्ञानमहेदधि पूज्य गुरुदेव
श्री १००८ आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी महाराज के सदुपदेश से संस्थापित

श्री तिलोकरत्न स्वा जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड

श्री अमोल जैन सिद्धान्त शाला

श्री रत्न जैन पुस्तकालय

श्री वर्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रसारक सभा

श्री प्राकृत भाषा प्रचार समिति

श्री अ. भा. वर्धमान स्था. जैन स्वाध्याय संघ

श्री तिलोक आनंद पारमार्थिक चिकित्सालय

श्री सुधर्मा कार्यालय

श्री सुधर्मा मुद्रणालय

आदि पारमार्थिक संस्थाओं की तरफ से उनकी ९३ वीं जन्म-जयंती के अवसर पर श्रद्धाभक्तिभावपूर्वक वन्दन करते श्रद्धाभिव्यक्ति प्रदर्शित करते हैं।

॥श्री आनंदप्रभवे नमः॥

अखण्ड मण्डलकार व्याप्तं येन चराचरम्।
सत्पदं दर्शित येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

जिनके अन्तस्तल में सतत अहिंसा, दया, वात्सल्य की निर्झरिणी प्रवाहित होती रहती थी, ऐसे दिव्य तेजःपुंज राष्ट्रसंत जैन धर्म दिवाकर महामहिम पूज्य गुरुदेव श्री १००८ आचार्य सम्राट् के प्रति धर्म परायण स्व. श्री. शांतीलालजी गांधी की पूर्ण श्रद्धा-निष्ठा थी, उन महापुरुष की ९३ वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर श्रद्धा भक्तिभावपूर्वक वन्दन रहित हार्दिक श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं।

श्रीमती पुष्पावती शांतीलाल गांधी

कमलेश शांतीलाल गांधी

शैलेश शांतीलाल गांधी

जयहिन्द बिल्डिंग नं. १, तीसरा माला, ब्लॉक नं. ३, भुलेश्वर
बम्बई २ ● दूरध्वनि : ३१६४२८, २०६१३०७

॥ [illegible] ॥

जयतु जयतु आनन्द [illegible]

[illegible]।

[illegible]

[illegible]।।

[illegible]

[illegible]।

जय [illegible]

[illegible]।।

प्रातःस्मरणीय पूज्य गुरुदेव आचार्य सम्राट् श्री १००८

आनन्दऋषिजी महाराज की

९३ वीं जन्मजयन्ती

के अवसर पर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भाववंदन।



कांतीलाल रतनचंद बांठिया
आदि समस्त परिवार

पनवेल (रायगढ़)

दूरध्वनि :
दुकान : ७४५३३८७ ❖ निवास : ७४५२३०५, ७४५२२८४

जय श्वेताम्बर स्थानकवासी,

जय आचार्यप्रवर अविनाशी।

जय आनन्द वीर व्रतधारी,

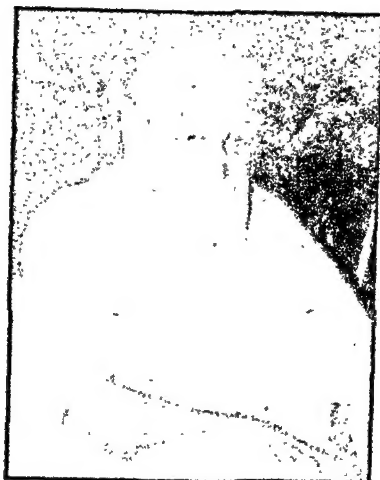
रत्नानंद शिष्य हितकारी।।

जय साहित्य-सुमेरु-दिवाकर

जय रसछन्द पयोधि निशाकर।।

जिनकी अहैतुकी कृपा से सामाजिक कार्यों की
तरफ प्रवृत्ति हुई, ऐसे ऋषिवरेण्य प्रातःस्मरणीय
पूज्य गुरुदेव आचार्य सम्राट्

श्री आनन्दऋषिजी म. की



९ ३ वीं जन्म-जयंती के
अवसरपर कोटिशः वन्दन पूर्वक
हार्दिक श्रद्धाभिव्यक्ति
